प्रेमचंद और गबन

लेखक

जितेन्द्रनाथ पाठक, बी० ए० (आनर्स), साहित्यरत्न

भूमिका-लेखक

डाक्टर श्रीकृष्ण लाल, एम० ए०, डी० फिल्०,

प्राध्यापक काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण: १९५५

दो रुपया

मुद्रक: भोला यंत्रालय,
८।१५७ खजुरी, बनारस कैंट

दिवंगत पिता की पुण्य स्मृति में—

पूर्वकथन

प्रस्तुत पुस्तक का मूल उद्देश्य है प्रेमचंद-साहित्य का सामान्य तथा गबन का विशेष विवेचन करके गबन के अध्येता की पूर्ण सहायता करना। इस विषय की पूरी समीक्षा करने के लिए जिस पृष्ठभूमि की आवश्यकता थी उसे भी आरंभिक अध्याय 'हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण' और अंतिम अध्याय 'उपन्यास कला : एक विश्लेषण' के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

श्रद्धेय डा० श्रीकृष्ण लाल ने भूमिका के रूप में प्रेमचंद के उपन्यासों की संक्षिप्त पर विद्वत्तापूर्ण समीक्षा प्रस्तुत करने की जो कृपा की है वह मेरे प्रति उनके अमित स्नेह का एक लघु प्रतीक है। इस अवसर पर उनकी कृपाओं के प्रति मुखर होने की अपेक्षा मौन रहना मुझे अधिक सुकर लगता है। क्योंकि कहीं-कहीं मौन हमारी अभिव्यक्ति का सबसे समर्थ साधन होता है। 'भइया' श्री सिद्धनाथ पाठक के आगे भी मै संपूर्ण मन से नत हूँ। मै जो कुछ हो सका हूँ उन्हीं के आत्मदान के बल पर। इस अकूत स्नेह के आगे मै निःशब्द हूँ।

प्रथम प्रयास होने के कारण पुस्तक मे त्रुटियाँ हो सकती है। इनकी ओर संकेत करने वाले परामर्शों का मै आदर करूँगा। शीघ्रता के साथ पुस्तक प्रकाशन के लिए प्रकाशक और मुद्रक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। अत्यधिक तत्परता के होते हुए भी पुस्तक मे प्रेस का कुछ 'अलंकरण' रह ही गया है। जिससे इसकी शोभा बढ़ी नहीं कुछ कम ही हो गयी। इसका मुझे खेद है।

हिंदू विश्वविद्यालय, काशी
१ फरवरी, १९५५

—जितेन्द्रनाथ पाठक

भूमिका

प्रेमचंद हिंदी के उपन्यास-सम्राट् कहे जाते हैं। उपन्यास-सम्राट् वे अवश्य थे परंतु पहले वे उपन्यास उद्धारक थे, उपन्यास सम्राट् बाद मे। प्रेमचद से पहले ही हिंदी मे उपन्यास युग आ गया था। उपन्यासो की धूम मच रही थी। जिधर देखिए उपन्यास ही उपन्यास दिखाई दे रहे थे। बात यह थी कि जन-शिक्षा के प्रचार से ऐसे लोगो की संख्या बढ़ रही थी जिन्होने स्कूलों मे कुछ साक्षरता प्राप्त कर ली थी। ऐसे लोगो की पुस्तक पढ़ने की भूख कुछ जग उठी थी और उन्हे पुस्तको की आवश्यकता थी। यो तो पाठको को पुस्तके चाहिए थी और पुस्तके अनेक प्रकार की हो सकती थीं, परंतु कथा-कहानियो से ही जनता की तृप्ति अधिक हो सकती थी, इसीलिए कथा-कहानियो की पुस्तके धड़ल्ले से छप रही थीं। कुछ प्रेसो ने तो कितने ही 'मियॉ जी' और 'भैया जी' को पॉच-पॉच रुपए महीने वेतन पर उपन्यास-लेखको के रूप मे अपने यहॉ नौकर रख छोडे थे। पारसी थियेटर्स के नाटककारो की भॉति ये 'भैयाजी' और 'मियॉजी' लोग जनता की अविकसित रुचि के अनुरूप ही कथा-सामग्री उपस्थित कर रहे थे। यह देखकर लेखकों का एक वर्ग तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी कथाओ की रचना मे प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण मे ऐसी पुस्तको का अबार लग रहा था जिनमे कथा और कहानी तो अवश्य रहती थी और जनता को आकृष्ट करने को उनकी शक्ति भी अमोघ थी, परंतु साहित्यिकता और सुरुचि का उनमे नितांत अभाव था। ऐसी रचनाओ ने ही उपन्यासो को साहित्य-समाज का अछूत बना रखा था। लोग अपने बच्चो को उनकी छाया से भी दूर रखने का प्रयत्न करते थे। जो भी बालक उनके आकर्षण मे पड़ जाता था वह छिप-छिप कर उपन्यास पढ़ता अवश्य था परंतु गुरुजनो को पता लगने पर उसे प्रायश्चित भी पूरा करना पडता था। उपन्यासो को अछूतो की पंक्ति से निकाल कर सत्साहित्य की पंक्ति मे प्रतिष्ठित करने का श्रेय एक मात्र

प्रेमचंद को है। इसीलिए तो प्रेमचंद को उपन्यास उद्धारक कहना अधिक समीचीन जान पडता है, उपन्यास-सम्राट् तो वे थे ही।

प्रेमचंद ने उपन्यासों को जो सत्साहित्य के रूप मे प्रतिष्ठित किया उसका रहस्य केवल यही है कि उन्होंने पाठकों को आकृष्ट करने का ही प्रयत्न नहीं किया वरन् अपने चारों ओर के जीवन को एक कथा-सूत्र मे पिरोने की महनीय साधना में अपने को ही गला दिया। समाज में चारों ओर जो अस्तव्यस्तता थी, जो आडम्बर फैला था, जो विषमता छाई थी, जो दंभ और अहंकार गर्जन कर रहा था, जो करुण चीत्कार सिसकी बन दौरात्म्य के अट्टहास मे विलीन हुई जा रही थी, प्रेमचंद ने उन सबको देखा, उन सबको सुना, और उनका हृदय व्याकुल हो उठा। महर्षि वाल्मीकि के शोक ने जैसे श्लोक को जन्म दिया था, प्रेमचंद की व्याकुलता ने उसी प्रकार साहित्यिक उपन्यासों को जन्म दिया। 'सेवासदन' मे प्रेमचंद की वही व्याकुलता जैसे मूर्तिमान हो उठी है। 'नौलखाहार' और 'मालगोदामकी चोरी' जैसे उपन्यासों का पाठक भी उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सका। सच तो यह है कि 'सेवासदन' को पढ़ने के बाद कितने ही सहृदय पाठकों को उन तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों मे रस ही मिलना समाप्त हो गया। तभी तो सबने एक स्वर से प्रेमचंद को उपन्यास-सम्राट् कह कर अभिनंदित किया था।

प्रेमचंद का आविर्भाव हिन्दी मे १९१६ मे हुआ था, परंतु वे इससे पूर्व ही यशस्वी हो चुके थे। उर्दू मे कहानियाँ और उपन्यास लिखकर उन्होंने बहुत कुछ सीख-समझ लिया था। हिन्दी पाठकों को उनकी 'पंच परमेश्वर' कहानी ने ही पहली बार आकृष्ट किया था और उसके पश्चात् एक के बाद एक कहानी और एक के बाद एक उपन्यास प्रकाशित होते रहे और जनता मुग्ध भाव से हिन्दी के इस साहित्य-सम्राट् की लेखनी का चमत्कार देखती रही। अनवरत बीस वर्षों तक इस शब्द-चित्र के धनी ने सत्साहित्य की सृष्टि से हिन्दी का रिक्त भंडार भरा। प्रेमचंद जिस युग मे विराजमान थे वह साहित्य महारथियों का युग था। गद्य के क्षेत्र मे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काव्य की रंगभूमि मे मैथिलीशरण गुप्त, पंत, प्रसाद और निराला तथा कथा-साहित्य के विस्तृत प्रांगण मे प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के गगनचुम्बी शिखर थे परंतु दिग्विजय का श्रेय एक मात्र प्रेमचंद ने प्राप्त किया। आज

हिन्दी-प्रदेश के बाहर हिन्दी के एक मात्र प्रतिनिधि प्रेमचद है। प्रेमचंद की भाषा और प्रेमचद का साहित्य आज भारत के कोने-कोने मे हिन्दी का आदर्श उपस्थित करता है।

प्रेमचंद का साहित्य पढकर एक बात जो सब से अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ती है, वह है कलाकार प्रेमचंद के अंतराल मे सुधारक प्रेमचद का आदर्शवादी रूप। सभी महान् कलाकार प्रायः सुधारक होते ही है, परंतु जहॉ उनकी कला के आवरण मे सुधारक छिप-सा जाता है वहॉ प्रेमचद का सुधारक छिप नही पाता, बिहारी की नायिका की भॉति उसका रूप परिधान को भेद कर बाहर फूट पडता है।

उपन्यासो के विस्तृत क्षेत्र मे प्रेमचद को यथार्थ और आदर्श दोनो के समन्वय का उपयुक्त अवसर मिल जाता था, परंतु कहानी के सीमित क्षेत्र मे इस प्रकार की सुविधा बहुत कम थी; इसीलिए कहानियो मे प्रायः प्रेमचंद जी आदर्श की व्यजना जितनी चाहते थे उतनी नही कर सके है, इसी कारण कला की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियॉ कही अधिक सुन्दर और प्रभावशाली बन सकी है। उपन्यासो के विस्तृत क्षेत्र मे प्रेमचद जी अपना आदर्शवादी स्वप्न साकार करने का लोभ सवरण नहीं कर पाते थे इसीलिए गबन के अत मे उन्होने अपने स्वप्नलोक को साकार कर ही दिया जहॉ सभी को श्रम करना पडता था। वहॉ देवीदीन और दयानाथ के साथ ही रतन और जोहरा भी है। वहॉ न आभूषणो का प्रश्न है, न गबन की आवश्यकता है, सभी समान है सभी यथाशक्ति श्रम करते और भोजन पाते है।

बहुत से लोग इसे प्रेमचद की दुर्बलता मानते है और सचमुच यह दुर्बलता है भी; परतु प्रेमचंद की यही दुर्बलता तो उनका सब से बडा बल है। इसी बल पर तो उन्होने उपन्यासो का उद्धार किया था। साक्षर जनता की मनोविनोद की सामग्री को इसी बल से तो उन्होने साहित्य ही नही महत् साहित्य की कोटि तक पहुँचा दिया था। निष्फल कथा-प्रसगो मे प्राण फूंकने की शक्ति उन्होने इसी सुधारक रूप से प्राप्त की थी। उनके साहित्य का प्राण उनका आदर्श है, बिना आदर्श के वह खडा नही हो सकता था।

परंतु यथार्थ का वास्तविक महत्व वे नही जानते थे, यह बात भी नही है। सच तो यह है कि यथार्थ की प्राणप्रतिष्ठा करने वाला हिन्दी का सब से बड़ा

कलाकार भी यही आदर्शवादी सुधारक है। 'सेवासदन' में सुमन के पतन का जैसा यथार्थ—सजीव यथार्थ, सहज यथार्थ—चित्र प्रेमचंद ने खींचा है गबन में जालपा के आभूषण-प्रेम और रमानाथ की मिथ्याडंबर-प्रियता का जैसा अनुपम यथार्थ चित्र प्रेमचंद ने चित्रित किया है; गोदान में होरी की स्वार्थपर नैतिकता और आभिजात्य का जैसा करुण यथार्थ चित्र प्रेमचद ने उपस्थित किया है, वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। प्रेमाश्रम के 'ज्ञानशकर' और निर्मला के 'तोताराम' प्रेमचंद की ही लेखनी की करामात है जिसकी छाया तक भी पहुँचने की क्षमता हिन्दी के अन्य कलाकारों की लेखनी में नहीं है। यथार्थ की यथार्थ महिमा से प्रेमचद पूर्णतः अवगत थे, परंतु वे ज्ञानशंकर की अपेक्षा प्रेमशंकर को अधिक महत्व देते थे, वेश्यालयो की अपेक्षा सेवासदन की उपयोगिता के समर्थक थे। प्रेमचंद ने इसीलिए यथार्थवाद के स्थान पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अवतारणा की। दूसरे के लिए चाहे इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का कोई अर्थ ही न हो पर प्रेमचद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही उनकी उच्चत्तम कला है कारण यह है कि एक ओर वे भारतीय त्याग और तपस्या, सयम और साधना के महत्व को समझते थे दूसरी ओर भूख की ज्वाला, दारिद्रय की विवशता और तृष्णा वासना का आकर्षण भी उन्हे अच्छी तरह ज्ञात था। इसीलिए कोरे यथार्थवाद की अपेक्षा उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनी कला का लक्ष्य बनाया और इसमें वे पूर्णतः सफल भी रहे।

प्रेमचद ने हिन्दी साहित्य को कुछ अमर चरित्र दिए हैं। होरी उनका एक ऐसा ही चरित्र है जिसे जल्दी भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय किसान का ऐसा जीता-जागता चित्र शायद ही कहीं और मिल सके। सूरदास उनका दूसरा अमर चरित्र है जो रगभूमि का प्रधान पात्र है। महात्मा गाधी के साचे मे ढले हुए इस महाप्राण व्यक्ति की अमर छाप पाठकों के हृदय पर बैठ जाती है जिसे हटाना सहज नहीं। नारी पात्रों में सुमन और जालपा भी इसी प्रकार की चिरस्मरणीय महिलाएँ है। हिंदी में उपन्यास बहुत लिखे गये और कला की दृष्टि से कुछ अच्छे भी लिखे गए परतु उन उपन्यासों में होरी और सूरदास: सुमन और जालपा जैसे चरित्र कहाँ मिलते हैं। चरित्रों के निर्माण में प्रेमचद के प्रतिस्पर्धी लेखक हिन्दी मे तो हैं ही नहीं, अन्य साहित्यों मे भी

कम ही मिलेगे। जीवन के उतार-चढ़ाव, दोष-गुण, दुर्बलता-दृढ़ता सबका कुछ ऐसा सहज और सजीव चित्र प्रेमचद खीचते जाते हैं कि सहसा चकित हो जाना पडता है कि कितने सरल ढंग से वे महान् चरित्रो की रूपरेखा एक के बाद एक स्पष्ट करते चले जाते है। चरित्रो के निर्माण का उनका अपना एक अलग ढंग है। सामान्य पाठको के मन मे जिस प्रकार की बाते उठती रहती है उसी प्रकार की बाते वे अपने चरित्रो से कहलाते है इसीलिए तो उनके चरित्र पाठकों से घुलमिल कर एक हो जाते है। उनके चरित्रो मे जैनेन्द्र के पात्रो की रहस्यमय गम्भीरता नही, अज्ञेय की विद्रोही प्रवृत्ति नही, भगवतीचरण वर्मा की मस्ती और बेपरवाही नहीं है। उनके चरित्र साधारण मध्यवर्ग के ऐसे व्यक्ति है जिनका हृदय पाठको के लिए खुला है। जिसमे सभी प्रवेश कर उनके अंतस्तल के गुण-दोष, तुच्छता दुर्बलता, दृढ़ता सबको सभी भॉति देख और परख सकते है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रेमचद के सभी चरित्र पाठको से कुछ दुराव नही रखना चाहते अपना हृदय खोल कर दिखा देना चाहते है। इसीलिए तो पाठक भी विश्वस्त हो उन्हें अपना समझ लेते है और उनकी छाप उनके हृदय से मिट नही पाती। होरी और सूरदास, सुमन और जालपा के अमिट प्रभाव का यही रहस्य है।

प्रेमचद जहॉ चरित्र-निर्माण मे अद्वितीय है वहॉ उनकी भाषा और शैली भी अनुपम और अपूर्व है। हिंदी की जातीय शैली की सभी विशेषताएँ प्रेमचद की भाषा मे पूर्णतः देखने को मिल जाती है। हिंदी ने अपनी जातीय विशेषताओ के अनुरूप अग्रेजी साहित्य की स्पष्ट भाव-व्यजकता, बॅगला साहित्य की सरसता और माधुर्य, मराठी साहित्य की गभीरता और उर्दू गद्य का प्रवाह ग्रहण किया। साथ ही अपनी प्रकृति से मेल न खाने के कारण उसने उर्दू की अत्यधिक उछल-कूद, बॅगला की अत्यधिक रसात्मकता और सस्कृत गद्य के भाषाडबर और शब्द जाल को बिलकुल नही अपनाया।[1] हिदी को इस जातीय शैली का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रेमचद ही मे मिलता है। रगभूमि से एक उदाहरण देखिए:

बहुत ही सामान्य झोपडी थी। द्वार पर एक नीम का वृक्ष था। किवाड़ो की जगह बॉस की टहनियो की एक टट्टी लगी हुई थी। टट्टी हटाई। कमर

---

१. आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ० १७६।

से पैसों की छोटी सी पोटली निकाली जो आज दिन भर की कमाई थी। तब झोपड़ी की छान में से टटोल कर एक थैली निकाली जो उसके जीवन का सर्वस्व थी। उसमें पैसों की पोटली बहुत धीरे से रक्खी कि किसी के कानों में भनक भी न पड़े। फिर थैली को छान में छिपा कर वह पड़ोस के एक घर से आग माँग लाया। पेड़ों के नीचे से कुछ सूखी टहनियाँ जमा कर रक्खी थीं उनसे चूल्हा जलाया। झोपड़ी में हल्का सा अस्थिर प्रकाश हुआ। कैसी विडम्बना थी। कितना नैराश्यपूर्ण दारिद्र था। न खाट न बिस्तर, न बरतन, न भाँडे। एक कोने में मिट्टी का एक घड़ा था जिसकी आयु का अनुमान उस पर जमी हुई कुछ काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हाँडी थी। एक पुराना, चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा और एक छोटी सी कठौत और एक लोटा। बस यही उस घर की सारी सम्पत्ति थी। मानव व्यवसायों का कितना सत्क्षिप्त स्वरूप।

दारिद्र का यह मूर्तिमान रूप कितना स्पष्ट और कितना सजीव है। प्रारंभ के सुन्दर यथार्थवादी चित्र का कितना भावमय उपसंहार है—मानव-व्यवसायों का कितना सत्क्षिप्त स्वरूप।—प्रेमचंद की भाषा में गद्यात्मक चित्रों की काव्यात्मक परिणति देखने योग्य है। निर्मला में एक स्थान पर मुन्शी तोताराम का मध्यम पुत्र जियाराम पिता के साथ उद्दंडता करने पर तुल गया है परंतु डाक्टर साहब के समझाने पर फिर वह नम्र और विनीत बनने का निश्चय लेकर घर लौटता है। घर पर मुन्शी तोताराम के व्यवहार से उसकी नम्रता फिर उद्दंडता परिणत हो जाती है। जियाराम के इस भाव-परिवर्तन का बड़ा ही सजीव चित्र प्रेमचन्द ने उपस्थित किया। प्रेमचंद के ही शब्दों में सुनिए :

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। फड़क कर बोला —अच्छी बात है, पुलिस की सहायता लीजिए देखिए पुलिस क्या करती है? मेरे दोस्तों में आधे से ज्यादा पुलिस के अफसरों ही के बेटे हैं। जब आप ही मेरा सुधार करने पर तुले हुए हैं तो मैं व्यर्थ क्यों कष्ट उठाऊँ।

यह कहता हुआ जियाराम अपने कमरे में चला गया, एक क्षण के बाद हारमोनियम के मीठे स्वरों की आवाज बाहर आने लगी।[१]

---

१. निर्मला—प्रेमचन्द (१९४९) पृ० १५४।

कितना सहज और सजीव चित्रण है, परतु यह चित्रण ऐसा नही कि अन्य उपन्यासकार प्रयत्न करके इससे मिलता-जुलता न लिख सके। परतु अत में जो दो वाक्य प्रेमचद ने इस प्रकार जोड दिए है :

सहृदयता का जलाया हुआ दीपक निर्दय व्यग के एक झोके से बुझ गया। अडा हुआ घोड़ा चुमकारने से जोर मारने लगा था, पर हटर पडते ही फिर अड़ गया और गाड़ी को पीछे ढकेलने लगा।[1] इसमे पूरे चित्र की जो काव्यात्मक परिणति हुई है वह प्रेमचद के अतिरिक्त दूसरा लेखक नही कर सकता। यथार्थ-वादी चित्र की सरल और स्पष्ट रूपरेखा पर काव्यात्मकता का यह हल्का सा रग उसे कितना आकर्षक बना देता है। प्रेमचद की इस कला ने उनकी भाषा और शैली को अद्वितीय बना दिया है।

परतु प्रेमचद के जिस गुण ने उन्हे सबसे अधिक लोकप्रिय बना रखा है, वह है उनकी मानवता और सहानुभूति। प्रेमचद की सहानुभूति कितनी व्यापक थी। एक ओर उन्हे गोदान के निर्धन किसानो के प्रति सहानुभूति है तो दूसरी ओर जमीन्दार राय साहब के प्रति रोष होते हुए भी उनकी सहानुभूति उमड पडी है। गबन मे जहॉ स्त्रियो की आभूषण-प्रियता के भयानक दुष्परिणाम का चित्र उप-स्थित किया गया है, वहॉ 'निर्मला' मे निर्मला के गहनो की चोरी हो जाने पर निर्मला के साथ लेखक ने पूरी सहृदयता के साथ सहानुभूति दिखाई है। कौन कह सकता है कि गबन के लेखक ने कभी यह भी लिखा होगा कि :

गहने ही स्त्री के (की) सम्पत्ति होते है। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नही होता। इन्ही का उसे बल और गौरव होता है। निर्मला के पास पाच-छः हजार के गहने थे। जब उन्हे पहनकर वह निकलती थी तो उतनी देर के लिए उल्लास से उसका हृदय खिला रहता था। एक-एक गहना मानो विपत्ति और बाधा से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र था। अभी रात ही उसने सोचा था, जियाराम की लौडी बनकर वह न रहेगी। ईश्वर न करे—वह किसी के सामने हाथ फैलाये। इसी खेवे से वह अपनी नाव को भी पार लगा देगी, और अपनी बच्ची को भी किसी न किसी घाट पहुॅचा देगी।

---

१. निर्मला पृ० १५४।

उसे किस बात की चिंता है। इन्हें तो कोई उससे न छीन लेगा। आज ये मेरे सिंगार है कल को मेरे आधार हो जायँगे।[१]

हाँ, आभूपणों से प्रेमचंद को चिढ नही है, वे इसकी उपयोगिता को भली-भाँति समझते है। चिढ़ तभी होती है जब इन आभूपणों के पीछे पति को गबन करना पडे, पत्नी को पति से दुराव रखने को बाध्य होना पड़े। जालपा के लिए जो आभूपण-प्रियता निंदनीय है रतन के लिए वह वैसी नहीं है। क्योंकि दोनों की परिस्थिति मे अतर है। प्रेमचद इस परिस्थिति को अच्छी तरह समझते थे और इसीलिए उनकी मानवता और सहानुभूति परिस्थिति के अनुसार सबके प्रति उमड पडती है। मानव-हृदय के ऐसे अद्भुत पारखी कम ही मिलेंगे और उनकी अद्भुत परख का मूल रहस्य उनकी व्यापक मानवता और सहानुभूति थी।

प्रस्तुत पुस्तक 'प्रेमचद और गबन' के लेखक श्री जितेन्द्रनाथ पाठक एक नवयुवक लेखक है और विद्यार्थियो की कठिनाइयो से पूर्णतः परिचित है। अस्तु, उनकी यह रचना विद्यार्थियो के लिए निश्चय ही लाभप्रद प्रमाणित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पुस्तक का अधिकाश मैंने लेखक के मुख से सुना है और उसका कुछ अश पढ कर भी देखा है। पुस्तक बडे ही परिश्रम और लगन से लिखी गई है। लेखक की यह पहली रचना है, फिर भी इसमे मनन और अध्ययन की सामग्री पर्याप्त मात्रा मे है। लेखक ने प्रेमचद के सम्पूर्ण साहित्य का सक्षिप्त और गबन का विस्तृत अध्ययन उपस्थित किया है जिससे पाठक निश्चय ही लाभान्वित होंगे।

दुर्गाकुंड, बनारस,
माघी पूर्णिमा, २०११ वि०

श्रीकृष्ण लाल

विषयानुक्रम

हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण

उपन्यास के कला-रूप का जन्म पाश्चात्य देशों में हुआ। यह विशेषतः नए युग की देन है। नए युग का मुख्य संदेश था व्यक्तिवाद तथा मुख्य घटना थी औद्योगिक सभ्यता के साथ नए मध्यम वर्ग का उदय। लगभग इसी समय उलझते हुए जीवन को वाणी देने वाले गद्य का उदय हुआ। गद्य की सबसे शक्तिशाली देन उपन्यास था।

औद्योगिक-सभ्यता में पैदा हुआ मध्यवर्ग व्यक्तिवादी और बुद्धिवादी था। इस व्यक्तिवाद ने जटिलतर होती हुई सभ्यता की उलझती हुई समस्याओं तथा नई परिस्थिति में टूटते-बनते जीवन—मानों पर व्यक्ति को सोचने के लिए बाध्य किया। व्यक्ति, समाज और युग पर साहित्यकार का यही चिंतन उपन्यास के रूप में सामने आया। स्वाभाविक था कि यह साहित्य का कला-प्रकार लोकप्रिय हो। और आज उपन्यास किसी भी देश के साहित्य का सबसे शक्तिशाली अंग बन गया है।

एक समय था जब महाकाव्यों (Epic poetry) की रचना होती थी। उसमें तत्कालीन राजाओं तथा ऐतिहासिक और पौराणिक पुरुषों की सीधी पर उदात्त गाथाओं को वाणी दी जाती थी। पर आज युग बहुत बदल गया है। आज राजाओं, योद्धाओं, ऐतिहासिक-पौराणिक पुरुषों का स्थान साधारण जनवर्ग ने ले लिया है जो न जाने कितनी रूढ़ियों, कितने आर्थिक अत्याचारों, कितने सामाजिक विधि-निषेधों में कसकर एक हद तक अनेक कुंठाओं का शिकार हो गया है। इस प्रकार के संघर्षशील समाज का व्यापक चित्र उपन्यास में ही आ सका और आ सकता है। महाकाव्यों में भी उस समय का सर्वांगीण समाज आता था और उपन्यासों में भी समाज आता है। अंतर बस इतना है कि महाकाव्य अपनी सीमाओं

के कारण जीवन के सीधे और उदात्त चित्र ही अंकित कर सकते थे जब कि उपन्यास अपने कलारूप के कारण जीवन के जटिल से जटिलतर चित्रों का अंकन कर सकते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाकाव्यों ने उपन्यासों में आज अपना रूपांतर पा लिया है।

भारतवर्ष में उपन्यासों के कलारूप का ग्रहण विदेशी शासन के साथ विदेशी साहित्य के अध्ययन से शुरू हुआ। भौगोलिक निकटता के कारण बंगाली लेखकों ने अन्य भाषाओं के लेखकों से पहले इस ओर ध्यान दिया। धीरे-धीरे हिंदी में भी इस साहित्यांग का ग्रहण हुआ। कुछ लोगों का कथन है कि उपन्यासों का अस्तित्व हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य के दण्डीकृत 'दशकुमार चरित', सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता'; तथा बाणभट्ट कृत 'हर्ष चरित' और 'कादम्बरी' आदि में है। पर वास्तविक बात यह है कि ये रचनाएं उपन्यास के कुछ मूलतत्वों से अनुप्राणित होते हुए भी संस्कृत के काव्यों के अधिक निकट हैं। साम्प्रतिक उपन्यास केवल कथा-तत्व से ही नहीं बनता; न वह अलंकारों के बोझ से दबने वाली कलाकृति ही है। वह शुद्ध रूप से वर्तमान व्यक्ति और समाज की उलझनों में फँसी हुई जिंदगी के साहित्यकार द्वारा किए हुए अध्ययन का कलात्मक रूपांतर है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"जिस उपन्यासकार के पास आधुनिक युग की जटिल समस्याओं के समाधान के योग्य अपना प्रबल वैयक्तिक मन नहीं है वह आधुनिक पाठकों को आकृष्ट नहीं कर सकता।"[1]

१९वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हिंदी गद्य के प्रचार तथा मुद्रण यंत्रों के आगमन के साथ हिंदी में कथा-साहित्य संबंधी कुछ हलके ढंग की किताबें छपीं। इनका विवरण हिंदी की कथा-प्रवृत्ति को समझने में सहायक होगा। इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' इस ढंग की पहली रचना है। इसके पश्चात् लल्लू लाल जी की 'सिंहासन-बत्तीसी'; 'बैताल-पचीसी' 'माधवानंद काम कंदला', 'शकुंतला' और 'प्रेमसागर' आदि; सदलमिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' प्राचीन काल से चली आती हुई पौराणिक तथा लौकिक लोक-कथाओं का आश्रय लेकर लिखी गयीं। फारसी से उर्दू और उर्दू से प्रभावित या रूपांतरित होकर भी कथा

१. 'हिंदी-साहित्य'; (१९५२) पृ० म ४१४

कहानियाँ सामने आयी। 'गुलबकावली', 'बागे-उर्दू', 'तोता-मैना' जैसी कहानियाँ इसी ढंग की रचनाएँ है। फारसी और उर्दू का उस काल मे एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिलिस्म होशरुबा' निकला जो हजार-हजार पृष्ठों तक प्रेम के आधार पर बिछाए गए, कभी न खतम होने वाली घटनाओं के जाल में पाठक के चित्त को उलझाए रहता था। इस एक पुस्तक से हिंदी का तिलिस्मी उपन्यास-साहित्य अत्यधिक प्रभावित हुआ। इन सभी प्रयत्नो के उल्लेख से हमे हिंदी की कथा-प्रवृत्ति के प्रभाव-स्रोतो का परिचय मिलता है।

१६ वी शताब्दी के अंतिम चरणो मे भारतेंदु-मंडल के कुछ गद्य लेखको ने उपन्यास की दिशा मे कुछ प्रयत्न किए। यह प्रयत्न उस मात्रा मे तो नहीं हुए जिस मात्रा मे और दिशाओं मे हुए फिर भी इन्होने उपन्यासो की वास्तविक परंपरा आरंभ कर दी। पं० रामचंद्रशुक्ल के अनुसार हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' इसी काल में लिखा गया। इसके पहले भारतेंदु की सहायता से अनूदित 'पूर्ण प्रकाश और चंद्रप्रभा' नामक एक छोटा उपन्यास प्रस्तुत हो चुका था जिसमे उपन्यास के तात्विक और दार्शनिक दोनो संकेत स्पष्ट थे। इसमे वृद्ध-विवाह के दोषो का पर्दाफाश हुआ। इसके पश्चात बाबू राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिंदू'; पं० बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान'; रामचंद्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र'; मेहता लज्जाराम शर्मा का 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' और 'धूर्त रसिकलाल'; राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा विपत्ति'; हनुमंत सिंह का 'चंद्रकला', गोकुल नाथ शर्मा का 'पुष्पावती' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। इन उपन्यासो मे से अधिकांश में उस बौद्धिक जागरूकता का संदेश था जो नए युग की देन थी। इस बौद्धिक जागरण ने उपन्यासकारो को सामाजिक दोषों, नैतिक त्रुटियों आदि की अलोचना की ओर प्रवृत्त किया। इन रचनाओ मे प्रायः रोमांस के आगमन, उपदेशो के आधिक्य तथा कलात्मक कमजोरियो के बावजूद भी भविष्य के उपन्यासकार के लिए एक संकेत था।

इस मंडल का दूसरा कार्य था बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासो का हिंदी रूपांतर। पं० रामचंद्र शुक्ल इन प्रयासो की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं कि उस समय तक बंगभाषा मे बहुत से उपन्यास निकल चुके थे। अतः हिंदी मे सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासो की परंपरा प्रतिष्ठित करने के लिए बंगला के कुछ अच्छे

उपन्यासो का चटपट अनुवाद करना आवश्यक दिखाई पडा। अनुवाद मे लग्गा भारतेंदु के सामने ही लग गया। बाबू गदाधर सिह ने 'बंग-विजेता' और 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद किया। भारतेंदु जी के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण दास ने 'स्वर्णलता', 'मरता क्या न करता' आदि उपन्यास अनुवाद करके निकाले। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिह', 'इदिरा', 'राधारानी' 'युगलागुलीय' और पडित राधाचरण गोस्वामी ने 'विरजा', 'जावित्री', 'मृरामयी', का अनुवाद किया। फिर तो बगला के उपन्यासो के अनुवाद का ऐसा रास्ता खुला कि भरमार हो गयी। पर पिछले अनुवादको का भाषा पर वैसा अधिकार न था जैसा उपर्युक्त लेखको का था। अनुवादक हिंदी का ठीक-ठीक रूप देने मे समर्थ नही हुए। अनुवादों से काम यह हुआ कि नए ढग के ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासो का अच्छा परिचय हो गया और स्वतत्र उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति और योग्यता उत्पन्न हुई।[1]

बगाल मे नए ढग के उपन्यासकारो मे श्रेष्ठ प्रवर्तक उपन्यासकार बकिम बाबू थे। इनके उपन्यासो मे अग्रेजो की उत्तम परपरा उभर कर सामने आई। इन्होने अग्रेजी उपन्यास-साहित्य का गभीर अध्ययन किया था। कहा जाता है कि बकिम बाबू के ऊपर वाल्टर स्काट का प्रभाव था। पर सही बात यह है कि उन्होने उन्नीसवी शताब्दी के प्रमुख उपन्यासकारो जेन आस्टिन, थैकरे, विक्टर ह्यूगो और डिकेन्स आदि की विशेषताओ का अपने साहित्य मे सामजस्य किया था। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिंदी-साहित्य' मे लिखते हैं "अग्रेजी की रोमास-धारा को विशुद्ध भारतीय वेष मे सुसज्जित करने का श्रेय बकिम बाबू को है। कल्पना की उड़ान चरित्रो का मानसिक विकास, कथानक की रोचकता, कथावस्तु का औत्सुक्य प्रधान होना, चरित्रो का मनोवैज्ञानिक विकास और उद्देश्य की एकतानता उन्नीसवी शताब्दी के यूरोपियन उपन्यास साहित्य की प्रधान विशेषता थी। इस अद्भुत रोमान्सधारा को भारतीय वेष मे सजाकर और उसे भारतीय पाठक की मनोवृत्ति के अनुकूल बनाकर बकिम बाबू ने भारतीय साहित्य मे अद्भुत क्रांति उपस्थित की।" हिंदी पर बगला साहित्य का

---

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास, सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण (१९६९) पृ० स० ४९८-९९।

प्रभाव अन्य देशी भाषाओं की अपेक्षा पहले पड़ा। जैसा कि कहा जा चुका है, भारतेंदु बाबू से प्रोत्साहित अनुवादों की परंपरा को पं० प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने आरंभ किया। बाबू गदाधर सिंह, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, बाबू रामकृष्ण वर्मा, गोपालराम गहमरी आदि इस अनुवाद-परपरा को आगे बढ़ाने वाले है। आगे चलकर अच्छे अनुवादको मे प० रूपनारायण पाण्डेय आदि का नाम आता है।

बगला उपन्यासो के हिंदी अनुवादो का सर्वत्र आदर हुआ। भाषा के क्षेत्र में हिंदी मे बगला के कतिपय भाषागत प्रयोग तक आ गए। उदाहरणस्वरूप 'शेष करना', 'जिज्ञासा करना' सरीखे प्रयोग।

बगला उपन्यासो की हिंदी उपन्यास साहित्य को बहुत बडी देन है। सर्वप्रथम, उसने तिलस्मी उपन्यासो के हानिकारक मोह को कम किया और हिंदी लेखको को भारतीय सस्कृति और इतिहास की ओर मोडा। द्वितीय, बगला के पुष्ट प्रयोगो से हिंदी भाषा मे अभिव्यक्ति की शक्ति बढ़ी। तृतीय, कल्पना का स्वच्छद लोक सामने आया। चतुर्थ, उर्दू की मुहावरो मे कसी किस्सागोई की परपरा से हिंदी को छुटकारा मिला।

हर भाषा के उपन्यास-साहित्य मे पहला युग उन उपन्यासो का होता है जिनमे व्यक्ति की साहसिकता से पूर्ण आश्चर्यचकित कर देने वाली कथाओं की माला गूथी हुई रहती है। अग्रेजी मे इन्हे पिकारेस्क (Picaresque) और एपीसोडिक (Episodic) उपन्यास कहते हैं। इन उपन्यासो की घटनाओं मे सबद्धता का आभास नायक के एक होने के कारण मिलता है। ऐसे उपन्यासो मे चरित्र-चित्रण का घोर अभाव होता है। उपन्यासकारो की दृष्टि बस बाह्य क्रिया-कलापो मे उलझी रहती है, उन्हे भीतर झाकने का अवसर ही नहीं मिलता। हिंदी मे बाबू देवकीनंदन खत्री और पं० किशोरी लाल गोस्वामी के साथ इन विशेषताओं से सपन्न उपन्यासो का आरंभ होता है। देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकाता' और 'चंद्रकाता सतति' मे तिलस्म, ऐयारी से पूर्ण एक ऐसा ही कल्पना-लोक है जिसमे पाठक का वस्तु-जीवन से थका मस्तिष्क खो जाता है। पिछले पृष्ठो मे १६ वी शती के पूर्वार्द्ध के उर्दू-फारसी के तिलस्मी उपन्यासो का उल्लेख किया गया है। हिंदी के तिलस्मी उपन्यास उन्ही की प्रेरणा से लिखे गये।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी-साहित्य' में इनके विषय में लिखा है कि "इनमे अद्भुत और असाधारण घटनाओ की ऐसी रेलपेल है कि पाठक का चित्त धक्का खा खाकर आगे बढ़ता जाता है, उसे कथानक के गठन और चरित्र के विकास की बात याद ही नहीं रह जाती। अतिप्राकृतिक, अद्भुत और असाधारण घटनाओ से आश्चर्यजनक परिस्थितियो का निर्माण तिलस्माती कथानकों का प्रधान आकर्षण था। इन कथानको मे 'लकलका' नामक एक प्रकार की मादक वस्तु के प्रयोग का प्रसंग प्रायः हो आता रहता है जिसके सूंघने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। तिलस्माती उपन्यासो का वातावरण भी साहित्यिक 'लकलका' है। वह पाठक को बेहोश और अभिभूत कर देता है, वह कथानक के उद्देश्य, गठन और पात्रो के साथ उनके संबध की और पात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास की बात सोच ही नहीं पाता। इन उपन्यासो ने हिंदी जनता के चित्त को ऐसे ही मादक वातावरण मे डाल रखा था। उपन्यास के वास्तविक रूप से तो उन्होने इस जनता को परिचित नहीं कराया परतु आधुनिक उपन्यासो की जो सबसे बडी विशेषता-मनोरंजन है उसे प्राप्त करने की दुर्दम लालसा, उन्होने अवश्य उत्पन्न कर दी।" इस प्रकार इस श्रेणी के उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुए। राष्ट्रभाषा के विकास मे इनका ऐतिहासिक स्थान है। देवकीनंदन खत्री की निराडंबर भाषा ने भी भाषा के इस प्रचार में विशेष सहायता पहुँचाई।

इसी समय 'उपन्यासों का ढेर लगा देनेवाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार, पडित किशोरी लाल गोस्वामी आते है। जिनके विषय मे प० रामचद्र शुक्ल का मत है कि "इनकी रचनाएँ साहित्य कोटि मे आती है। इनके उपन्यासो मे समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूपरंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोडा बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।"[1] उन्होने 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र निकाला और इसमे छोटे-बड़े ६५ उपन्यास लिखकर प्रकाशित किए। शुक्ल जी का कथन है कि द्वितीय उत्थान काल के भीतर सच्चे अर्थों मे यही उपन्यासकार थे। "और लोगो ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव मे उपन्यासकार न थे। और चीजे लिखने-लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पडते थे। पर गोस्वामी जी वहाँ घर करके बैठ गए। एक क्षेत्र अपने लिए चुन

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास (संशोधित-सस्करण, संवत् १९९९) पृष्ठ ५५२।

लिया और उसी मे रम गए।"[१] गोस्वामी जी के उपन्यासो मे कुछ वासनाओं के ऐसे चटकीले उत्तेजक उभार अवश्य है जो युवक-चित्त के लिए हानिकारक है। इस बात के लिए उस समय 'चपला' की बहुत अधिक बदनामी हुई थी। गोस्वामी जी के उपन्यास मूलतः ऐतिहासिक रोमास के रग से रजित है। पर इन ऐतिहासिक स्थलो मे भिन्न-भिन्न समयो की प्रामाणिक सास्कृतिक स्थिति के अनुसधान का ज्ञान नहीं होता। कही-कही तो खटक जाने वाले कालदोष भी आए है। पर प्रारभिक अवस्था को देखते हुए उनके यह प्रयत्न स्तुत्य कहे जा सकते है। गोस्वामी जी के मुख्य उपन्यासो मे कुछ ये है:—'तारा', 'चपला', 'तरुण-तपस्विनी', 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'लवगलता', 'हृदय हारिणी', 'हीरा बाई', 'लखनऊ की कब्र', 'त्रिवेणी', 'सुख शर्वरी' इत्यादि। गोस्वामी जी भाषा के अच्छे शिल्पी नहीं थे। वे कही उर्दू-ए-मुअल्ला का प्रयोग करते थे और कही तत्सम-प्रधान क्लिष्ट हिंदी का। भाषाधिकार दिखाने के लिए इसी समय पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने दो उपन्यास ठेठ हिंदी मे लिखे। 'ठेठ हिंदी का ठाट' और 'अधखिला फूल'। इनका उपन्यास-कला के विकास की दृष्टि से कोई महत्व नही है। इसके अतिरिक्त बंगला के भाव-प्रधान उपन्यासो की शैली के आधार पर बाबू ब्रजनंदन सहाय ने 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकात' प्रस्तुत किया।

इस काल के तीसरे बड़े उपन्यास लेखक जासूसी उपन्यासो के रचयिता गोपालराम गहमरी है। आपने बंगला के गार्हस्थ्य उपन्यासो का अनुवाद भी किया। उनके कुछ ग्रन्थो के नाम ये हैं—'चतुर चचला', 'भानमती', 'नए बाबू, 'बडाभाई', 'देवरानी जेठानी', 'दो बहिन', 'तीन पतोहू', 'सास पतोहू'। आपकी भाषा चटपटी और भगिमायुक्त हुई है।

× × × ×

द्वितीय युग में, अग्रेजी उपन्यासो की तरह हिंदी मे भी 'प्लाट-नावेल्स' (Plot Novels) का युग आया। इन उपन्यासो मे बाह्य क्रिया-कलापो के साथ आतरिक प्रेरणाएँ भी सयुक्त रहती है। सु दर और सुसगठित कथानक के साथ विचारो और अनुभूतियो का भी मेल रहता है। इस कोटि के उपन्यास-

---

१. वही, पृष्ठ ५५२।

कार पात्रो ने 'क्या' किया इतने भर से संतुष्ट न होकर 'कैसे किया' और 'क्यों किया' तक पहुँचते है। इन उपन्यासों मे जो श्रेष्ठ होते है वे महाकाव्य की कोटि के होते है। नाटकीय तत्वो का भी योग इनमे स्वीकार करना होगा। प्रेमचंद इसी कोटि के उपन्यासकारो के प्रतिनिधि और स्रष्टा बनकर आए। शील-वैचित्र्य का सफल अंकन इनके उपन्यासो के साथ ही हिंदी मे आरभ हुआ। उपन्यासो की जमीन बदल गयी। राजपरिवारो, ऊँचे वर्गो से हटकर उपन्यास शहरो-देहातो की जनता को चित्रित करने लगा। मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता का श्रीगणेश हुआ। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद का 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' हमारे लिए अत्यत स्फूर्तिकर सिद्ध हुआ। प्रेमचंद का पात्र कमजोरियो से लडता हुआ, परिस्थितियो से भिडता हुआ मजबूती की ओर बढ़ता रहा। जिस अर्थ मे प्रेमचद के पीछे परपरा नही थी उस माने मे प्रेमचंद कला-शिल्प मे भी पिछड़े न रहे। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रगभूमि, जैसे उपन्यासो का बध काफी सफल रहा। छोटे उपन्यासो मे तो वे सफल रहे ही।[1] 'गबन' तक आते-आते प्रेमचद की कला प्रौढि के निकट पहुँच गयी।

परतु प्रेमचद जिस सृष्टि के लिए हिंदी उपन्यास मे शीर्ष स्थान के अधिकारी हुए वह है 'गोदान'। 'गोदान' मे प्रेमचद वर्तमान के द्रष्टा और भविष्य के निर्देशक बनकर आए। एक आलोचक ने लिखा है 'गोदान हिंदी की ही नहीं स्वय प्रेमचद की भी एक अकेली औपन्यासिक कृति है जिसके उच्चावच्च, विराट विस्तार, निर्मम तटस्थ यथार्थता और सरलता की पराकाष्ठा तक पहुँचकर, अत्यत विशिष्ट बन गयी—शैली, किसी एक भारतीय उपन्यास मे एकत्र नहीं मिलती।"[2] पर गोदान के स्थापत्य, कथावस्तु पर लोगो ने कडी आलोचना की। प्रगतिशील आलोचक डा० रामविलास शर्मा, प्रो० प्रकाशचद गुप्त तथा, सर्वश्री शातिप्रिय द्विवेदी, गुलाबराय और जैनेन्द्र ने माना है कि 'गोदान' मे ग्रामीण जीवन का चित्रण ही आधिकारिक है और शहरी जीवन के

---

१. इन उपन्यासो का विशद विवेचन इसी पुस्तक के 'प्रेमचदसाहित्य : एक मूल्याकन' नामक अध्याय मे द्रष्टव्य।

२. देखिए 'आलोचना' के इतिहास अक मे नलिनविलोचन शर्मा का लेख।

प्रसंग प्रासंगिक और क्षेपक मात्र। पर नलिन विलोचन शर्मा ने प्रतिवाद किया है कि "गोदान का स्थापत्य कृत्रिम रूप से सुसंगठित रहता तो अवश्य ही वह भारतीय जीवन के वैविध्य और आँखो के सामने चलने वाले, अतः अस्पष्ट परिवर्तन की प्रतिक्रियाओं की व्यस्तता का चित्रागार नही बन पाता। बहुत पहले 'प्रेमाश्रम' फिर 'रंगभूमि' मे प्रेमचंद ने इन प्रतिक्रियाओं को पकडने की कोशिश की थी, किंतु तब वे पात्रो के विलक्षण व्यक्तित्व के चित्रण के स्थापत्य के कृत्रिम बंधन के अतिक्रमण की सामर्थ्य अपने मे विकसित नही कर सके थे। 'गोदान' मे अपने प्रौढि-प्रकर्ष के कारण प्रेमचंद ने पुराणरीति का व्यतिक्रम किया है।"[1] इस आलोचना को हम सही मानते है। निश्चित ही भारतीय जनजीवन के दो पक्ष है—ग्रामीण और नागरिक। आज के वर्ग-संघर्ष के युग मे ग्रामो मे यह संघर्ष किस प्रकार चल रहा है, और पृथक रूप से शहरो मे किस प्रकार गतिशील है तथा गाँवो और शहरो का पारस्परिक घात-प्रतिघात किस रूप मे हो रहा है इन सबका सफल चित्रण 'गोदान' मे होता है। अगर ऐसा न होता तो 'गोदान' वर्तमान भारतीय जनजीवन का सर्वांगपूर्ण महाकाव्य न बन पाता। 'गोदान' की दूसरी जबर्दस्त चीज उसकी भाषा-शैली है। वह हिंदी से ही विकसित होती हुई हिंदी की एक आदर्श शैली है। इसमे देवकीनंदन खत्री की निराडंबर और निष्प्राण भाषा साहित्यिक और सप्राण हो जाती है। प्रेमचंदजी स्वयं 'गोदान' मे अपनी पुरानी शैली तथा भाषागत कमजोरियो से मुक्ति पा जाते है। हिंदी का विशुद्ध और आदर्श रूप यदि कही मिल सकता है तो वह 'गोदान' मे।

'सुदर्शन' और कौशिक प्रेमचंद के अनुवर्ती विशिष्ट कथाकार है।

इसी समय प्रसादजी के दो उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' प्रकाश मे आए। प्रसाद, इसके पूर्व, प्रवर्तक आदर्शवादी कवि के ही रूप मे विख्यात थे परंतु 'कंकाल' मे उन्होने जो यथार्थवादी विश्लेषण के द्वारा हिंदी-उपन्यास क्षेत्र मे प्रकृतिवाद (Naturalism) को अग्रसर किया वह 'कंकाल' मे हिंदू-समाज की बुराइयो के पर्दाफाश के रूप मे आया और 'तितली' मे रचनात्मक संकेत के रूप मे। इस प्रकृतिवाद का भी अपना मूल्य है जो मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के रूप मे आगे

१. वही (नलिन विलोचन शर्मा का—'हिंदी' उपन्यास शीर्षक निबंध)।

चलकर इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय आदि उपन्यासकारों में विकसित हुआ। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' इस काल के दूसरे शक्तिशाली उपन्यासकार थे। भाषा तो प्रसादजी की तरह इनकी भी अलंकृत तथा नाटकीय थी पर इनमें एक नया जोश, नई चमक और नई ताज़गी थी। यों 'उग्र' की शक्ति जोश के तूफान में काफी अपव्यय हुई और इनकी प्रतिभा कोई ठोस प्रभावशाली कृति नहीं दे सकी। 'चाकलेट' जैसी रचनाएँ घासलेट और चखचख का ही विषय बनकर रह गयी। शिवपूजन सहाय, राजा राधिकारमण सिंह, चतुरसेन शास्त्री, प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', अनूपलाल मंडल, भगवतीचरण वर्मा इस श्रेणी के कुछ अन्य मुख्य उपन्यासकार हैं। इनमें से कुछ ने हिंदी को स्मरणीय कृतियाँ दी है। भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' हिंदी मे अपना स्थायी महत्व बनाने वाली एक ऐसी ही रचना है। योरोपीय ढंग पर पाप-पुण्य की समीक्षा को इसमें ऐतिहासिक कल्पना-लोक के भीतर, रोमानी उपादानों के द्वारा, नए शिल्प के प्रभाव में विकसित किया गया है। 'चित्रलेखा' जैसी प्राजल (भाषा और नाटकीय शैली की दृष्टि से) रचनाएँ हिंदी मे अधिक नहीं हुई। 'तीन वर्ष' की रचना में शैली-वैशिष्ट्य के साथ यथार्थ की ओर आगमन है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'आखिरी दाँव' मे भगवतीचरणजी वर्तमान की राजनीतिक-आर्थिक विषमताओं को सीधे लेकर समस्याओं के गर्भ में प्रवेश करते है। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' हिंदी का एक विशिष्ट उपन्यास है। वर्माजी के अतिरिक्त उपरि-निर्दिष्ट अन्य उपन्यासकारों में से अनेक अब भी कुछ न कुछ लिखते जा रहे हैं और उनमें उनका स्पष्ट विकास हो रहा है।

× × × ×

यहीं पर हिंदी-उपन्यास का तृतीय युग आरंभ होता है। इस विकास-काल में उपन्यासकारों ने वस्तु, शिल्प और दर्शन तीनों में नए कदम उठाए। और यदि कहा जाय कि इस युग के उपन्यास, प्लाट-प्रधान उपन्यासों से एकदम भिन्न हो गए तो विशेष अनुचित नहीं होगा। इस चरण में व्यक्ति आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व के सहित आया। इससे पहले पात्र अधिकतर 'टाइप' (Type) बनकर आते थे, अपने स्वभावों और व्यक्तित्व में समतल (Flat) होते थे पर अब पात्र शुद्ध व्यक्ति बनकर आए, उनमें वक्रता आई। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तब पात्रों का क्रिया-कलाप किसी बाह्य उत्तेजना (Stimulas) के प्रति आचरणवादी प्रति-

क्रिया (Behaviouristic response) के रूप मे होता था। फलतः इनमे पात्रो की बौद्धिकता तो स्पष्ट होती थी पर उन शक्तियो का पता ही नही चलता था जो हमारी आत्मा के अह से विचित्र ढंग से निकलकर हमारे विवेक को ढंक लेती है और हमें विचित्र ढंग से मोड़ देती है। हम कुछ का कुछ कर जाते है। साराश यह कि इस चरण में उपन्यासो ने अपनी अवशिष्ट बाह्यात्मकता से मुक्ति पाई और अनुभूतियो के आत्मनिठ रूप के द्वारा अपने वस्तु और शिल्प को सचालित किया।

इस औपन्यासिक शैली के हिंदी मे प्रवर्तक निर्विवाद रूप से श्रीजैनेन्द्र कुमार ठहरते है। उनकी पहली ही रचना 'परख' मे हमे वस्तु-व्यापार की कमी और पात्रो के आतरिक उथल-पुथल से सचालित लघु-लघु व्यापारो के अकन का सकेत मिलने लगता है। अनुभूतियॉ वस्तुतः यहीं से आत्मनिष्ठ होकर सामने आने लगती है। 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'व्यतीत', 'सुखदा', 'विवर्त' सभी उपन्यासो मे उपरोक्त शैली की कलात्मक बारीकियॉ आती ही गयी है। जैनेन्द्र की भाषा मे Mannerism कम है, इस प्रकार के आतरिक आलोडन-विलोड़न से उत्पन्न अनुभावो के लघुतम चिन्हो को आकने के भाषागत घुमाव अधिक है। एक बात यहीं पर और कह देनी आवश्यक है कि इस शैली के लेखक नवीन मनोविश्लेषण—जिसमे असाधारण मनोविज्ञान और फ्रायड, युग आदि नए अन्तश्चेतनावादी मनोवैज्ञानिको के दर्शन का सन्निवेश है—से काफी प्रभावित हुए। भगवती प्रसाद वाजपेयी इसी शैली के एक और लेखक है जिनमें फ्रायड के सिद्धातो का यात्रिक पोषण अधिक है, जैनेन्द्र के वर्णनो की आत्मीयता कम। इसी समय सियारामशरण गुप्त के 'नारी' आदि उपन्यास प्रकाश मे आए। पर गुप्तजी मे जैनेन्द्रजी की बौद्धिक तीक्ष्णता, सहज और स्वतंत्र चितनपरक दार्शनिकता और भाषागत वक्रता नहीं है। कह सकते है जब कि गुप्तजी मर्यादाओ मे बद्ध हैं तो जैनेन्द्रजी मर्यादाओ में स्वच्छंद। फ्रायड से पूर्ण प्रभावित उपन्यासकार इलाचद्र जोशी भी इसी सरणी मे आते है। 'लज्जा', 'प्रेत और छाया' आदि उपन्यासो मे 'सेक्स' सबधी अतृप्ति उभरती है। पर इतना निश्चित है कि फ्रायड के सिद्धान्तो का सामाजिक और नैतिक मूल्य अत्यन्त सदिग्ध है।

जिन लेखको की प्रतिभा बहुमुखी, ज्ञान विस्तृत, रुचि परिष्कृत, कही जाती

है उनमे श्री सच्चिदानंद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम प्रमुख है। उपन्यासो के नाम पर आपने महज दो उपन्यास लिखे हैं पर उनका महत्व असदिग्ध है। "शेखर : एक जीवनी" दो भागो मे तथा "नदी के द्वीप"। 'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय की अमर कृति है। जिसका एक-एक भाग जीवन और जगत् के बहुमुखी पहलुओ के नाना चित्र अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ उपस्थित करता है। कहते है यह अज्ञेय की भ्रमणशील, एकात, विद्रोही जिदगी का अपना नमूना है। जो भी हो, शेखर के जीवन के कुछ प्रसग तो हमारे हृदय के अतल में टिक जाते है। जैसे शेखर के जेल जीवन का प्रसग शशि और शेखर का अंतिम जीवन आदि। अवश्य ही प्रथम भाग के बालक शेखर का गुरुतर बौद्धिक चिंतन अस्वाभाविक लगता है। "नदी के द्वीप" भी उसी लेखक की एक सजग कृति है। इसके अगोपाग-सहित लघु-लघु प्रकृति-चित्र, प्रत्येक चित्र के धुंधले से धुंधले Shades के अकन अभूतपूर्व है। परतु इस उपन्यास के पात्र, इस उपन्यास का दर्शन, दोनो वह शक्ति नहीं पा सके है जिससे व्यक्ति और समाज को प्रेरणा प्राप्त होती। भाषा की दृष्टि से अज्ञेय हिंदी की अभिव्यंजना शक्ति के बढ़ाने वालो मे अग्रणी ठहरेगे। टेकनीक की दृष्टि से अज्ञेय की उपन्यास-कला मे अग्रेजी की उपन्यास-कला की समस्त चढ़ाइयो से प्राप्त विशेषताओ का परिचय मिलता है।

हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यास

ऊपर कहा जा चुका है कि किशोरी लाल गोस्वामी हिंदी के दूसरे मौलिक उपन्यास (ऐतिहासिक, रोमानी) लेखक है। इनके द्वारा प्रवर्तित परपरा बगला के हिंदी अनुवादो मे पोषित होती हुई बढती रही। पर इन उपन्यासो मे तत्कालीन संस्कृति के यथार्थ पक्षो का कालदोष-रहित अकन हो न सका। उसकी प्रेरक भाव-भाग अग्रेजी का रोमास ही था। 'प्रसाद' की 'इरावती' मे शुंगकाल का एक चित्र-खट अवश्य आ रहा था पर वह अधूरा ही रह गया, कुछ पहले शुकदेवबिहारी मिश्र ने गुप्तकाल पर एक उपन्यास लिखा; परतु आलोचक उपन्यास-लेखक न हो सका। निराला ने भी अपवाद स्वरूप एक उपन्यास 'प्रभावती' लिखा। वस्तुतः हिंदी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार २० वी शती के मध्य दशकों मे हुए। इनमे महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पं० भगवतशरण उपाध्याय, आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी, श्रीयशपाल, श्रीरांगेयराघव, श्री चतुरसेन शास्त्री और इन सबमे श्रेष्ठ बाबू वृंदावनलाल वर्मा प्रमुख है। राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे यान्त्रिक मार्क्सवादी ढग पर इतिहास के पुनर्निर्माण का प्रयत्न है इसलिए उनका साहित्यिक मूल्य किंचित कम हो गया है। भगवतशरण उपाध्याय और रांगेयराघव के उपन्यासो मे ऐतिहासिकता के प्रति इतना आग्रह बढ़ गया है कि एक प्रकार की गरिष्ठता का अनुभव होने लगता है। पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (लेखक की एक मात्र पूर्ण औपन्यासिक कृति) अपने ढग की अकेली रचना है। इसमे तत्कालीन सास्कृतिक पटभूमिका पर चरित्रो का सहजतर विकास अद्भुत है, वाग्विभूति का तो पूछना ही क्या। 'चारुचद्र लेख'[1] द्विवेदीजी का एक अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है जो अभी अप्रकाशित है।

इन सबमे श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावन लाल वर्मा है। इनकी रचनाओ मे रुहेलखड का इतिहास उभर कर सामने आया है। इनमे न राहुल जी का सोद्देश्य मत-प्रचार है, न द्विवेदी जी की वाग्विभूति, न भगवतशरण और रांगेयराघव का अत्यधिक ऐतिहासिक आग्रह, न चतुरसेनशास्त्री की "वैशाली की नगर वधू" की अनावश्यक विराटता। वर्माजी ने अकृत्रिम प्रवहमान भाषा मे ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादाओं को निभाते हुए रुहेलखड की भूमि और इतिहास को अपनी कला का विषय बनाया है। वर्मा जी के प्रत्येक उपन्यास मे जनवादी दृष्टि और स्वाधीन चेतना प्रसार पाती है। भाषाशैली मे प्रादेशिक रग (Local colours) शीलवैचित्र्य सपन्नता, उनकी अन्य विशेषताएँ है। जो सबसे जबर्दस्त चीज वर्मा जी में मिलती है वह है काल विशेष के वातावरण का सजीव, सम्बद्ध, पुनर्निर्माण। 'पद्मिनी', 'गढकुडार', 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी' अपने ढंग की अकेली रचनाएँ हैं।

इधर के लेखको में यशपाल का स्थान अत्यत विशिष्ट है। आप मे एक उत्कृष्ट औपन्यासिक प्रतिभा है। साम्यवाद से अतिशय प्रभावित होने के कारण आपके आरभिक उपन्यासो—'दादा कामरेड' और 'पार्टी कामरेड' मे रोमास से रजित

---

१. 'पारिजात' मासिक के कई अको मे प्रकाशित।

समाजवादी यथार्थ के दर्शन होते हैं। पर लेखक की यह मतप्रचार -वृत्ति कहीं-कहीं अतिरेक को पहुँच जाती है। 'देशद्रोही' और 'दिव्या' इन दोनो में उपन्यासकार पूर्वापेक्षा विशेष सफल हुआ है। विस्तृत आधार फलक (Convas) का सजीव निर्माण, नारी के ममताशाली रूप की व्यञ्जना आदि—देशद्रोही की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इस उपन्यास के व्यंग्यो की अपनी एक अलग विशेषता है। 'दिव्या' यशपाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। बौद्ध-काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हृदय की सचाइयो को साहसपूर्वक स्वीकार करने वाली नारी का इसमे सफल चित्र है। यहाँ लेखक का जीवनदर्शन कलात्मक ढंग से व्यक्त होकर उपन्यास की धारा मे एक रस हो गया है। परतु यह विशेषताएँ 'मनुष्य के रूप' मे क्षीणतर होती गयी है। इसका सारा विकास एक पतनोन्मुख व्यक्ति के विविध रूपो का विकास है इसके लिए सामाजिक परिस्थितियाँ उत्तर-दायी बतलाई गई है। लेकिन सामाजिक यथार्थ की आड़ मे प्रकृतिवाद का यह चित्रण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।

अन्त मे अश्क और नागार्जुन दो और प्रतिभाशाली लेखक सामने आते है जिन्होंने जनजीवन की ओर रचनात्मक कदम उठाया है। विष्णुप्रभाकर, देवराज, अमृतराय आदि अन्य लेखक भी इस दिशा मे गतिशील है। जिंदगी के बढ़ते हुए कशमकश का अंकन इन सभी लेखको ने स्वस्थ दृष्टि से किया है। निष्कर्ष यह कि इस समय हिंदी-उपन्यास मे दो धाराएँ स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। एक तो जैनेन्द्र, इलाचंद्रजोशी, कुछ दूर तक अज्ञेय आदि मे चलने वाला व्यक्तिवादी दर्शन। दूसरी ओर यशपाल, अश्क आदि मे आकुल होने वाली समाजोन्मुख प्रवृत्तियाँ।

———

प्रेमचंद : जीवनरेखा

प्रेमचद का वास्तविक नाम धनपतराय था। आपका जन्म सन् १८८० ई० मे काशी के समीप लमही ग्राम मे हुआ। परिवार गरीब था। पिता की स्थिति यह थी कि उन्हे जीवन भर पीसने के पश्चात मृत्यु के समय भी तनख्वाह के ४०) ही मिल सके थे। प्रेमचंद को आरभ से ही कष्ट उठाना पड़ा। इतनी अल्प आय मे बालक प्रेमचंद की छोटी से छोटी इच्छाएँ अधूरी रही। वे पतग के शौकीन थे पर पतग और डोर को पैसे आवे कहाँ से ? पिता के जीते प्रेमचद को कभी बारह आने से अधिक का जूता और चार आने गज से अधिक की कमीज का कपड़ा पहनने को नही मिला। इतना ही नही, वे अपने पूरे परिवार के साथ एक गन्दी कोठरी मे रहते थे जिसका किराया केवल डेढ़ रुपया था। वह बालक जिसको होश सभालते ही अपनी छोटी से छोटी माग के लिए तरसना पड़ा हो, जिसे तनिक तनिक बातों के लिए सोचना पड़ा हो कि 'कहा से आएगा' उसका विकास निश्चित ही उसकी परिस्थितियो से लोहा लेने को शक्ति के द्वारा हुआ होगा।

बालक को माता का अनन्य स्नेह प्राप्त था जो शिशु के विकास के लिए फिर भी बड़ा सबल होता है। पर जिनको ठोकरों को ठेलते हुए बढ़ना होता है उनका सबल ही तो छिनता है, सात वर्ष की अबोध अवस्था मे प्रेमचद की मां का अवसान हो गया। विमाता मिली। भाग्य ही है यदि विमाताएँ ऐसे बच्चों को अपना मातृ स्नेह दे दे। प्रेमचद को भी वह न मिला। इस सबध के अपने कटु अनुभवो को उन्होने 'सौतेली मा', 'प्रेरणा', 'घर जमाई' आदि कहानियों तथा "कर्मभूमि' 'निर्मला' आदि उपन्यासो मे व्यक्त किया है।

प्रेमचद का विवाह उस समय को चलन के अनुसार १५ वर्ष की अवस्था मे हुआ। प्रेमचंद की पत्नी से न पटी। कारण यह था कि वह बदसूरत और असभ्य

थी। प्रेमचंद उसे झेल न सके; नैहर में डाल दिया और मामूली गुजरभर के लिए खर्च देने के अतिरिक्त सब प्रकार का संबंध विच्छेद कर लिया। विवाह के पश्चात् एक वर्ष भी नहीं हुआ कि पिता ने एक १६ वर्ष के बालक पर, पाँच प्राणियों के परिवार का भार लादकर संसार छोड़ दिया। परिवार मे विमाता और दो सौतेले भाई भी थे। वह १६ वर्ष का बालक इन तहस-नहस कर देने वाली परिस्थितियों मे भी जीवित रहा—अपने समस्त आत्मबल के साथ। परिवार और अध्ययन दो परस्पर विरोधी समस्याएँ उसके सामने थीं। उसने दोनों को साथ लिया। बनारस के क्वींसकालेज मे निःशुल्क अध्ययन की व्यवस्था हुई, प्रेमचद ने ट्यूशन शुरू किया। रात दिन के जीतोड़ परिश्रम के पश्चात् उन्होंने १६०४ ई० मे मैट्रिक्यूलेशन द्वितीय श्रेणी मे किया। परिस्थितियों से बराबर लड़ते हुए प्रेमचद ने कुछ वर्षों के पश्चात् ही इंटर भी कर लिया। इसी बीच अठारह रुपये मासिक पर किसी छोटे से स्कूल मे अध्यापक नियुक्त हो गए। अब प्रेमचंद को बी० ए० करने का अवसर मिला और परिस्थितियों को पछाड़ते हुए प्रेमचंद ने बी० ए० भी कर लिया।

प्रेमचद ने इसी जीवट की मूर्ति का अकन अपने कथा-साहित्य मे अनेक स्थलो पर किया है। 'रंगभूमि' के सूरदास मे यही जीवित शक्ति प्रकट हुई। सूरदास कहता है "सच्चे खिलाडी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाजी हारते है, चोट पर चोट खाते है; धक्के पर धक्के सहते है पर मैदान मे डटे रहते है। उनकी त्योरियो पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती; दिलपर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं न चिढ़ते है। खेल मे रोना कैसा! खेल हसने के लिए है। दिल बहलाने के लिए है। रोने के लिए नहीं—" इसमे सूरदास ही नहीं प्रेमचद भी स्पष्ट हो गये हैं। चोटो को चोट देने वाले ऐसे बेशिकन खिलाड़ी हिंदी मे कम ही हुए है।

प्रेमचंद अपनी पत्नी को न झेल पाने के कारण सन् १६०५ ई० मे शिवरानी नाम की एक बाल-विधवा से अपना दूसरा विवाह किया। हिंदू-समाज मे, संप्रति अनमेल विवाह और विधवा-विवाह दो महत्वशाली समस्याएँ है। प्रेमचंद के जीवन तथा साहित्य, दोनो में इसका अत्यत साहसपूर्ण उत्तर मिलता है। शिवरानी को पाकर प्रेमचद खुश थे। उन्होंने लिखा है कि वह एक "निर्भीक, साहसी, दृढ़, विश्वसनीय, भूल स्वीकार करनेवाली और अत्यधिक प्रोत्साहन देने वाली

स्त्री है। उसकी रुचि साहित्यक है और वह कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है। उसने असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया और जेल गई। जो कुछ वह नही दे सकती उसकी आशा न करता हुआ मै उससे प्रसन्न हूँ। वह टूट भले ही जाय पर आप उसे झुका नही सकते।" शिवरानी ने दो सुधी साहित्यकार, श्रीपतराय और अमृतराय भी हिंदी को दिए।

अपनी योग्यता और परिश्रम के बल पर प्रेमचंद २८ वर्ष की अवस्था मे सहकारी अध्यापक के पद से उन्नति करके सब डिप्टी इंस्पेक्टर हो गए। इस पद पर भी प्रेमचंद ने सफलता पूर्वक कार्य किया। पर गाधी जी के दर्शन मात्र से ही प्रेमचद चेत ऊठे और अपनी २० साल की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार उन्होने अपने वैयक्तिक जीवन मे ही सामाजिक क्राति करने के पश्चात साम्राज्यवादी नौकरशाही से भी इनकार किया। यह उनकी जीविका का आधार भी था। एक सही लक्ष्य के लिए 'जीविका से इनकार' सही अर्थों मे 'त्याग' है।

प्रेमचंद : अन्यायों के विरुद्ध निरंतर लड़ने वाले साहित्य-साधक के रूप में।

अक्सर बडा साहित्यकार बड़ा अध्येता भी हुआ है। प्रेमचद भी इसके अपवाद नहीं थे। उन्होने अपने आरंभिक अध्ययन के विषय मे स्वय लिखा है "उस समय मेरी उम्र कोई १३ साल रही होगी, हिंदी बिलकुल न जानता था। उर्दू उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरर, प० रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती थी स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने मे रेनाल्ड के उपन्यासो की धूम थी। उर्दू मे उनके उपन्यास धड़ाधड निकलते थे और हाथोहाथ बिकते थे। मै भी उनका आशिक था स्व० हजरत रियाज ने, जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं और उनका हाल मे देहान्त हुआ है; रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद 'हरमसरा' के नाम से किया था। उसी जमाने मे लखनऊ साप्ताहिक के 'अवधपंच' के सम्पादक स्व० मौलाना सज्जाद हुसेन ने, जो हास्यरस के अमर कलाकार है, रेनाल्ड के एक दूसरे उपन्यास का अनुवाद 'धोखा या तिलस्मी फानूस' के नाम से किया था। ये सारी पुस्तके मैने उसी जमाने मे पढ़ी और पं० रतननाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति ही नही होती

थी। उनकी सारी रचनाएँ मैंने पढ़ डालीं।.....दो तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टाक समाप्त हो गया तो मैंने नवल किशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े 'तिलिस्म होशरुबा' नामक तिलस्मी ग्रंथ के १७ भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक एक भाग बड़े सुन्दर व रायल के आकार के दो-दो हजार पृष्ठों से कम न होगा इन १७ भागों के उपरांत उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसगों पर पचीस भाग छप चुके थे। इनमें से भी मैंने कई पढ़े।"

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि प्रेमचद ने अपने अत्यन्त अल्पवय में ही ढेर के ढेर उपन्यास पढ़ डाले थे। प्रेमचद ने अपने एक पत्र में अपनी प्रारंभिक रचनाओं के विषय मे इसप्रकार प्रकाश डाला था। "मैंने उर्दू साप्ताहिकों और फिर मासिकों मे लिखना आरभ किया। लिखना मेरे लिए शौक की चीज थी। मैं सरकारी नौकर था और फुरसत के समय ही लिखता था। उपन्यासों के लिए मेरे हृदय मे शान्त न होने वाली भूख थी। और बिना भले-बुरे के ज्ञान के जो कुछ भी मुझे मिलता था उसे ही मै निगल जाता था। मेरा प्रथम लेख सन १९०१ ई० मे छपा और प्रथम पुस्तक सन १९०३ ई० में। लिखने से मेरे अहम् की तुष्टि के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। पहले मैंने सामाजिक घटनाओं पर लिखा और उसके बाद वर्तमान तथा अतीत के वीरों के रेखाचित्र पेश किए। सन १९०७ ई० मे मैंने उर्दू मे कहानियाँ लिखना आरभ किया और निरतर मिलने वाली सफलता से उत्साहित हुआ। सन १९१४ ई० मे मेरी कहानियों का अनुवाद हुआ और वे हिंदी के पत्रों मे प्रकाशित हुई। उसके पश्चात मैंने हिंदी को अपनाया और 'सरस्वती' मे लिखना आरभ किया। इसके बाद मेरा 'सेवासदन' निकला और मैंने नौकरी छोड़कर स्वतत्र रूप से साहित्यिक जीवन बिताने का निश्चय किया।"

इस प्रकार प्रेमचद ने जिस समय हिंदी मे लिखना आरभ किया उस समय देवकीनंदन खत्री के तिलिस्मी उपन्यासों, किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक रोमान्स की धूम थी। शुद्ध सामाजिक उपन्यासों की कलापूर्ण सृष्टि के नाम पर हिंदी में कुछ नहीं था। प्रेमचद को ऐसी परिस्थिति मे अपना पथ स्वय बनाना पड़ा। अंग्रेजी और उर्दू के अपने विशद अध्ययन के बल पर तथा अपनी विशाल

अनुभूतियों के सहारे प्रेमचंद ने हिंदी में लिखना शुरू किया। पर हिंदी में लिखने के पूर्व, सन १६०८ में ही प्रेमचद के साहित्यिक-जीवन को सबसे महत्वपूर्ण घटना घट चुकी थी। बग-भंग आदोलन के समय ही, राष्ट्रीय अतःसवेदनाओं से परिपूर्ण, प्रेमचंद का प्रथम उर्दू कहानी-संग्रह 'सोज़ेवतन' प्रकाशित हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियो ने इस उठती हुई राष्ट्रीय ताकत को दबाना चाहा और जनता के सामने 'सोज़ेवतन' की ५०० प्रतियों मे आग लगा दी। पर क्या यह आग नवाबराय के साहित्यिक राष्ट्रीय मनोवृत्ति को भी जला सकी ? नही। बल्कि प्रेमचंद के हृदय मे समस्त अन्यायमूलक साम्राज्यवादी, शोषणवादी, रुढिवादी परपराओ के मूलोच्छेद के लिए राशि-राशि उपन्यास लिख डालने की नई आग लगा दी।

नौकरी छोडने के पश्चात् प्रेमचद पूर्णरूप से कलम के मजदूर बन गए। एक जाग्रत राष्ट्र के साहित्यकार की धमनियो मे जो रक्त प्रवाहित होना चाहिए प्रेमचद की रगो में वह बह रहा था। उन्होने अपने उपन्यासो मे, उठती हुई राष्टीय शक्तियो, राष्ट्रीय आदोलनों तथा राष्ट्रीय चेतनाओ का बराबर आभास दिया। सामाजिक रुढ़ियो और पिसते हुए सामाजिक अगो को भी उन्होने अपने उपन्यासो में साथ ही साथ लिया। प्रेमचद की साहित्यसेवा उपन्यास-लेखन में ही सीमित न थी, उन्होने पत्रो का प्रकाशन भी आरभ किया। 'जागरण' और 'हस' उनके द्वारा सचालित दो मासिक थे। प्रेस भी उनका अपना था। पत्र और प्रेस के संचालन मे उनके जीवन की बहुत शक्ति लगी। जैनेन्द्र जी को एक पत्र लिखते हुए एकबार प्रेमचद जी ने लिखा था "धन का अभाव है 'हस' मे कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि सर्वसाधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हजारो का घाटा ही होगा। पर करूँ क्या ? यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा घाटा है। यह कुछ चल जाय तो प्रेस के लिए काम की कमी की शिकायत न रहेगी। अभी तो मुझे ही पिसना पड़ेगा।"[1] परिस्थितियो ने उन पर कभी रहम नहीं किया। प्रेमचद जी ने भी उनसे कभी रहम नही मांगा। वह जूझते ही रहे। सारी उम्र इसी मे गुजारी, फिर भी नई विपत्तियों का सामना करते उन्हें

१ प्रेमचंद-स्मृति-अक पृ० ७८२।

डर होता था। वह बचते न थे, कर्तव्य से कतराते न थे, उन्हें पैसे का लोभ न था; हाँ घाटे का डर तो था ही। इस घाटे ने उनकी कमर तोड़ दी। 'हंस' चलाया; 'जागरण' चलाया। दोनों मे भावना सेवा की भी थी। मै कह सकता हूँ कि उनमे व्यवसाय की भावना नही के बराबर थी। पर दोनों उनका मन और तन तो लेते ही रहे, तिसपर उनसे धन भी मागते रहे, धन उनके पास देते और देते रहने को कहा था।[१] इसी समय बबई की एक सिनेमा कपनी ने प्रेमचद को बुलाया। प्रेमचद ने एक पत्र मे जैनेन्द्र जी को लिखा "मुझे बंबई की कम्पनी बुला रही है। मुझे तो कोई हरज नही मालूम होता अगर वेतन ७,८ सौ मिले। साल दो साल करके चला आऊगा। मगर अभी मैंने जवाब नही दिया है। उनके दो तार आ चुके है। प्रसाद जी की सलाह है, 'आप बबई न जाय', तुम्हारी भी यही राय है तो मै न जाऊगा। जौहरी जी कहते है "जरूर जाइये"। और चिरसंगिनी दरिद्रता भी कहती है कि जरूर चलो।"[२] जैनेन्द्र जी को दूसरे पत्र मे प्रेमचंद ने बबई से लिखा "मै जिन इरादो से आया था उनमे एक भी पूरा नजर नही आता। यह साल तो पूरा करना ही है। कर्जदार हो गया था कर्ज पटा दू गा, मगर और कोई लाभ नही। यहा तो जान पड़ता है जीवन नष्ट कर रहा हूँ।"[३]

प्रेमचद फिल्मी लाइन से लौट आए। प्रेमचंद का जीवन इसके बाद भी बेहद व्यस्तता का था। वे जैनेन्द्र जी को एक पत्र मे लिखते हैं "चतुर्वेदी जी ने कलकत्ते बुलाया था कि नोगुची जापानी कवि का भाषण सुन जाओ। यहा नोगुची हिंदू यूनिवर्सिटी आए, उनका व्याख्यान भी हो गया। मगर मै न जा सका। ईश्वर पर विश्वास नही आता, कैसे श्रद्धा होती। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो। जा नही पक्के भगत बन रहे हो मै सन्देह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूं।"[४] इस प्रकार अविराम सघर्षों से जूझते हुए, हार और जीत को समभाव से सहन करते हुए, हिंदी-साहित्य मे एक अध्याय छोड़कर, अंत समय मे भी 'हस' को चलाने की तड़प और चिंता लिए प्रेमचंद चले गए। हिंदी वालो के सामने एक प्रश्न है कि उन्होंने प्रेमचंद के लिए क्या किया और क्या कर रहे हैं?

---

१ वही; पृष्ठ ८६६। २ वही, पृ० ८६६। ३ वही, पृ० ६००। ४ वही, पृष्ठ ६०१।

प्रेमचंद-साहित्य : एक मूल्यांकन

हिंदी-कथा-साहित्य की ओर प्रेमचंद का आगमन हिंदी के लिए एक ऐतिहासिक घटना है। प्रेमचंद से पूर्व का कथा-साहित्य, विशेषतः उपन्यास-साहित्य, परिमाण मे प्रचुर होते हुए भी प्रयोग की ही अवस्था मे था। भारतेंदु, श्रीनिवासदास, बालकृष्णभट्ट आदि द्वारा संचालित सामाजिक उपन्यासो की परपरा नीति-प्रधान कथात्मक प्रबंधो से बहुत अधिक नही थी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि द्वारा पुरस्कृत ऐतिहासिक रोमानी उपन्यासो की परपरा भी अनेक प्रकार के कलात्मक तथा वस्तुगत दोषो से पूर्ण थी, देवकीनंदन खत्री तथा गोपालराम गहमरी आदि द्वारा लिखित तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास तो वास्तविक जीवन के प्राण-स्पदनो से विहीन थे ही। इन प्रयासो मे स्पष्टतः उपन्यास-कला की कथा, चरित्र, संवाद संबधी बीजवत साकेतिक विशेषताएँ ही मिलती है। नूतन उपन्यास-कला की प्रमुख विशेषताएँ, पात्रो के शील-वैचित्र्य का सम्यक् उद्घाटन, उद्देश्य का वस्तु की प्राणधारा मे अलक्ष्य ढंग से मेल, देश-काल का यथार्थ चित्रण आदि तत्कालीन उपन्यासो मे नही मिलती। अवश्य ही बगला के महान औपन्यासिको बकिम, शरत, रवीन्द्र आदि के उपन्यासो के अनुवादों मे उपन्यास-कला के विशिष्ट तत्व सामने आए। परंतु इन विशेषताओ के समाहार करने की स्थिति मे तत्कालीन हिंदी-उपन्यासकार नही थे। कुल मिलाकर इतना ही कहा जा सकता है कि प्रयोग-युग या प्रारभिक युग के उपन्यासो ने नई उपन्यास-कला के विकसित होने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

प्रयोग-युग की प्रवृत्तियो पर भी थोड़ा विचार कर लेना उपयुक्त होगा। वस्तुतः उस समय दो प्रकार की धाराएँ दिखलाई पड़ती है। प्रथम तो वह है

जिसका मुख्य उद्देश्य सुधारों को आगे बढ़ाना था। इस प्रकार के उपन्यासों पर उस युग के पुनर्जागरण-काल का विशेष प्रभाव मिलता है। इस पुनर्जागरण के पीछे राजा राममोहनराय द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज और स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज था। पहले का विशेष प्रभाव बंगला के सामाजिक उपन्यासो पर पड़ा दूसरे की अत्यधिक प्रेरणा हिंदी के सामाजिक उपन्यासो को प्राप्त हुई। इस पुनर्जागरण ने हमारे भीतर पराधीनता से उत्पन्न मूर्च्छा को दूर किया, अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति विश्वास जगाया, रूढ़ियो पर बौद्धिक दृष्टि-पात करने का संकेत किया। यहाँ तक कि किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक रोमानी उपन्यासो मे भी इतिहास के पुनर्निर्माण का प्रयास मिलता है। लेकिन इस युग की एक दूसरी धारा भी थी जो कदाचित उपन्यासो का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन समझती थी। वस्तुतः इस प्रकार के घटना-प्रधान उपन्यासो के पीछे सामंती विलासिता की कौतूहल-तृष्णा की तृप्ति का उद्देश्य था। प्रेमचद के भीतर से नए प्रकाश मे पहली प्रवृत्ति का विकास हुआ, दूसरी धारा अपनी ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण आगे न बढ़ सकी।

प्रेमचंद जिस युग मे पैदा हुए वह पुनर्जागरण से पैदा हुई सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के विकास का युग था। आरभ मे प्रेमचंद पर भी आर्यसमाज का गहरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उस समय आर्यसमाज उत्तर-भारत के जनचित्त को विधवा-विवाह के प्रचार, जातिभेद के विरोध, शुद्धि आदि के सगठनो के लिए उन्नत कर रहा था। राष्ट्रीय चेतना के विकास के परिणाम स्वरूप कांग्रेस का जन्म हो चुका था और सन् २० तक आते-आते राजनीति महलो से निकल कर गांधीजी के साथ झोपड़ो की ओर चल पडी थी। हमारे सारे राजनीतिक प्रयत्नो को गांधीजी के व्यापक प्रभाव मे एक दिशा मिल गयी थी। हममे एक प्रकार का आत्मबल पैदा हो गया था जिससे हम अनेक प्रकार के कष्टो की अवहेलना करके विदेशी शासको से मोर्चा लेना सीख गए थे। प्रेमचंद का २० वर्ष की सरकारी नौकरी से त्यागपत्र उसी राष्ट्रीय चेतना का फल था। प्रेमचद के सम्पूर्ण परवर्ती विकास मे हमे इन संवेदनाओ के दर्शन होते है।

आर्थिक दृष्टि मे उस युग की आर्थिक व्यवस्था दो वर्गों के हाथो मे केंद्रित हो चली थी। सामंतवर्ग टूटकर एक ओर पूँजीपतियो मे तथा दूसरी ओर

रजवाड़ो, ताल्लुकेदारो, जमीदारो मे रूपातरित हो गया था। नगरो मे श्रमिक तथा गावो में किसान इन पूँजीपतियो और जमींदारो के शोषण के आधार बने हुए थे। इन दोनो वर्गों के बीच था मध्यवर्ग। प्राचीन रूढ़ियो के निर्वाह की सबसे अधिक जिम्मेदारी इसी वर्ग के ऊपर थी। यह वर्ग शिक्षित था। बुद्धिजीवी (Intelligentsia) वर्ग इसी मे था। सामान्यतः इस वर्ग की प्रवृत्ति पूँजीपतियो और जमीदारो की ओर ऊपर उठने की थी पर विशेषतः इस वर्ग की प्रवृत्ति सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदोलनो मे भाग लेने की थी। प्रेमचंद बुद्धिजीवी वर्ग की इसी विशेष प्रगतिशील प्रवृत्ति के परिणाम थे।

उस युग की आर्थिक क्राति का अर्थ था किसानो के आदोलन को आगे बढाना। श्रमिको का आदोलन उस समय तक इस कृषि-प्रधान देश मे अधिक आगे नहीं बढ सका था। किसान आंदोलनो को आगे बढ़ाने का अर्थ था जमीदारो और जमींदारो के जन्मदाता अग्रेजी सरकार की नौकरशाही को समाप्त करना।

प्रेमचद बहुत कुछ इसी साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संक्रातिकाल मे पैदा हुए।

× × × ×

प्रेमचंद के व्यक्तिगत जीवन का निरीक्षण हम कर चुके हैं। प्रेमचंद निम्न मध्यम वर्ग की अत्यंत गिरी हुई परिस्थिति की उपज थे। कहा जा चुका है कि उनके कमजोर कधो पर पद्रह वर्ष की अवस्था मे ही परिवार और अध्ययन दोनों का बोझ आ पड़ा था। इन परिस्थितियो को उन्होने एक साथ पार कर लेने का अत्यत विरल उदाहरण दिखाया यह एक बात है, पर प्रकृत प्रसग यह है कि इस लेखक के भीतर गरीबी के दर्द को समझने की अद्भुत शक्ति थी। जिस युग मे प्रेमचद पैदा हुए थे, कहा जा चुका है कि उस युग मे भारतीय किसान के ऊपर सारी शासन-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था, और अर्थ-व्यवस्था का दबाव पड़ रहा था। ऐसे मे तिलतिल का मिटने के अतिरिक्त किसानो को कोई चारा नही था। गरीबो के दर्द को समझने वाले साहित्यकार प्रेमचद ने भारत के इस किसान की पीड़ा को और उसके सघर्ष को वाणी देने का प्रयत्न किया। इस तथ्य को लेकर कुछ लेखको ने प्रेमचंद के साहित्य को निम्नवर्ग का साहित्य (Proletarian literature) कहा है। प्रोलेटेरियन साहित्य का

अर्थ होता है शोषित मानवता की पीड़ा तथा शोषण को दूर करने के लिए उसके संघर्ष को आगे बढ़ाने वाला साहित्य। निश्चित ही प्रेमचद इस प्रकार निम्नवर्ग के बहुत बडे साहित्यकार थे। भारत के किसान आदोलन और राष्ट्रीय आदोलन को जितनी उनसे शक्ति प्राप्त हुई होगी उतनी अन्यत्र से कम। प्रेमचद क्राति पैदा करने वाले विश्व के महान उपन्यासकारो की परपरा मे आते है। उनका महत्व भारतवर्ष मे टाल्सटाय, डोस्टावोस्की और गोर्की से किसी तरह कम नहीं है।

लेकिन प्रेमचद इतने मे ही सीमित नही थे। उन्होने मनुष्य को उसके मौलिक रूप मे अपने साहित्य में लिया है तथा उसके जीवन-रहस्यो का अनेक स्थानो पर अभिव्यक्त किया। उसके राग-द्वेष, सुख-दुख, दया-करुणा आदि मनोभावो का गहराई से विश्लेषण किया। प्रेमचंद ने यथार्थवाद के उस अर्थ को भी आगे बढ़ाया जो थैकरे, रीड, जार्ज इलिएट, जेन आस्टिन आदि के भीतर से आया था अर्थात् अपने युग की प्रगतिशील प्रवृत्तियो और पिछड़ी हुई आचार-परंपरा मे चिपटी हुई जनता की मनोवृत्तियों का सामजस्य करने का उनका प्रयत्न भी विशेष रूप से उल्लेख्य है।

प्रेमचंद का ईश्वर मे विश्वास नहीं था परंतु कौन कह सकता है कि भारतीय जनता के उस महान कलाकार मे जितना मनुष्य के प्रति विश्वास और मोह था उतना और किसी मे था, चाहे वे बगाल के मनीषी उपन्यासकार ही क्यो न हो। उन्होने विधवाओ, वेश्याओं, भिखमंगो, मज़दूरो, किसानों सभी त्रस्त लोगों को अपनी लेखनी से असाधारण बनाया। प्रेमचद के पात्र सुमन, सूरदास देवीदीन, होरी किसे भूल सकते है। जो भारतीय जनता अपने को नियति के हाथ सौंप चुकी थी उसकी प्रबल सामूहिक शक्ति को पहचान कर उसे आगे बढाना प्रेमचद का ऐतिहासिक कार्य है।

प्रेमचद के इस साहित्यिक व्यक्तित्व का श्रेष्ठ विश्लेषण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है। "उन्होंने अपने को सदा मजदूर समझा। बीमारी की हालत मे भी, मृत्यु के कुछ दिन पहले तक भी, वे अपने कमजोर शरीर को लिखने के लिए मजबूर करते रहे। मना करने पर कहते, "मै मजदूर हूँ मज़दूरी किए बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं।" उनके इस वाक्य मे अभिमान का भाव भी था और अपने नाकद्रदान समाज के प्रति एक व्यंग्य भी। लेकिन

असल मे वे इसलिए नही लिखते थे कि उन्हें मजदूरी करना लाजिमी था बल्कि इसलिए कि उनके दिमाग में कहने लायक इतनी बातें आपस मे धक्का-मुक्की करके निकलना चाहती थी कि वे उन्हे प्रकट किए बिना रह नही सकते थे। उनका हृदय अगर इन्हें प्रकट नही कर देता तो वे शायद पहले ही बंधन तोड़ देते। दुनियाँ की सारी ज़टिलताओ को समझ सकने के कारण ही वे निरीह थे, सरल थे। धार्मिक ढकोसलों को वे ढोंग समझते थे पर मनुष्यता को वे सबसे बड़ी वस्तु मानते थे।"[१]

सेवासदन

प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' १६१६ ई० मे प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व सन् १६०५ मे 'प्रेमा' नामक उपन्यास निकल चुका था यह इनके उर्दू कृति 'हमखुरमा हमसवाब' का हिंदी-रूपातर था। इसे एक बड़ी कहानी कहना ही उपयुक्त होगा। 'प्रेमा' मे विधवाओ के उत्पीड़न का अकन हुआ है और समाधान के रूप मे 'विधवा-विवाह' रखा गया है। आरंभिक कृति होने के कारण इसमे कलात्मक बारीकियाँ तो नही देखना चाहिए पर एक बात अवश्य विचारणीय है। वह है उपन्यासकार का स्वाधीनचेता साहस। शुरू से ही प्रेमचंद ने क्राति का स्वर अपनाया और अत तक उसे जाग्रत रखा। 'सेवासदन' मे प्रेमचद ने दहेज-प्रथा की समस्या को लिया है। 'दहेज-प्रथा' से उत्पन्न बुराइयो की जड़ हमारी समाज-रचना की धरती मे कितनी गहरे गई है और उनके मूलोच्छेद की क्या दिशाएँ है— इसी का अंकन आलोच्य उपन्यास का उद्देश्य है। दारोगा कृष्णचद्र की लड़की सुमन जवान हो गयी है। जवान बेटी को घर मे रखना ससार-समाज-धर्म सभी दृष्टियो से निंदनीय है। फलतः उसी ससार, उसी समाज और उसी धर्म ने कृष्णाचद्र को घूस लेने के लिए बाध्य किया जिसका परिणाम उनके लिए कारावास के दड, स्त्री के लिए दारिद्रय की ज्वाला, पुत्री के लिए एक अपात्र के पत्नीत्व के रूप मे निकला। एक छोटी-सी गलती पर गदाधर सुमन को घर से बहिष्कृत कर देता है और सुमन समाज के ठेकेदारो के यहाँ आश्रय न पाने पर वेश्यालय मे शरण लेती है। उसे वेश्यालय मे जाने देकर प्रेमचंद ने समाज की बनावटी शान के ऊपर कठोर व्यग्य किया है। वहाँ सुमन का आदर बढ़ जाता है। जो समाज के ठेकेदार उसे आश्रय नही दे

---

१ हिंदी-साहित्य (१६५२) पृ० ४३४—३५

सकें वे उसके दास बनते है वह विट्ठलदास सुधारक से कहती है "मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार सेठ चिम्मन लाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खडी भींगती रही। किसी ने मुझे भीतर जाने न दिया। लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे मे मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ा मानो मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।"—यथार्थ का यह विषम चित्र कितना व्यंग्यात्मक है ?

प्रेमचद ने वेश्या और वेश्यालय का अंकन करते हुए भी कहीं क्षुद्रकोटि की वासना उभारने वाले चित्र नहीं आने दिया है—यह उनकी बहुत बड़ी विशेषता है। बल्कि इसके स्थान पर उन्होंने करुणार्द्र समवेदना ही व्यक्त किया है। पद्मसिंह के शब्दों में प्रेमचद इस संबध मे अपना मत व्यक्त करते है। "हमे उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ है, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है यह दालमंडी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिंब, हमारे पैशाचिक अधर्म का साक्षात स्वरूप है। हम किस मुंह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग पर लावें और उनके जीवन को सुधारें।"[1]

इतना ही नहीं समाज के काले आचरण को प्रेमचद ने निर्भय होकर अनावृत किया है। सुमन की छोटी बहन शांता के विवाह के लिए आई हुई बारात जब सुमनबाई के इतिहास तथा कृष्णचद्र के जेलखाने की बात सुनकर लौट जाती है उस समय का दृश्य हमें थाम लेता है। निरीह कन्या के ऊपर एक दूसरे का दोष आरोपित होता है। पर शांता इस सामाजिक अत्याचार को धीरज के साथ सहन करती है। शांता का प्रेम बहुत ऊँचा है जिसके फलस्वरूप सदन जैसा अस्थिर चित्त युवक भी संयमी बन जाता है फिर वेश्या बालिकाओं के लिए 'सेवासदन' की स्थापना करके लेखक ने इस समस्या का हल सुझा दिया है।

'सेवासदन' के वस्तु-संघटन को प्रायः सभी आलोचकों ने एक स्वर से उत्कृष्ट बताया है। बल्कि अधिकांश ने इसकी तुलना मे 'गोदान' के कथाबंध को भी अकलात्मक बताया। प्रेमचद की कलम की यह बहुत बड़ी सफलता है। 'सेवासदन' का मूलकेन्द्र

१ सेवासदन।

सुमन है, सभी पात्र और घटनाएँ उससे अनिवार्य रूप से जुडी हैं। पात्र और घटनाओ के अन्योन्याश्रित सबंध का पूर्ण निर्वाह आद्यत हुआ है। आरंभ से ही कृष्णचन्द्र एक ऐसी परिस्थिति मे दिखलाए जाते है जिसका अनिवार्य परिणाम सुमन के वेश्या जीवन तक चला आता है इसके पश्चात वेश्या सुमन और शाता कीवैयक्तिक ऊचाई के कारण शाता की समस्या का हल और 'सेवासदन' का जन्म होता है। 'सेवासदन' मे भापा के दोनो रूप मिलते हैं सुष्ठ और अनगढ़। भावानुकूल और पात्रानुकूल भापा लिखने के कारण कही-कही मुसलमान पात्रो के मुख से काफी क्लिष्ट उदू का प्रयोग करवाया गया है जो अवाछित था। पर कुल मिलाकर यह सकेत 'सेवासदन' से ही मिलने लगा था कि इस लेखक की लेखनी से आगे चलकर राष्ट्रभापा का वास्तविक स्वरूप निखरेगा।

इसके पश्चात 'वरदान' का प्रकाशन हुआ जो सेवासदन से पूर्व की रचना थी। प्रेमचद के पाठक और आलोचक इस कृति से सतोप न पा सके।

प्रेमाश्रम

सन् १९२२ ई० मे 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन हुआ। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचद ने देहातो की समस्याओ को लिया। यह प्रेमचद का सुपरिचित क्षेत्र था। इसमें उन्होने किसानो के उस जीवन को अकित किया जो जमीदारो, महाजनो, सरकारी कर्मचारियो से शोषित और उत्पीड़ित है, जो न्यायालयो मे न्याय नही पाता, जिसे वकील मूर्ख समझ कर चूसते है। यह उपन्यास प्रधानतः किसान और जमींदारो के अधिकार के लिए होने वाले युद्ध की कथा है। इस उपन्यास मे प्रेमचद ने किसान-आदोलन को आगे किया है जो हमारे राष्ट्रीय जागृति का एक अग था।

प्रेमचद की एक बडी विशेपता यह भी थी कि वे जिस समस्या को लेते थे उसके मूल तक, गहराइयो मे उतरते हुए चले जाते थे। इसीलिए उनके समाधान अधिक स्थिति-सापेक्ष और प्रभावशाली हुआ करते थे। 'प्रेमाश्रम' मे उन्होने भारतीय कृषक की गरीबी के मर्म को प्रेमशकर के शब्दो मे इस प्रकार रखा है:—

"इन किसानो की दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नही बल्कि उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और ये परिस्थितियाँ क्या है? आपस की फूट, स्वार्थ-परायणता और एक ऐसी सस्था का विकास जो उनके पाँव की बेडी बनी हुई है। लेकिन जरा विचार कीजिए तो ये तीनो टहनियाँ एक

ही शाखा से फूटती प्रतीत होगी और यह वही सस्था है जिसका अस्तित्व कृषको के रक्त पर अवलंबित है। आपस मे विरोध क्यों है? दुरव्यवस्थाओ के कारण जिसकी इस वर्तमान शासन ने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यो नही? इसलिए कि यह शासन इन सद्भावों को अपने लिए घातक समझता है और उन्हे पनपने नहीं देता। इस परस्पर विरोध का सबसे दुखजनक फल क्या है? भूमि का क्रमशः अत्यंत अल्प भागो मे विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि।"[1] 'वर्तमान शासन' अर्थात् ब्रिटिश नौकरशाही तथा 'कृषको के रक्त पर अवलंबित होने वाली सस्था' अर्थात् जमींदारी के प्रति प्रेमचद के मन मे घोर असंतोष था इस असतोष को वह मायाशकर के इन शब्दो मे व्यक्त करते हैः—

"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है, इसलिए उसे किसानो से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले या इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानो को अपना भोग्य पदार्थ बनाने कि स्वच्छंदता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलक-चिन्ह समझना चाहिए। जमींदार को समझना चाहिए कि वह प्रजा का मालिक नहीं वरन उसका सेवक है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है, अथवा ससार मे इसकी कोई जरूरत न थी, उसके बिना समाज के सगठन मे कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग मे उड़ाए, उनके टूटे-फूटे झोपड़ो के सामने अपना ऊंचा महल खड़ा करे; उनकी नम्रता को अपने रत्न-जटित वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी संतोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव मे लज्जित करे, अपनी स्वाद-लिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे, अपने स्वत्वो पर जान देता हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरकुश प्राणियो मे प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्द दूर हो उतना ही अच्छा है।"[2]

प्रेमचद के यथार्थ के इस दर्शन और वर्णन करने वाली प्रतिभा के पीछे

---

१. प्रेमाश्रम; पृष्ठ ३११। २. प्रेमाश्रम पृष्ठ ६४२।

विषमताओ से त्रस्त मनुष्य को मुक्त करने की जो प्रबल आकांक्षा छिपी हुई है वह साहित्य के लिए अमूल्य है। प्रेमचद ने न केवल भारतीय किसान के असतोष को ही वाणी दी वरन उनकी मुक्ति का रचनात्मक सकेत भी स्पष्ट किया, आदर्श ग्राम के रूप मे 'प्रेमाश्रम' का निर्माण उसी सकेत का व्यक्त रूप था।

प्रेमचद ने भारतीय ग्राम की समस्याओ के विषय मे एक साहित्यकार के रूप मे सबसे पहले इतना अधिक लिखा। तत्कालीन राष्ट्रीय जागर्ति को इससे इतना बल मिला कि जमींदारी-उन्मूलन उस समय का प्रधान नारा हो गया और प्रेमचद के जीवनकाल मे तो नहीं पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जमींदारी-उन्मूलन हुआ भी। प्रेमचद के जीवनकाल मे किसानो की स्थिति उतनी ही शोषणपूर्ण रही। संभवतः इसीलिए 'गोदान' मे प्रेमचद की यह वेदना अधिक गहरे रंगो मे फिर से प्रकट हुई।

शिल्प की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' प्रेमचद की शिथिल रचना है। प्रेमचद इस दृष्टि से इसमे 'सेवासदन' से पीछे है। 'प्रेमाश्रम' के पूर्वार्द्ध के अधिक सगठित और स्वाभाविक प्रवाह से युक्त रहने पर भी उत्तरार्द्ध बहुत सी अस्वाभाविकताओ से पूर्ण हो गया है। दो वर्ष के पश्चात हमे सभी पात्रो की एक ऐसी आदर्शवादी कतार दिखलाई पडती है कि हमे इस परिणति पर अविश्वास होने लगता है। इससे अधिक आक्षेपयुक्त बात इसमे पात्रो की आत्महत्या है। इसमे प्रेमचद की पात्रों की व्यवस्था करने की अक्षमता की स्थिति मे उनको समाप्त कर देने की कलात्मक कमजोरी स्पष्ट हो जाती है। विद्यावती, रानी गायत्री, और ज्ञानशंकर इसके उदाहरण है। इन पात्रो की आत्महत्या से अधिक अनुचित प्रभाशंकर के दोनो लड़को—पद्म और तेज—की बलि है। हृदय को कपित कर देने वाली यह परिणतियाँ—जो कभी-कभी आवश्यक नही होती या बचाई जा सकती है—अस्वाभाविक तो होती ही है, कथा की प्रभावान्विति मे भी व्याघात उत्पन्न करती है। फिर भी जैसा कि होता आया है 'प्रेमाश्रम' मे चित्रित यथार्थ तथा उस यथार्थ मे अंतर्निहित अधिकार के लिए निरंतर युद्ध करने का जीवत सदेश अपने आप मे इतना समर्थ है कि वह 'प्रेमाश्रम' को भी प्रेमचद के अन्य बड़े उपन्यासो मे एक स्थान दिला देता है।

रंग भूमि

'रगभूमि' प्रेमचद का सबसे अधिक दीर्घकाय उपन्यास है। इस उपन्यास का कई दृष्टियो से विशेष महत्व है।

प्रेमचद ने पहली बार 'रगभूमि' मे इतना बडा आधारफलक (Convas) लिया। 'सेवासदन' मे अधिकतर हमारा परिवार था और उसकी एक ज्वलत समस्या—दहेज और उसके दुष्परिणाम। 'प्रेमाश्रम' मे हमारा देहाती समाज आया और उसकी आर्थिक समस्याएँ आयी पर 'रगभूमि' इन सबसे आगे रहा। उसमे 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' की समस्यामूलकता के स्थान पर मनुष्य की गहनतर और विशिष्ट शक्तियाँ तथा व्यक्तित्व-निर्माण की कला सामने आई। कुछ सुधी पाठक तो 'रगभूमि' को ही प्रेमचद का सर्वोत्तम उपन्यास मानते हैं।

जिस समय 'रगभूमि' की रचना हुई उस समय देश मे गाधी जी का सत्याग्रह सग्राम चल रहा था। राजनीति महलो की कुर्सियो को छोडकर झोपडो मे आ चुकी थी। सारा देश गाधी के अहिसात्मक सदेशो तथा आत्मबल से शक्ति-सचय करने लगा था। उद्बोधन की बढती हुई पुकारो से जनता अपने अधिकारो को पहचानने लगी थी, उसे पता मिल गया था कि कौन उनको सताते है, वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि अधिकारो के लिए अविचलित होकर डटे रहने का नाम ही विजय है। पशुबल की हिंसक शक्तियो के सम्मुख गाधी का अहिंसक आत्मबल सारे देश का आत्मबल बनकर अटूट और अडिग भाव से खडा हो गया था। इस बडी घटना के बहुमुखी प्रभाव थे। ये प्रभाव राजनीतिक कम हुए नैतिक अधिक। देश की पिछडी जनता ने इन सदेशो से प्रभावित होकर अपना नैतिक मान और ऊचा किया। उसमे यह कह सकने की शक्ति आई कि बडा से बडा आदमी और मृत्यु का भय भी हमें अपने व्रत से विरत नही कर सकता। जनता के सच्चे साहित्यकार प्रेमचंद ने भी देश की इस अभूतपूर्व घटना से अत्यधिक प्रभाव ग्रहण किया। उन्होने उस समय की अपनी रचनाओं मे गाधी-दर्शन को अपनाया।

'रगभूमि' का सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली निर्माण अधा सूरदास है। आँख का अधा तथा पेशे का भिखमगा होकर भी वह उपकार का महत्तर आदर्श सामने रखता है। अपनी पशुओ के लिए छोडी हुई चराउर भूमि के लिए

वह दुनिया की बडी से बड़ी शक्ति से लोहा लेने के लिए तैयार हो जाता है! पत्थर की तरह कठोर व्रत वाला, फूल की तरह कोमल हृदय वाला, जाड़े की दुपहरी की तरह खुश मन वाला अधा सूरदास 'रंगभूमि' का ऐसा सफल और प्रभावशाली निर्माण है कि वह एक मसीहा की तरह शताब्दियों तक लोकचित्त को प्रभावित करता रहेगा।

'रंगभूमि' में निश्चित रूप से दार्शनिक गहराई आ सकी है। उसके पात्रो मे, घटना-प्रकार मे, घटनाओं के प्रसार में, कथोपकथन मे, भाषा-शैली मे एक प्रकार की ऐसी दार्शनिक छाया मिलती है जो काफी स्पष्ट है और हमे प्रभावित करती है। 'रंगभूमि' नाम ही ससार की विस्तृति, विचित्रता और गभीरता का आभास देता है। इसके अतिरिक्त सूरदास के अधिकतर कथन ऐसी शैली मे लिखे गए हैं जो स्थूलतर घटनाओं का नामोल्लेख न करके उनके पीछे छिपे सूक्ष्म जीवन-दर्शन का विवरण देते है। ये स्थल अत्यत मर्मस्पर्शी है। सूरदास 'रगभूमि' का एक खिलाडी कल्पित किया गया है "वह खिलाड़ी जिसके माथे पर कभी मैल न आई, जिसने कभी हिम्मत नही हारी, जिसने कभी कदम पीछे नही हटाए, जीता तो प्रसन्न चित्त रहा, हारा तो जीतनेवालों से कीना नही रखा, जीता तो हारने वालों पर तालिया नही बजाई, जिसने खेल मे सदैव नीति का पालन किया, कभी धॉधली नहीं की, कभी द्वदी पर छिपकर चोट नहीं की। भिखारी था, अपग था, अधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नही मिला, पर हृदय धर्म और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भडार था। देह पर मास न था पर हृदय मे विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।"[1]

इसी हार-जीत को समान मानने वाले खिलाडी सूरदास के व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रेमचद इन शब्दो मे करते है "हॉ, वह साधु न था, महात्मा न था, फरिश्ता न था, एक क्षुद्र शक्तिहीन प्राणी था, चिंताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमे अवगुण भी थे गुण भी। गुण कम थे अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहकार ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र मे भरे हुए थे गुण केवल एक था। किंतु ये सभी उस एक गुण के सपर्क से, नमक की खान मे जाकर नमक हो जाने

१. रगभूमि। २. वही।

वाली वस्तुओ के समान देवगुणो का रूप धारण कर लेते थे, क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह सदुत्साह के रूप मे प्रकट होता था और अहंकार आत्माभिमान के वेश मे। और वह गुण क्या था ? न्याय प्रेम, सत्य-भक्ति, परोपकार, दर्द, या उसका जो नाम चाहे रख लीजिए। अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था; अनीति उसके लिए असह्य थी।"[1] अन्याय और अनीति को देखकर अपने को न रोक पाना ही बड़े से बड़े विद्रोह या श्रेष्ठ से श्रेष्ठ निर्माण का कारण बनता आया है।

मृत्यु के करीब उन्माद की दशा मे सूरदास कहता है "बस-बस अब मुझे क्यो मारते हो, तुम जीते मै हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नही बना। तुम मँजे हुए खिलाड़ी हो और तुम्हारा उत्साह भी खूब है। हमारा दम उखड जाता है, हॉफने लगते है; खिलाड़ियो को मिलाकर नही खेलते, आपस मे झगड़ते है; गाली-गलौज मारपीट करते है। कोई किसी को नही मानता। तुम खेलने मे निपुण हो हम अनाडी है। बस इतना ही फरक है। तालियॉ क्यो बजाते हो, यह तो जीतने वालो का धरम नही ? तुम्हारा धरम तो है हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नही; धॉधली तो नही की फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो; हार हार कर तुम्ही से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी; अवश्य होगी।"[2] उन्माद की अवस्था मे भी सूरदास नौकरशाही और अशिक्षित तथा कुसस्कारो से जडित भारतीय जनता की लड़ाई का भावात्मक सिंहावलोकन करता है। उसे विश्वास है कि उसकी जीत एक न एक दिन अवश्य होगी, उसे ज्ञान है कि उसके देश मे सगठन की कमी है जिसको अग्रेजो से सीख कर उन्ही के विरुद्ध प्रयुक्त करना होगा। उत्कट आशा-वाद का यह सदेश ही प्रेमचंद की सबसे बड़ी देन है।

सूरदास के इस महान् व्यक्तित्व को उसके प्रबल विरोधी भी श्रद्धान्वित होकर स्मरण करते है। सामंतशाही के प्रतीक महेंद्र कुमार, पूँजीवाद के अगुआ जान सेवक और नौकरशाही के अंग मिस्टर क्लार्क सभी 'सूर' के मृत्यु के उपरान्त होने वाले जनता के शोक-समारोह मे शरीक होते है। सूरदास का प्राणघातक क्लार्क

---

१ रंगभूमि पृ० ८९२। २ रंगभूमि पृ० ८९०।

महेद्रसिंह से कहता है—"हमें आप जैसे मनुष्यो से भय नहीं, भय ऐसे ही मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते है। यह राज्य करने का प्रायश्चित् है कि इस देश मे हम ऐसे आदमियो का वध करते हैं जिन्हे इग्लैंड मे देवतुल्य समझते।"[1] यह एक अंधी निस्सहाय भारतीय प्रजा की ब्रिटिश नौकरशाही के खिलाफ बहुत बडी विजय-घोषणा है। प्रेमचंद ने गाधीवाद को इस ग्र थ मे पूर्णता को पहुँचा दिया है। सूरदास की विजय अहिंसा और सत्य की विजय है।

सूरदास के इस अमर व्यक्तित्वके निर्माण के अतिरिक्त 'रंगभूमि' मे महत्वशाली पात्रो की एक लम्बी कतार है। इन पात्रो के जीवनगत मार्मिक दशाओ का विशद अकन प्रेमचंद ने किया है।सोफिया और विनयका प्रेम भी 'रंगभूमि' का दूसरा उज्वल अध्याय है। सोफिया और विनय का प्रेम एक देशद्रोही की लड़की और देशभक्त युवक का ही प्रेम नहो है वरन् इसाई लड़की और मर्यादाओ के रक्षक, राजकुलोत्पन्न हिंदू क्षत्रिय का प्रेम है। प्रेमचद भविष्य की शुभ सूचनाओ के वाहक तथा सच्चे अर्थ मे मानवसमाज की जड़ता के लोक मे क्राति करने वाले साहित्यकार थे। यह निर्मल प्रणय-बंधन जिन परिणितियो को पार करता है वह भी अद्भुत है। विनय की मॉ जाह्नवी तथा उनकी पुत्री इंदु भी भारतीय नारी जाति की रत्न है।

ऊपर 'रगभूमि' के विशाल आधारफलक (Convas) की बात कही जा चुकी है। निश्चय ही इस उपन्यास मे प्रेमचंद ने 'गोदान' और 'कर्मभूमि' से भी व्यापक पृष्ठभूमि लिया है। पाडेपुर गाव के जगधर, भैरो, बजरगी, सूरदास तथा ताहिर अली के परिवारिक और आपसी जीवन-संघर्ष से लेकर पादरी ईश्वर सेवक, कुवर भरतसिंह, राजा महेद्र सिंह, मिस्टर क्लार्क और यहॉ तक कि दूरवर्ती जसवत नगर के दीवान और महाराजा के कलुषमय जीवन का विशद अकन मिलता है। एक लेखक के अनुसार इस तरह "इस 'रंगभूमि' मे हिंदू भी है, मुसलमान भी है, ईसाई भी है, रक भी हैं, राव भी है, जमीदार भी है, किसान भी हैं, मिलमालिक भी है, मजदूर भी हैं, पडे-गुण्डे भी हैं, देश-सेवक भी है, देशद्रोही भी है, तथा आत्मसेवी भी है और आत्मदर्शी भी।"

---

१. रगभूमि, पृ० ८६२।

नारी-जागरण का भी अभूतपूर्व चित्र प्रेमचद ने खींचा है जो भारतीय नारी को स्वतत्रता-सग्राम में बढ़ाने में निश्चित ही सहायक हुआ होगा।

कला की दृष्टि से 'रगभूमि' अपेक्षाकृत अच्छी रचना है। 'प्रेमाश्रम' का अस्वाभाविक उत्तरार्द्ध फिर नहीं दुहराया गया है। 'रंगभूमि' का बडा ही मद-मंथर और स्वाभाविक विकास हुआ है। यदि हम कहे कि उस काल की परिस्थिति मे भारतीय-जीवन का इससे अच्छा महाकाव्य न बन पाता तो अनुचित न होगा।

रगभूमि पर लिखते हुए हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ऋषभचरण जैन ने लिखा है—"रंगभूमि मेरी राय मे उन्हीं का नहीं, हिंदुस्तान का सबसे अच्छा उपन्यास है। रगभूमि मे कहानी है, काव्य (Poetry) है। फिलासौफी है, मनोविज्ञान (Psychology) है और ढूँढ़ने पर नीति, धर्म और सोशलिज्म का भी बहुत सा मसाला मिल जायेगा। 'रगभूमि' हमारी जिंदगी का खाका है जिसके जोड़ की कल्पना थैकरे के 'वैनिटी फेयर' मे और मेरी कारेली के 'वेराडेङ्का' मे जरा जरा मिल जाय तो मिल जाय; वरना दुनिया मे और कही नही मिलेगी"[१] आलोचना आशसात्मक होते हुए भी रगभूमि के महत्व को स्पष्ट करती है।

कायाकल्प

'रगभूमि' के पश्चात 'कायाकल्प' ने प्रेमचद् की मर्यादा को कुछ कम ही किया। इसमे बहुत कुछ अलौकिकता है जिसमे प्रायः विश्वास कम जमता है। श्री जैनेन्द्र कुमार ने "प्रेमचदः मैने क्या जाना और पाया" शीर्षक अपने लेख मे लिखा है "प्रेमचद जी के मन मे यो मूलतत्व अर्थात ईश्वर के सबध में चाहे अनास्था रही हो लेकिन मानव जाति द्वारा अर्जित वैज्ञानिक हेतुवाद पर और उसके परिणामो पर उनकी पूरी आस्था थी। वह कुछ भी हो कट्टर नहीं थे। दूसरों के अनुभवो के प्रति उनमे ग्रहणशील प्रवृत्ति थी।"[२]

'कायाकल्प' मे प्रेमचद की वैज्ञानिक हेतुवाद मे पूरी निष्ठा दिखलाई पड़ती है। मंत्र, तत्र, उपासना, जन्मजन्मान्तर की बातों का खुलना—यह सब कुछ ऐसी बाते कायाकल्प मे आती हैं कि उपन्यास का अधिकभाग अविश्वसनीय हो जाता है। लेकिन 'कायाकल्प' विशेषता शून्य नही। इसके पात्रो का चरित्र-चित्रण

१. 'हस' प्रेमचद-स्मृति-अक (सन् १९३७, वर्ष ७, अक ८) पृ० ८६२।
२. वही पृ० ७८०।

'रंगभूमि' से विकसित है। हिंदू-मुसलिम वैमनस्य समस्या का उत्तर भी प्रेम और उदार संपर्क में दिया है। यह सब होते हुए भी 'कायाकल्प' प्रेमचद की मूल-प्रवृत्ति तथा अन्य उपन्यासों की भावधारा से कुछ पृथक पडता है।

गबन

गबन शिल्प की दृष्टि से प्रेमचद का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। यह जीवन-दर्शन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। 'गबन' इस पुस्तक की विवेचना का मूल विषय है इसलिए इसका मूल्याकन इस अध्याय के पश्चात् किया गया है। इसी समय के आसपास 'निर्मला' का प्रकाशन हुआ जिसमें पतनोन्मुख समाज की एक रुढि—वृद्ध-विवाह—का करुण चित्र सामने आया।

कर्मभूमि

'कर्मभूमि' मे प्रेमचद पुनः सामाजिक और राजनीतिक जीवन को अपना विषय बनाते है। 'कर्मभूमि अपनी व्यापकता के कारण 'रगभूमि' की परपरा मे आता है। 'कायाकल्प' तो उस प्रवाह से विच्छिन्न रचना थी। 'गबन' में भी राजनीतिक जीवन का आभासमात्र मिलता है, राजनीतिक जीवन ही प्रधान विपय नही है। 'कर्मभूमि' इन सबसे अलग सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ को नए रूप में सामने रखता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमें 'रंगभूमि' की आदर्शवादिता कम हो गयी है और सामान्य जन-जीवन की वास्तविक धारा का प्रवाह अधिक मिलता है। 'रगभूमि' के विपरीत 'कर्मभूमि मे गाधीवादी प्रभाव भी कम हो गया है।

'कर्मभूमि' मे सन १६३१ के सविनय-अवज्ञा-आदोलन का प्रभाव है। इस स्वतत्रता-युद्ध में पुलिस ने कई प्रान्तो मे बड़े अमानुषिक अत्याचार किए। आर्थिक तगी के कारण लगान न चुका सकने वाले किसानो पर गोलियाँ चली। स्त्रियो पर भी विदेशी सिपाहियो ने खुलकर अत्याचार किए। स्त्रियाँ भी पिकेटिंग करती हुई पुरुषो के कधे से कंधा भिडा कर आगे बढी।

इन अत्याचारो से प्राप्त सवेदनशीलता से ही 'कर्मभूमि' का निर्माण हुआ। किसान और नारी—इन दोनो की वेदना इस उपन्यास में पुनः साकार हुई है। इसमें शिक्षा-सस्थाओ की अर्थव्यवसायी नीति, म्यूनिस्पल कर्मचारियो की स्वार्थपरता, साहूकारो के धन कमाने के घृणित उपाय, मठाधीश, महंतो तथा

जमींदारो की विलासिता तथा क्रूरता और राजकर्मचारियो के आत्मपतन तथा स्वेच्छाचार का कलात्मक अकन सामने आता है। इस रचना का बडा भाग एक यथार्थवादी उपन्यास की अधिकाश विशेषताओ से पूर्ण है।

यद्यपि 'कर्मभूमि' मे पात्रो का व्यक्तित्व पूर्णतः प्रस्फुट नही हो सका है फिर भी कुछ पात्र हमारी स्मृति मे अपनी ठुकराई हुई वेदना लिए टिके रह जाते है। सकीना और मुन्नो के चित्राकन मे लेखक ने अद्भुत कौशल का प्रयोग किया है। प्रेमचद के साहित्य मे 'मुन्नी' एक अद्भुत पात्र है जिसने अपमानित नारी के झुलसा देने वाले तेज का अनुकरणीय प्रदर्शन किया है। 'कर्मभूमि' के सभी नारीपात्रो ने यथा—सुखदा, मुन्नी, रेणुका देवी, नैना, सकीना, पठानिन आदि ने इन सब अत्यचारो के मूल कारण ब्रिटिश नौकरशाही से संगठित मोर्चा लिया है। अततः 'कर्मभूमि' के सभी पात्र जेल मे पहुच जाते हैं। 'कर्मभूमि' इस स्थल तक अपनी सभी भव्य परिणतियो को पार कर चुकता है। आगे उपन्यासकार उपन्यास का व्यवस्थित अत करने की परेशानी को लेकर गाधी-इर्विन समझौते के वजन पर लाला समरकात और गवर्नर का समझौता कराता है और कैदी छूटते है। प्रेमचद का अखबारी समाचारो को यही 'ट्रू-कापी' कभी कभी पाठक के मन मे ऊब पैदा कर देती है। सुधारवादी प्रेमचंद कदाचित 'कर्मभूमि' तक अपनी आदर्शमूलक प्रेरणाओ से छुटकारा न पा सके थे। उपन्यास के उलझनो (Complications) को यह आवश्यक नही कि सुलझा ही दिया जाय। विश्व के अधिकाश श्रेष्ठ उपन्यास अपने चरमोत्कर्ष के पास ही समाप्त हो जाते है कम से कम कौतूहल या गाढ़तर होती हुई वेदना को खत्म नही होने देते।

इतना होते हुए भी 'कर्मभूमि' मे 'रगभूमि' के गाधीवादी आदोलन और जीवन-दर्शन का प्रभाव कुछ मद और जनजीवन की समस्याओ तथा उनके समाधान के नए ढग का आग्रह अधिक दिखलाई पड़ता है। प्रेमचद ने इस प्रकार के आदोलनो का विवेचन इन शब्दो मे किया है कि इस प्रकार के आदोलनो मे "सैकडो घर बरबाद हो जाने के सिवा और कोई नतीजा नहीं निकलता।"[1] "इनसे प्रेम की जगह द्वेष बढ़ता है। जब तक रोग का

१. कर्मभूमि· पृष्ठ ६२१ ।

निदान ठीक न होगा; उसकी ठीक औषधि न होगी; केवल बाहरी टीम-टाम से रोग का नाश न होगा।"[1] इस रोग के नाश के लिए प्रेमचंद ने जो समाधान दिया वह बहुत ही स्थिति-सापेक्ष और तर्कसगत था। उन्होंने कहा "हमें प्रजा में जाग्रति और संस्कार उत्पन्न करने की चेष्टा करते रहना चाहिए। हमारी शक्ति पूरी जाति की आत्मा को जगाने में लगनी चाहिए। मार्क्स भी शोषितो की मुक्ति का पहला तरीका यही बतलाता था "विश्व के मजदूरो सगठित हो" (workers of all countries, Unite!)। 'रंगभूमि' का सूरदास इसी सगठन के अभाव में हारा था।

गोदान

'गोदान' प्रेमचद की अतिम और अपने ढंग की अकेली कृति है। एक लेखक ने इसे हिंदी-उपन्यास के बीच का शिखर कहा है जहाँ से हिंदी-उपन्यास का आदर्शवादी और यथार्थवादी ढलाव आसानी से देखा जा सकता है। 'गोदान' प्रेमचंद की एक पूर्णतः यथार्थवादी कृति है। इस ग्रंथ में न 'सेवासदन' का 'सेवासदन' जैसा कोई समाज-सुधार का स्पष्ट कार्यक्रम है, न प्रेमाश्रम की भाँति स्वर्णयुग के गांवो का आदर्श चित्र, न 'रंगभूमि' का उद्दाम आशावाद; न कर्मभूमि का समझौते में समाप्त होने वाला कथानक; न गबन के 'गाव की ओर लौटो' का अव्यावहारिक संदेश; बल्कि इसमें भारत के गावो की टूटती हुई जिंदगी की नैराश्यपूर्ण कठोर वास्तविकता का नग्न परिचय है। 'गोदान' में भारत की अब तक की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रगति अपना खोखलापन दिखला गयी है।[2] निष्कर्ष यह कि 'गोदान' हमारे समाज, साहित्य, सत्ताधारी वर्ग और युग के सामने एक जीवन-मरण का प्रश्न लेकर खडा हुआ है। 'गोदान' की यह सबसे बड़ी सफलता है कि वह इतने महत्वपूर्ण प्रश्न को अपनी सशक्त कला के द्वारा इतनी शक्ति दे सका है।

'गोदान' का केंद्रबिंदु होरी है। होरी और धनिया गावो के प्रतिनिधि पात्र है। वे भारतीय किसान की उन सब कमजोरियो, मजबूतियो को सामने रखते है जो

---

१. वही, पृष्ठ ६२०। २. श्री शातिप्रिय द्विवेदी कृत 'युग और साहित्य' (द्वितीय संस्करण, १६५०) पृ० सं० ३०१।

उनमें आर्थिक अभावों से पोषण पाती चली आती है। 'गोदान' भारतीय किसान की सारी जड़ता, सारी मजबूरी, छोटी से छोटी इच्छाओं को पूर्ण करने की सारी तड़पन; पद पद पर ठोकर खाकर समझौता करने की सभी लाचारियों का वृहत महाकाव्य है। भारत के गाँव की वस्तुस्थिति के चित्रों की मार्मिकता से पूर्ण ऐसा उपन्यास न हिंदी-साहित्य में इसके पहले मिला था न मिलता।

इसके अतिरिक्त 'गोदान' में नागरिक जीवन का भी चित्र आया है। खुर्शेद अली, मिलमालिक खन्ना, डा० मेहता, मालती आदि के जगह-जगह आने वाले चित्र गाँव की ओर से देखने पर दो बातें बतलाते हैं (१) गाँव की ओर से नगर कितना उपेक्षाशील है (२) नगर का सारा आनंद-विलास गाँवों के ही शोषण के आधार पर स्थित है। 'गोदान' के चित्रपट पर नगर और ग्राम का अंकन द्विमुखी भारतीय जीवन को प्रत्यक्ष करता है। यह अवश्य है कि इस सारी बदलती हुई वैषम्यपूर्ण जिंदगी के मूल में होरी जैसा किसान ही है। होरी जैसा किसान ही है जो गाँव के जमींदार, पंडे, महाजन, तथा नगर के आर्थिक विलास के वजन को टूटते हुए कंधे से ढोता हुआ कृषक की स्वाधीन जिंदगी से मजूरी की ओर बढ़ता है। गाँव और शहर के इस समानान्तर अंकन से हमारे सामने गाँव और शहर का (१) अपने-अपने में फिर (२) पारस्परिक घात-प्रतिघातों का वैषम्य-पूर्ण चित्र आता है।

आलोचकों में अधिकांश ने 'गोदान' के कथा-संगठन को बिखरा हुआ बतलाया है। उनका आक्षेप ग्राम और नगर के सहवर्ती अंकन के निर्वाह पर है। वे सुझाते हैं कि 'गोदान' में केवल रायसाहब नागरिक पात्रों को कभी-कभी आमंत्रित करके तथा गोबर नगर में श्रमिक बनकर दोनों का क्षीण संबंधसूत्र जोड़ते हैं। कला की दृष्टि से,हो सकता है, यह क्षीण संबंध हो। पर हमारे यथार्थ जीवन में यह संबंध पर्याप्त घनिष्ठ है। वास्तविकता यह है कि कला के मानदंड बदलते रहते हैं। कला युग-विशेष की मनोवृत्ति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। कम से कम आज की उपन्यास-कला को युग-जीवन की वास्तविकता के साथ-साथ ढलकर युगीन समस्याओं को यथार्थ रूप में समझाने योग्य होना चाहिए। सारांश यह कि 'गोदान' का कथानक ठीक उसी रूप में संगठित है जिस रूप में आज भारतीय गाँवों और शहरों का संगठन है। क्या यह सही नहीं है कि नगर

का बाह्य समागम देहातो मे कभी पिकनिक, कभी किसी रईस जमीदार मित्र के यहाँ पार्टी या फिर कभी शिकार खेलने के रूप मे ही होता है।

'गोदान' मे होरी के जीवन की परिणतियाँ बडी ही दर्दनाक है। तरह-तरह की मर्यादाओ, बधनो, अभावो मे तिल-तिल करके टूटती-पिसती उसकी जिदगी हमको झकझोर देती है। वह सारी सामाजिक मर्यादा को स्वीकार करता है, ईश्वर से डरता है, कुटुब से प्रेम करता है। समझता है "जब दूसरो के पावो तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पावो को सहलाने मे ही कुशल है।" विषम से विषम परिस्थितियो मे भी उसकी सहृदयता जन्य तेजस्विता स्थिर रहती है। जब रात को धनियाँ आकर पति को गोबर द्वारा छोडी हुई गर्भवती झुनिया के रोती हुई आने का सदेश देती है, तब होरी लाल हो जाता है किंतु पैरो पर पडी हुई झुनिया से वह यही कहता है "डर मत बेटी, तेरा घर है, तेरा द्वार, तेरे हम है। आराम से रह।" इस झुनियाँ के लिए भी बिरादरी की ठोकरो को वह सहता है। अलग हुए भाइयो की प्रतिष्ठा को भी अपनी ही प्रतिष्ठा समझता हुआ, महाजन पटेश्वरी और दुलारी सहुआइन तथा पुरोहित दातादीन पडित से शोषित होता हुआ वह बराबर भयकर गरीबी की ओर बढता जाता है। अत मे हल बैल, खेत बारी सभी इन शोषक उपादानो के पेट मे चले जाते है और वह महतो से मजूर हो जाता है। ग्रीष्म की खडी दुपहरिया मे हड्डियो का जर्जर शरीर लिए वह मजदूरी करता है, लू लग जाती है। बिगडती हुई अवस्था को देखकर हीरा कहता है "भाभी दिल कडा करो, गोदान करा दो, दादा चले। और कई आवाजे आई "हाँ गोदान करा दो यही समय है।" धनियाँ यत्रवत उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठढे हाथ मे रखकर सामने खडे दातादीन से बोली—महाराज घर मे न गाय है, न बछिया, न पैसा, यही पैसा है यही इनका गोदान है। और पछाड खाकर गिर पडी।"[१] उपन्यास की यह अतिम परिणति भारतीय ग्राम की भीषणतम दरिद्रता को सामने रखकर हमे थाम लेती है। "गोदान" की यह सूनी 'ट्रेजेडी' हमारे मन मे गूजती रह जाती है जैसे धनिया के शब्दो मे गाँवो की सारी लाचार धडकने मूर्त हो गयी हो।

१. गोदान पृष्ठ ५६६।

नगर के जीवन के अंकन मे भी प्रेमचंद ने गहराई से काम लिया है। उन्होंने नागरिक जीवन के आंतरिक खोखलेपन को लक्ष्य किया है। मिलमालिक खन्ना का जीवन और इधर दर्शन के प्रोफेसर डा० मेहता और मालती का जीवन। मालती और मेहता के रूप मे प्रेमचंद ने पाश्चात्य और भारतीय संस्कृतियो के संघर्ष को लिया है। मि० मेहता मालती के इस तर्क को स्वीकार करते है कि पुरुषो ने स्त्रियो पर अत्याचार किया है पर उनका तर्क है "अन्याय को मिटाइये पर अपने को मिटाकर नहीं।"[1] आगे फिर मेहता के ही शब्दो मे प्रेमचद बोलते है "ससार मे सबसे बड़े अधिकार, सेवा और त्याग से मिलते है और वह आपको मिले हुए है मुझे खेद है हमारी बहने पश्चिम का आदर्श ले रही है जहाँ नारी ने अपना यह पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छंद होना चाहती है इसलिए कि वह विलास कर सके। हमारी माताओ का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। पश्चिम मे जो बाते अच्छी है वह लीजिए।"[2] इस कथन मे हमे प्रेमचद की निपुण बुद्धि का परिचय मिलता है। निश्चय ही आज भारत के सामने इसी सांस्कृतिक सामजस्य का मार्ग है जिससे वह अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए दूसरो के गुणो को आत्मसात करके अधिक शालीन बन सकता है। प्रेमचंद अंततः 'मिस' मालती को श्रीमती बनाकर भारतीय सस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते है।

प्रेमचंद के वक्तव्य-वस्तु को स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "वे इमानदारी के साथ वर्तमान काल की अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा बंधन भीतर का है बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान ये गरीब यह अनुभव कर सके कि ससार की कोई भी शक्ति उनको नहीं दबा सकती तो ये निश्चय ही अजेय हो जाएंगे। बाहरी बंधन उन्हे दो प्रकार के दिखाई दिए—भूतकाल की संचित स्मृतियो का जाल और भविष्य की चिंता से बचने के लिए संगृहीत धनराशि। एक का नाम है संस्कृति और दूसरे का सपत्ति। एक का रथवाहक है धर्म और दूसरे का राजनीति। प्रेमचद इन दोनो को मनुष्यता का बाधक मानते है।"[3] निश्चित ही प्रेमचंद परपरा के व्यर्थ

१. वही पृष्ठ २५१। २ वही पृष्ठ २५१। ३. हिंदी-साहित्य पृ० ४३६- (प्रथम सस्करण १९५२)

प्रभाव और पूजी के विषम बॅटवारे को समाप्त करके नई समाज-रचना करना चाहते थे। एक जगह वे अपने मौजी पात्र मेहता से कहलाते है–"मै भूत की चिंता नही करता भविष्य की परवाह नही करता। भविष्य की चिता हमे कायर बना देती है भूत का भार हमारी कमर तोड देता है। हममे जीवनी शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य मे फैला देने से वह क्षीण हो जाती है हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियो और विश्वासो तथा इतिहासो के मलबे के नीचे दबे पडे है। उठने का नाम नही लेते। वह सामर्थ्य ही नही रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति, मानवधर्म को पूरा करने मे लगानी चाहिए थी, सहयोग मे भाई-चारे मे वह पुरानी अदावतो का बदला लेने और बाप-दादो का ऋण चुकाने मे भेट हो जाती है।"

कहानीकार प्रेमचंद

उपन्यास-कला और कहानी-कला भिन्न-भिन्न होती है। यह आवश्यक नही है कि उत्कृष्ट उपन्यास-लेखक उत्कृष्ट कहानी-लेखक भी हो। कारण यह है कि जब उपन्यास मे जीवन की व्यापकता होती है तो कहानी मे जीवन के एक अंग की सूक्ष्मता। प्रेमचद ने एक स्थान पर लिखा है कहानी मे बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुजायश नहीं होती। यहॉ हमारा उद्देश्य सपूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नही वरन उसके चरित्र का एक अग दिखाना है।[1]

प्रेमचंद ने दूसरे स्थल पर लिखा है "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमे कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियॉ ही रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती है।"[2] हम देखेगे कि प्रेमचद ने अपनी कहानियो मे भी इन सिद्धातो का पूरा उपयोग किया।

प्रेमचद ने कुल मिलाकर लगभग ४०० कहानियॉ लिखी। 'सप्तसरोज' उनका प्रथम कहानी सग्रह था 'कफन और दूसरी कहानियॉ' अतिम। आधी से

१. 'कुछ विचार' कहानीकला २, पृ० ३१ (चतुर्थ सस्करण, १६४६)
२. वही पृ० २७

अधिक कहानियाँ १६३० और १६३६ के बीच लिखी गयीं और इस काल की कहानियाँ कला तथा वस्तु की दृष्टि से श्रेष्ठतर मानी गयीं। यों तो उनकी पहली कहानी 'पंच-परमेश्वर' ही नए युग की सूचना देने में समर्थ हुई। और कुछ आलोचकों का तो कहना है कि प्रेमचंद 'सप्तसरोज' से आगे कभी बढ़े ही नहीं।[1] इस संग्रह की रचना 'बड़े घर की बेटी' भी काफी महत्वपूर्ण रचना है। शरद बाबू ने 'सप्तसरोज' के विषय में अपनी सम्मति देते हुए कहा था—गल्पें सचमुच बहुत उत्तम और भावपूर्ण हैं। रवि बाबू के साथ इनकी तुलना करना अन्याय और अनुचित साहस है पर और कोई भी बंगला लेखक इससे अच्छी गल्पें लिख सकता है या नहीं इसमें संदेह है।"

प्रेमचंद के समस्त कहानी-साहित्य[2] में से यदि हम उत्कृष्ट कहानियों[3] का संकलन करना चाहें तो उसकी सूची संभवतः यह होगी:— पंच-परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'राजा हरदौल'; 'रानी सारंधा'; 'मंदिर और मस्जिद', 'एक्ट्रेस'; 'अग्निसमाधि', विनोद'; 'आत्माराम', 'सुजान भगत', 'बूढ़ी काकी', 'दुर्गा का मंदिर'; 'बड़े घर की बेटी'; 'विध्वंस', 'इस्तीफा', 'कफ़न', 'निशा; 'समरयात्रा', 'पूस की रात'; 'प्रेम का हृदय'. 'अलगोझा', 'दो भाई', 'गृहदाह', 'शांति'; 'मुक्ति धन'; 'सुभागी'; 'दफ्तरी', इत्यादि। इस प्रकार की लगभग ५० कहानियाँ विश्व के किसी भी साहित्य के समकक्ष रखी जा सकती हैं।

---

१. प्रेमचंद-स्मृति-अंक; प्रेमचंद की कहानी-कला ले० प्रकाशचंद्र गुप्त पृ० ६३७।

२. प्रेमचंद के कहानी संग्रह; सप्त सरोज('१६) प्रेम पचीसी ('२३) प्रेमप्रसून ('२४); प्रेम प्रतिमा ('२६) प्रेम द्वादशी ('२६) प्रेमतीर्थ ('२६) प्रेमचतुर्थी ('२६) अग्निसमाधि ('२६) प्रेमप्रतिमा ('२६) पांच फूल ('२६) सुमन और समर यात्रा ('३०) प्रेमपंचमी ('३०) प्रेमप्रतिमा ('३१) समर-यात्रा तथा अन्य कहानियाँ ('३२) पंचप्रसून ('३४) मानसरोवर ('३६) कफ़न और शेष रचनाएं ('३७) नारी जीवन की कहानियाँ ('३८) प्रेमपीयूष ('४१)।

३. प्रेमचंद स्मृति-अंक में, प्रेमचंद की सर्वोत्तम रचनाएं, आनंद राव जोशी; पृ० ६२७। इस लेख में प्रेमचंद ने स्वयं अपनी उत्कृष्ट कहानियों की ओर इशारा किया है।

प्रेमचंद ने सभी तरह की कहानियॉ लिखी है। धार्मिक कहानियॉ जैसे 'बासी भात मे खुदा का साझा', सामाजिक कहानियॉ जैसे 'मृतक भोज', 'शाति', 'सद् गीत' आदि, पारिवारिक कहानियॉ जैसे 'घर-जमाई', 'दो भाई' 'बैर का अन्त', राजनैतिक कहानियॉ जैसे 'रियासत का दीवान', 'जुलूस और इस्तीफा', नैतिक कहानियॉ जैसे 'न्याय' और 'दूध का दाम', प्रेम कहानियॉ जैसे 'विद्रोही और कैदी', ऐतिहासिक कहानियॉ जैसे 'वज्रपात' 'सारधा', आदि, मनोवैज्ञानिक कहानियॉ जैसे 'नशा, 'कफन' और 'बडे भाई साहब'; भावात्मक कहानियॉ जैसे 'पचपरमेश्वर' और 'पूस की रात' एव प्रतीकात्मक कहानियॉ जैसे 'अग्निसमाधि'।[१]

प्रेमचद से पूर्व और पश्चात भी ग्रामीण जीवन की सफल कहानियॉ नही मिलती। देशप्रेम और भारतीय सस्कृति के प्रति अनुराग उनमे कूट-कूट कर भरा था। प्रेमचंद की अधिकाश कहानियॉ उन्ही विषयो को लेकर चलती है जिनका आधार मनोविज्ञान होता है। डा० रामविलास शर्मा ने प्रेमचद की कहानियो के ऊपर आलोचना करते हुए लिखा है कि प्रेमचंद ने कहानी-कला हमारी लोककथाओं से सीखी हिंदी-उर्दू के पुराने लेखको से, विदेश के जनवादी कलाकारो से सीखी। लेकिन प्राण-प्रतिष्ठा करना उन्होंने जनता से सीखा। वह एक चित्रकार है जो अपने को भूले हुए हिंदुस्तान के गावो और शहरो मे चक्कर लगाते हुए पाते है, देश और काल का भी बधन उनके लिए नही है। वह हिदुस्तान की इसानियत के नमूने हमारे सामने रखते है; उस इंसानियत के जिसे सताया गया है और सताया जाता है; कही कुएँ पर पानी भरने की मनाही है, कही जुलूस निकालने पर रोक है, कही प्रेम पर पाबदी है, कही सर उठाकर चलने पर बदिश है। प्रेमचद इन बदिश लगाने वाले पाखडियो पर व्यगबाण चलाते है उन्हे रामलीला का कौमिक पात्र बना देते हे। सताई हुई इसानियत को अपना प्यार देते है, ढाढ़स देते है, इस तरह कि उनकी कहानियॉ हमारी जनता के दोस्त की तरह है जो उसे कभी धोखा नही देता।[२] इस प्रकार, प्रेमचद की कहानी-कला लोककथाओ की शैली पर चल

---

१. देखिए, साहित्य-सदेश का कहानी-अक (जनवरी-फरवरी १९५३) पृ० ३०४।

२. साहित्य-सदेश, कहानी-अक (जनवरी-फरवरी १९५३) पृष्ठ ३५७।

कर; जनता की समस्याओ को उठाती तथा उनका हल बताती, मनोवैज्ञानिक चरित्रो की सृष्टि करती, किसी न किसी प्रभावोत्पादक घटना मे पर्यवसित हो जाती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचंद के महत्व पर विचार करते हुए लिखा है "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के अचार-विचार, भाषा-भाव, रहन सहन, आशा-आकाक्षा, दुख-सुख, और सूझ-बूझ जानना चाहते है तो प्रेमचद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियो से लेकर महलो तक, खोमचेवालो से लेकर बैंको तक, गॉव से लेकर धारासभाओ तक, आप को इतने कौशलपूर्वक प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। परंतु सर्वत्र ही आप एक बात लक्ष्य करेंगे। जो सस्कृतियो और सपदाओ से लद नहीं गए हैं, जो अशिक्षित और निर्धन है, जो गॅवार और जाहिल है, वे उन लोगो की अपेक्षा अधिक आत्मबल रखते है और अधिक न्याय के प्रति सम्मान दिखाते है जो शिक्षित है सुसस्कृत है, जो सपन्न है, जो चतुर है जो दुनियादार है, जो शहरी है। यही प्रेमचंद का अपना जीवन-दर्शन है।[1]

निबंधकार[2] प्रेमचंद

प्रेमचद का महत्वपूर्ण निबध-सग्रह, 'कुछ-विचार' है। इसमे ४-५ भाषण, दो तीन स्वतत्र लेख और कुछ प्रेमचद की ही पुस्तको की भूमिकाएं सकलित है। इन निबधो मे पॉच तो कहानी-कला और उपन्यास-कला के ऊपर लिखे गए हैं, दो जीवन और साहित्य के सबंध को लेकर लिखे गए है, चार भाषा सबंधी है।

इन निबधो की शैली निश्चित ही विचार-प्रधान है और इनमे निबधकार की सरगता लेकर आलोचक प्रेमचद प्रकट होते है। विचार बिलकुल सुलझे और सुथरे है तथा यह सभी उसी जन-जीवन की वास्तविक शक्ति-धारा, व्यापक राष्ट्रीयता तथा लोक-साहित्य के कला-प्रवाह का अनुगमन करते है।

भाषा मे प्रेमचंद बेजोड रहे है और यहाँ भी है। उसमे शब्द-सौष्ठव, अर्थ गाभीर्य सब कुछ है। उदाहरण स्वरूप "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा

---

१. हिंदी-साहित्य (१९५२) पृष्ट ४३५-३६।

२. प्रेमचद का निबध-साहित्य; 'कुछ विचार', 'मौ० शेखसादी तथा तलवार' और 'त्याग'।

उतरेगा जिसमे उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयो का प्रकाश हो—जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[1]

पत्रकार प्रेमचंद

प्रेमचद के संपादित दो मासिक पत्र थे—'हंस' और 'जागरण'। ये मासिक अपने समय के श्रेष्ठ पत्र थे तथा ऊँचाई मे 'सरस्वती' और 'माधुरी' आदि के समकक्ष थे। इन पत्रो ने अनेक कहानी लेखक और अनेक निबधकार उत्पन्न किये। प्रेमचंद ने संपादन-क्षेत्र में वही काम किया जिसको महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया। आज इन मासिको की फाइले साहित्य बन गई है। इन मासिको के संपादकीय आज भी सपादको को प्रेरणा दे सकते है। इन पत्रो के अतिरिक्त प्रेमचद कुछ दिनो के लिए 'माधुरी' के भी सपादक थे।

इनके अतिरिक्त प्रेमचद अनुवादक[2] और शिशु-साहित्य[3] के लेखक भी थे।

निष्कर्ष

हमने देखा प्रेमचद बहुमुखी प्रतिभा के अत्यत कर्मठ कलाकार थे। कविता को छोड़कर उन्होने सब कुछ लिखा। यहाँ तक कि उन्होंने नाटक भी लिखे (यद्यपि उसमे उन्हे विशेष सफलता न मिली)। जहाँ तक उपन्यासो और कहानियो का प्रश्न है, जितना बड़ा धरातल और उस धरातल की सूक्ष्म सवेदना प्रेमचद को प्राप्त थी उतना आज भी किसी को प्राप्त है यह कह सकना सर्वथा कठिन है। जैसा कि कहा जा चुका है उनके पास कहने को इतनी बाते थीं जो चुक ही नहीं पाती थीं। और वे बाते क्या थीं? वे बाते हमारे परिवारो, हमारे गाँवो, हमारी नैतिकता, हमारी राजनीति, एक शब्द मे हमारी और हमारे सपूर्ण परिवेश

---

१. कुछ विचार (चतुर्थ स०) १६४६ साहित्य का उद्देश्य पृ० २१।

२. अनुवाद-ग्रथ 'न्याय', 'हड़ताल', 'अहंकार', 'चाँदी की डिबिया', 'सुखदास' 'फिसाने आजाद' तथा 'सृष्टि-का-आरंभ'।

३. 'कुत्ते की कहानियाँ,' 'टाल्सटाय की कहानियाँ', 'जगल की कहानियाँ', 'मनमोदक', और 'लालची'

की थी। यह परिवेश क्या था ? नाना राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक बंधनों का समुच्चय। और हम क्या थे ? इन बंधनों में टूटते हुए मनुष्य। प्रेमचंद का अत्यंत विरल कार्य था कठोर यथार्थ की समूची पृष्ठभूमि को अनावृत कर मनुष्य के प्रसुप्त चेतना-लोक में अभूतपूर्व क्रांति करना और इस प्रकार संपूर्ण परिवेश को मनुष्य के विकास के लायक बना देना।

इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य उन सभी विशेषताओं से पूर्ण है जो किसी साहित्यकार को हमेशा जीवित रखती है, जो समकालीनता की सीमा को नहीं मानती। यह सच है कि उपन्यास-कला और कहानी-कला आज उत्तरोत्तर शिल्पगत विशेषताओं से पूर्ण होती जा रही है लेकिन फिर भी प्रेमचंद ने अपने साहित्य में मनुष्य की अन्याय के विरुद्ध सतत संघर्ष करने की जिन विकासोन्मुख शक्तियों का दर्शन किया है वह विश्वसाहित्य के थोड़े उपन्यासकारों में ही प्राप्त होती है। फिर कला के क्षेत्र में भी प्रेमचंद का ऐतिहासिक कृतित्व स्वीकार करना होगा। तिलिस्मों में घूमती हुई और घटनाओं के जाल में उलझती हुई प्राण-हीन कला को जीवंत व्यक्तियों की जीवंत शक्तियों के अंकन से युक्त कर देना कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं है। इस प्रकार, कुल मिलाकर "प्रेमचंद ने भारत की गतिशील वास्तविकता को वाणी दी। उन्होंने अपनी समस्त कृतियों में देश और समाज की परिवर्तमान परिस्थितियों में विकासमान जनशक्तियों का साथ दिया और उनका निर्देशन किया। यदि कल देश का इतिहास लुप्त हो जाय तो प्रेमचंद का साहित्य आज की जनता की दशा और उसकी संघर्षशील जीवन-शक्तियों का इतिहास प्रस्तुत करेगा।"[1]

---

१ देखिए 'आज' साप्ताहिक विशेषांक (७ अक्तूबर, १९५४) में प्रेमचंद पर प्रस्तुत लेखक का लेख।

गबन : समीक्षा

कथा-वस्तु

कथा—

महाशय दीनदयाल प्रयाग के एक छोटे से गाव के निवासी थे। जमीदार के मुख्तार होने के कारण आमदनी काफी थी। पत्नी का नाम था मानकी और इकलौती पुत्री का नाम जालपा।

जालपा का बचपन अत्यत प्यार के वातावरण मे बीता। एक दिन झूले पर झूलते समय एक बिसाती बाग मे आया। फिरोजी रग का बिल्लौरी चद्रहार बालिका ने पसद किया और माता ने ले लिया। चूल्ही-चौके से खाली होकर दिनभर अपने और पराये आभूषणो की बातचीत करने वाले समाज मे ही बालिका के दिन बीतते गए। पिता जब शहर आते तो जालपा को खिलौनो तथा खाने की चीजो के स्थान पर कुछ छोटे-मोटे गहने ले जाना कभी न भूलते थे। एक बार पिता शहर से माता के लिए एक सोने का चद्रहार ले आये। बेटी ने भी वैसे ही चद्रहार के लिए आग्रह किया। माता ने उत्तर दिया 'तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।' जालपा के कोमल हृदय पर यह शब्द अकित हो गए। 'ससुराल' अब उसके लिए उतनी भयकर न थी। दिन बीतते गए। बालिका किशोरी होने को आई।

दयानाथ मुन्शी दीनदयाल के उन परिचितो मे से थे जिनसे मुकदमेबाजी के सिलसिले मे काम पडा करता है। मुन्शी दयानाथ कचहरी की परपरा के खिलाफ पाई तक घूस न लेने वालो मे से थे। इसलिए उनकी सज्जनता का काफी असर मुन्शी दीनदयाल पर था। इन्ही मुन्शी दयानाथ के हाईस्कूल पास पुत्र रमानाथ को दीनदयाल ने जालपा के वर के रूप मे चुना। बेकार रमानाथ शतरंज

का शौकीन था। इसी शतरंज ने उसके दोस्तों की लम्बी गिरोह बना रखी थी। रमानाथ के पिता का ख्याल था कि लड़का जब कोई काम पा जाय तो उसके विवाह की फिक्र की जाय। पर पत्नी जागेश्वरी बहू के मुख को अलभ्य फल मानकर दयानाथ से विवाह स्वीकार कराने में सफल हुई। समस्या थी आभूषणों की। मुंशी दयानाथ ने जागेश्वरी के विरोध के बावजूद तीन हजार का गहना बनवा डाला। दो हजार चुका दिया गया। एक हजार हफ्ते भर में चुकाने की शर्त पर कर्ज हुआ। टीके पर मुन्शी जी को एक हजार मिला। इधर रमानाथ अपने मित्रोंके दलबल सहित बारात को सजाने का उपाय कर रहा था। आतिशबाजी को कौन कहे दूल्हे को ले जाने के लिए टैक्सी तक ठीक हुई।

ठाट बाट से बारात पहुँची। जालपा वर को एक आँख देखना चाहती थी। देखा, भर आयी। सखियाँ ऊपर खींच ले गयीं। इतने में चढावा आया जो जहाँ था वहाँ से भागा क्योंकि चढाव आ रहा था। जालपा भी केंद्रित मन से गहनों का नाम सुन रही थी। चद्रहार का नाम न आता था। अंत में धडकते हुए हृदय से उसने सुना 'बेचारी के भाग में चद्रहार लिखा ही नही है।' उसके कलेजे पर चोट सी लग गयी। वह लालसा जो सात वर्ष हुए उसके हृदय में अंकुरित हुई थी जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खडी थी, उस पर वज्र-पात हो गया। सखियों ने सलाह दिया—सास ससुर को बराबर याद दिलाती रहना। बहनोई जी से दो चार दिन रूठे रहने से भी बहुत काम निकल सकता है। बस यही समझ लो कि वर वाले चैन न लेने पावे यह बात हरदम उनके ध्यान में रहे; उनको मालूम हो जाय कि बिना चद्रहार बनावाए कुशल नहीं। तुम जरा भी ढीली पडी और काम बिगड़ा। रातको माता के गले में चद्रहार देखकर जालपा ने सोचा—गहनों से इनका जी अबतक नहीं भरा। शादी मे मुशी दीनदयाल ने देने से कसर न की पर इधर मुन्शी दयानाथ ने भी खरचने मे कसर न की परिणाम यह हुआ की दयानाथ के पास कुछ भी शेप न रहा कि सराफ के रुपये चुका दिए जाते। सातवे दिन सराफ आया। बहुत कुछ लल्लो चप्पो के पश्चात तय हुआ कि छः महीने मे किस्त बाँधकर सारे रुपये चुका दिए जाए गे। तीन महीने होने को आए; जुटे हुए सराफ ने लाला का पिंड तभी छोडा जब उन्होने तीसरे दिन बाकी रुपये का समान लौटाने का वादा किया। तीसरा

दिन भी आया। पर कोई इतजाम न हो सका। चद्रहार के लिए वेहद रूठी हुई बहू से गहने माँगने की हिम्मत किसी की नहीं पडी और इधर रमानाथ ने जालपा से इतना बढ़-चढ़ के घर की स्थिति बयान की थी कि उससे असली स्थिति बताना सभव न हुआ। पर कुछ न कुछ तो करना ही था। फल यह हुआ कि रमानाथ ने सोती हुई नवागता पत्नी से छल किया, अर्द्धरात्रि मे गहनो का बक्स उठाकर दयानाथ के संदूक मे रख दिया और चोर चोर चिल्लाकर साबित किया कि गहने चोरी चले गए। जालपा मूर्छित होकर गिर पडी।

जालपा को गहनो से जितना प्रेम था उतना कदाचित ससार की किसी और वस्तु से नही। इसलिए कि बचपन से ही उसके मन की प्रत्येक तह पर आभूषणो के नक्शे खिंचते गए थे। जब तीन वर्ष की अबोध बालिका थी तो उस वक्त उसके लिए सोने के चूडे बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद मे खिलाने लगती तो गहनो की ही चर्चा करती। तेरा दूल्हा तेरे लिए बडे सु दर गहने लाएगा। ठुमुक-ठुमुक कर चलेगी। बालिका जब जरा और बडी हुई तो गुड़ियो के ब्याह करने लगी, लडके की ओर से चढाव जाते, दुलहिन को गहने पहनाती, डोली मे बैठाकर विदा करती, कभी-कभी दुलहिन गुडिया अपने गुड्डे दूल्हे से भी गहनो के लिये माग करती, गुड्डा बेचारा कहीं-न-कहीं से गहने लाकर स्त्री को प्रसन्न करता। उन्हीं दिनो बिसाती ने उसे वह चद्रहार दिया जो अबतक उसके पास सुरक्षित था। जरा और बडी हुई तो बड़ी-बूढ़ियो मे बैठकर, गहने की बाते सुनने लगी। महिलाओ के उस छोटे से ससार मे इसके सिवा और कोई चर्चा ही नही थी उसने कौन-कौन गहने बनवाये, कितने दाम लगे, ठोस है कि पोले, जडाऊ है या सादे, किस लडकी के विवाह मे कितने गहने आये इन्हीं महत्वपूर्ण विषयो पर नित्य आलोचना-प्रत्या-लोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक इतना ग्राहक हो ही न सकता था। इसलिये इस 'आभूषण-मंडित संसार' मे पली हुई जालपा का आभूषण-प्रेम स्वाभाविक ही था। गहनो के अभाव मे जालपा ने खाना पीना तक छोड दिया। रमानाथ उसके सर्वाधिक क्रोध का पात्र हो गया। रमानाथ को पाश्चाताप होता था कि उसने अपनी स्थिति इतनी बढ़ा-चढ़ा कर जालपा से क्यों बताई। जालपा के उलाहनों से तग आकर उसने नौकरी की तलाश शुरू की। बहुत परेशान होने पर उसे उसके वयस्क मित्र रमेश बाबू के कारण जो म्यूनिसपलिटी

में हेडक्लर्क थे—एक ४०) मासिक वेतन की चुंगी-मुन्शी की नौकरी मिली। इन्हीं दिनों जालपा को पिता का पार्सल मिला। मा ने अपना चंद्रहार भेजा था। जालपा ने तुरंत ही वापस कर दिया यद्यपि रमानाथ विरोध करता ही रहा। जालपा का कहना था कि मा ने यदि इसे प्रेम से भिजवाया होता तो हम अवश्य लेते पर बात ऐसी नहीं है।

रमानाथ ने थोड़े ही समय में व्यापारियों और दफ्तर के कर्मचारियों पर रोब जमा लिया। सैर-सपाटे में मस्त रहनेवाले बेकार युवक के मिलनसार स्वभाव की तारीफ होने लगी। और रमानाथ कमाने की कला में निरंतर निपुण होता जाता था। पर महज आमदनी ही नहीं बढ़ी खर्च भी बढ़ता गया। धीरे-धीरे उसने पत्नी के प्रेम के वशीभूत हो एक दिन गंगू महाराज की दूकान से दो चीजें चंद्रहार और शीशफूल ६५०) उधार लगाकर उठा लाया। जालपा की प्रसन्नता का क्या कहना। उसने संतोष के साथ कहा—'अब मैं तुमसे साल भर तक और किसी चीज के लिये न कहूँगी। इसके रुपये देकर तभी मेरे दिल का बोझ हलका होगा।' और इस संतोष से जालपा में पति के प्रति सेवा-भाव उदित हुआ। उसके आभूषण-प्रेम की खबर अन्य सराफों को भी लगी। एक दिन यहाँ तक हुआ कि रमानाथ के दरवाजे पर एक सराफ पहुँच गया। परिस्थितियों के विषम चक्र में फँसकर रमानाथ को, गहनों को न लेने की इच्छा रखते हुये भी, गहने रख लेने पड़े। एक जड़ाऊ कंगन तथा एक ईयररिंग ७००) में उधार ले लिये गये।

अब जालपा का बाहर आना-जाना सहज हो गया। उसके पास क्या नहीं था? और जिस साज-सामान की आवश्यकता पड़ती उसके लिए रमा प्रस्तुत था ही। सखियों की संख्या बढ़ी। पान-पत्ते से लेकर सैरसपाटे तथा सिनेमा तक यह मंडली आने-जाने लगी और यह खर्च रमानाथ के माथे पड़ता था। रमानाथ और जालपा तो रोज ही सिनेमा जाते। सिनेमा में ही एक दिन जालपा की, एक ऐसी स्त्री से भेंट हुई जिसने उसको दूसरे ही दिन अपने यहाँ चाय के लिये न्योता दे दिया। स्त्री थी प्रयाग के प्रसिद्ध ऐडवोकेट श्री इंदुभूषण की पत्नी रतन बाई। पूरी आधुनिका बनकर जालपा रमा के साथ रतन के यहाँ पहुँची। रतन को जालपा का कंगन बहुत पसंद आया। उसने रमानाथ से वैसा ही कंगन अपने लिये भी बनवाने का आग्रह किया। पार्टी खुशी-खुशी बरखास्त हुई। चुंगीकचहरी के क्लर्क

को एक हाईकोर्ट के ऐडवोकेट को निमन्त्रण देना पडा। दिखावे के सारे सामान रमानाथ के साधारण मकान मे प्रस्तुत हुए। पर रतन पार्टी के पहले ही एक दिन आई और अपने कगन के रुपए रमा को दे गयी। रतन जब पार्टी मे आई तो एक अजब आत्मीयता का वातावरण बनाकर चली गयी।

पार्टी से फुर्सत पाकर रमानाथ गंगू की दूकान की ओर पहुँचा। उसका ख्याल था कि रतन के रुपये वह पुराने हिसाब मे जमा करा देगा तथा पुराने हिसाब के ढाइ सौ और नए हिसाब के ६ सौ अर्थात् कुल ८५०) रह जाए गे। पर गंगू बाबू को समझ गया था। रुपये ले लिया और आगे के लिए कगन बनाने का एक झूठा वादा कर दिया।

महीनो बीते पर रतन के कगन का कोई उपाय न हुआ। रमा ने पार्क जाना छोड दिया। अत मे जब रतन मिली तो उसने रमा को कड़ी फटकार बताई। इधर गंगू से रमा को कोरा उत्तर मिल गया कि कगन तब तक न मिलेगे जब तक पिछला हिसाब साफ नही हो जाता। इधर रतन से किया हुआ दस दिन का वादा पूरा होने को आया। अपनी सारी हिकमतो के बावजूद भी रमा इस योग्य न हो सका कि रतन के रुपये जुटा सके। जालपा रमा के गिरे हुए मुह को देखकर बराबर कारण पूछती पर रमा अपना दिल न खोल पाता। यदि रमा सच्ची-सच्ची बात जालपा से कह देता तो यह निश्चित था कि जालपा अपना ही कगन उतार कर रतन को दे देती। पर रमा तो विनाश की ओर बढ़ रहा था। दसवे दिन रतन आई और रमा के लाख हीले-हवाले पर भी उसने उसे तभी छोडा जब रमा ने कल रुपये देने का वादा किया। रमा किसी भी प्रकार रुपये एकत्र करने मे सफल न हो पा रहा था। रमेशबाबू तथा व्यापारी मणिकदास से रुक्के लिखकर उसने रुपए माँगे पर दोनो स्थानो से कोरा जवाब आ गया।

दूसरे दिन की शाम आयी। रमा ने चुगी कचहरी मे रुपए जमा करने मे देर की। खजानची को रुपये गिनने से फुर्सत मिली। फलतः उस दिन का ८००) का हिसाब रमा के पास ही रह गया। रमा ने सोचा कि यदि मै इन रुपयो को रतन को दिखा दूँगा तो रतन आश्वस्त हो जाएगी और रुपए लेने के लिए हट न करेगी। जालपा को उस थैली के रुपए को रतन का बताकर वह शाम को बाहर घूमने चला गया। इतने मे रतन पहुँची। जालपा ने झल्लाकर रुपए दे दिए।

यद्यपि रतन, रमानाथ की कल्पना के अनुसार ही, रुपए देखकर आश्वस्त हो गयी और उसे लेने से इनकार करने लगी पर मानिनी जालपा ने रुपए दे ही दिए। रमा ने जब यह सुना तो उसके पावों के नीचे की धरती खिसक गयी। उसे बात न आई। रमा ने देखा कि रतन ने ६००) ही दिए थे और यहाँ थैली के कुल ८००) दे दिए गए। वह युक्ति सोचने लगा। उसे घबराया हुआ देखकर जालपा ने अपने पास के संचित २००) देने को कहा। रमा ने सोचा १००) मेरे पास हैं रहे ५००)। यदि शेष रतन दे दे तो! पर रतन ने केवल २००) दिया। यह ३००) की कमी किसी भी प्रकार पूरी न हो सकी। रमा रमेश बाबू के यहाँ गया। कहा जेब कट गया और जेब में रखे हुए ३००) भी चले गए। रमेशबाबू ने रमा को पिता से रुपया माँगने के लिए प्रेरित किया। रमा मर सकता था किंतु अपने पिता से इस ढंग की कोई बात कहना उसे मंजूर न था। दूसरा दिन आया। कोई उपाय न बन पड़ा। रमेश बाबू ने रमा से ५००) जमा करवा लिए, ३००) के लिए उसके हाथों में हथकडी नहीं डलवा दी, इस प्रकार अपनी मित्रता का सबूत दिया। अब रमा को कल दस बजे तक ३००) निश्चित रूप से दे देने थे। उसने बहुत माथा मारा, बहुत से यत्न किए, पर कोई कारगर न हुआ। अंत में उसने जालपा को एक पत्र लिखने की ठानी। लिखा कि बहुत विपत्ति में हूँ कोई एक गहना दे दो तो गिरवी रखकर ३००) का प्रबंध कर लूँ बहुत जल्द छुडा दूँगा। पर वह जब पत्र देने पहुँचा तो जालपा अपने सभी वस्त्रा-भूषणों से सज्जित होकर कहीं पड़ोस में जा रही थी ऐसे समय रमा फिर परिस्थिति की भयंकरता को भूल गया। संकुचित हो गया और धीरे-धीरे मोहग्रस्त। उसने जालपा को भींच-भींचकर आलिंगन किया जैसे अंतिम आलिंगन हो। जब जालपा चलने लगी तो उसने रमा से दो रुपए मांगे। रमा के नकार पर भी जालपा ने रमा के जेब में हाथ डाल दिए। रुपए तो नहीं, हाँ उसी का लिखा हुआ वह पत्र अवश्य निकल आया। रमा सीढ़ियाँ उतर गया। उसके ऊपर आसमान फट पड़ा। जिस अपनी दरिद्रता को वह इतने दिन से छिपा रहा था, जिसके लिए उसने चोरी तक किया, उसी दरिद्रता को आज जालपा जान जाएगी। वह अब जालपा को कैसे मुँह दिखाएगा। कहाँ जाय? उसने सोचा आज नहीं कल तो वह जरूर ही पकड लिया जाएगा। इन्हीं सब दुश्चिन्ताओं में वह भागता जा रहा था

कि रेल की सीटी सुनाई दी। यन्त्रवत वह प्लेटफार्म की ओर बढ़ गया। कुलियों के जमादार को अगूठी बेचने को दी जिससे टिकट ले सके। जमादार अगूठी लेकर चम्पत हो गया। रमा जोहता रहा, खोजता रहा पर जमादार न मिला। इधर गाडी ने सीटी दी। वह गाड़ी पर चढ गया। रास्ते मे टिकट बाबू आए। उन्होने रमा को बताया कि उसे अगले स्टेशन पर या तो उतरना होगा या टिकट लेना होगा। गाड़ी भर मे कानाफूसी होने लगी। इसी बीच उसी डब्बे मे बैठा हुआ एक बुड्ढा देवीदीन नाम का खटिक जो तीर्थ-यात्रा से लौट रहा था रमानाथ की सहायता के लिए स्वतः तैयार हो गया। गाडी की बातचीत मे ही पता चला कि देवीदीन के चार बेटे थे सब काल के ग्रास हो गए, बुढिया है जो दूकान करती है गहने पहनती है, ऊपर की कोठरी है जिसमे रमा भी टिक सकता है।

× × ×

जालपा को क्रोध हुआ रमानाथ के इस अविश्वास पर। उसने सोचा चलकर रमा को खरी-खोटी सुनाऊँ। जब नीचे उतरी तो रमा की सायकिल पडी थी, कमरा खाली था और सडक साफ। जालपा के चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी। उसने कगन और हार को रूमाल मे बाँधा और चुगी-कचहरी के लिए ताँगा किया। चुगी कचहरी मे भी रमानाथ गायब मिला। जालपा ने रमेश बाबू से सारी बातें पता लगा कर सुनार के यहाँ ४००) मे कगन बेचकर चुगी कचहरी के देय ३००) जमा कर दिए। जालपा धड़कते हुए दिल से दिनभर प्रतीक्षा करती रही पर रमा न लौटा। दिन पर दिन बीते रमा न लौटा। दयानाथ का ख्याल था उसने आत्महत्या कर ली होगी (यद्यपि वे ऐसा कहते नही थे)। और लोग भी तरह-तरह के अदाज लगा रहे थे। सभी लोग सारा इलजाम जालपा के ऊपर ही थोप रहे थे। एक दिन दयानाथ जब घर आये तो बहुत बिगड़े। किसी सराफ ने उनसे रमानाथ द्वारा लिए गए कर्ज का जिक्र कर दिया था। जालपा ने कहा सराफ को मेरे पास भेज दीजिएगा।

इसी बीच रतन आई और उसने कगन को पूरे दाम मे ६००) देकर खरीद लिया। जालपा ने नारायणदास के रुपए भिजवा दिए। इसी बीच प्रयाग के एक लोकप्रिय दैनिक मे रमा को घर वापस आने के लिए प्रेरणा करते हुए एक नोटिस बराबर छपने लगी। पता लगा लेने वाले आदमी के लिए ५००) का पुरस्कार भी घोषित किया गया। मगर अब तक उसका कुछ पता न लगा।

जालपा घुलती जा रही थी। मुन्शी दीनदयाल आए जालपा को लिवा ले जाने के लिए। पर स्वाभिमानिनी जालपा नहीं गयी, नहीं गयी। जालपा को अब अपने ही प्रति क्षोभ होने लगा। ४०) वेतन पाने वाले पति से क्यों इतने गहने और कपड़े की आशा की। कुल दोष अपने ऊपर लेकर और आत्मग्लानि से भर कर एक दिन वह अपनी सभी प्रसाधन की वस्तुओं को एक बेग में भर कर गंगा में तिरोहित करने के लिए चली। रास्ते में रतन मिली, उसका आग्रहपूर्ण निषेध मिला पर सब बेकार। जालपा विरागिनी-सी हो गयी।

× × ×

रमानाथ देवीदीन के आश्रय में ब्राह्मण बनकर रहने लगा। दिनभर घर में रहता था। कुछ समय के लिए वाचनालय जाता था। एक दिन उसे वाचनालय में रतन दीख पड़ी। पर रमा मुँह न दिखा सका। एक दिन राह में जा रहा था कि उसे सेठ करोड़ीमल के यहाँ से दान में एक कंबल मिल गया। एक दिन आ रहा था कि उसे शतरंज के किसी नक्शे के बारे में जिक्र करते हुए कुछ युवक मिले। उसने भी नक्शा लिया हल करके 'प्रजा मित्र' के कार्यालय में देवीदीन के द्वारा भेज दिया। देवीदीन पुरस्कार के ५०) के साथ लौटा। बुढ़िया ने परामर्श दिया कि ५०) मुझसे और लेकर एक चाय की दूकान खोल लो। रमा ने दूकान खोली पर दूकान खुलती थी शाम को ही वह दो एक दैनिक पत्र भी मँगाने लगा दो चार कुर्सियाँ डाल ली इस प्रकार आमदनी काफी बढ़ चली। अब रमा की सैर सपाटे की पुरानी आदत भी जग पड़ी।

× × ×

इधर जब से रमा गायब हुआ था तब से रतन जालपा के सबसे निकट रहने लगी। पर दुर्भाग्यवश उसके पति वकील साहब को बीमारी के कारण कलकत्ता आना पड़ा। कलकत्ते में रतन ने रमा को खोजने का यथासाध्य प्रयत्न किया पर सफलता न मिली। वकील साहब भी सारे यत्नों के बावजूद न बच सके। रतन वापस इलाहाबाद लौट आई।

× × ×

अब जालपा की बारी थी। उसने रतन के प्रति पूरी हमदर्दी दिखाई। इधर वकील साहब की दाह क्रिया के लिए आए हुए उनके दूर के

भतीजे मणिशकर ने धीरे-धीरे सपत्ति को समेटना आरम्भ किया। अपने विरोधियो को कम करना शुरू किया। वकील साहब के मित्रो को अपना मित्र बनाया। गॉव की आमदनी धर्मार्थ की गयी, मोटर बेच दी गयी, बंगला बेच दिया गया, बैंक के रुपए भी आसानी से पेट मे गए। कुल मिलाकर मणिशकर ने रतन को निस्सहाय बनाकर छोड दिया। रतन ने भी मणिशकर से तनिक भी मदद और अपने पति की सपत्ति की एक वस्तु लेना भी स्वीकार न किया।

× × ×

रमा के पास जब पैसे होने लगे तब उसकी पुरानी आदते भी जग गयीं। शहर मे राधेश्याम का कोई अच्छा-सा नाटक खेला जाने वाला था। भीड काफी होने वाली थी। टिकट पहले से ही लिए जा रहे थे। रमा ने भी सोचा टिकट ले ले। दिन का समय था अपने को पहचान से बचाने के लिए उसने बडी सी पगडी बाध ली। पर रास्ते मे वह शुबहे मे गिरफतार हो गया। देवीदीन ने जाकर बहुत प्रार्थना की पर पुलिस ने न माना। तब देवीदीन ने ६००) घूस देने की ठानी। इतने ही मे रमानाथ एक डकैती के मामले मे 'सरकारी गवाह' हो गया। देवीदीन लौटा, बुढिया आई, पर रमानाथ तो बदल चुका था। फलतः देवीदीन रमानाथ को झिड़कियॉ सुनाता चला गया, बुढ़िया भी भुनभुनाती हुई पीछे थी।

× × ×

जिस शतरज से ५०) पुरस्कार रमा को प्राप्त हुए थे वे और किसी के नही जालपा के थे। जालपा ने पता लगा लिया और पता लगाकर रतन की सहायता से गोपी (अपने देवर) के साथ कलकत्ता चल पडी। यहॉ आकर वह प्रजामित्र कार्यालय की सहायता से देवीदीन खटिक को बुलवाकर उसके घर पहुॅची। बुढ़िया ने सारा इंतजाम पूरा कर रखा था जैसे अपनी बहू को ही उतारना हो। पहले दिन उसने देवीदीन के साथ चोरी से एक पत्र रमानाथ के पास तक पहुॅचाकर उसे इस अनैतिक कार्य से विरत करने की ठानी। पर उस दिन पता लगा रमानाथ डकैती के मुकाम को देखने गया है जिससे पक्का बयान दे सके। आने पर उसने चिट्ठी पहुॅचाई रमानाथ भी जालपा से तार फादकर मिला। जालपा ने वचन लिया कि वह अब गवाही बदल देगा। अपने बगले पर आकर रमा ने पुलिस के अफसरो को साफ जबाब दे दिया कि मेरे ऊपर कही कोई मुकदमा नही है और मै अब बयान न दूँगा

नतीजा यह हुआ कि पुलिस के कर्मचारियों ने फिर धमकी देना शुरू किया। अबकी फिर रमा उनके काबू में आ गया। उसने सेशन में जो बयान दिया वह उसके पुराने बयान की उद्धरणी थी। जालपा भी दर्शकों में थी। वह लोकनिंदा और पति के इस भयंकर आचरण को देखकर सिहर उठी। वह वापस आई। दूसरे दिन फैसला प्रकाशित हुआ। कोई नहीं छूटा। एक को फाँसी की सजा मिली, पाँच को दस-दस साल और आठ को पाँच-पाँच साल की कैद मिली। फाँसी एक दिनेश नाम के युवक को हुई थी जो किसी विद्यालय में अध्यापक था तथा जिसके पीछे उसकी पत्नी, माँ तथा दुधमुँहे बच्चे थे। रमा ने अब जालपा को मनाने की ठानी। बुढ़िया जग्गो के लिए चार चूड़ियाँ तथा पत्नी के लिए हार लेकर वह कार से देवीदीन के घर पहुँचा। वहाँ पर बुढ़िया और जालपा ने इतने तीक्ष्ण वाक्यशरों की वर्षा की, कि रमा को बोल न आई और वह अपना-सा लज्जित मुँह लेकर वापस आ गया।

जब वह अपने बंगले पर पहुँचा तो फिर उसने पुलिस के अफसरों के सम्मुख झल्लाए हुए स्वर में सारा गहना वापस कर दिया तथा बयान बदलने को कहा इसपर पुलिस ने दूसरी धमकी दी। कहा—देवी जी की भी मिजाज पुरसी करनी होगी। रमा काँप उठा। वह नहीं चाहता था कि जालपा के ऊपर कुछ भी बीते। वह ढीला पड़ा और फिर पुरानी स्थिति में आ गया। उसके यहाँ एक जोहरा नाम की वेश्या भी भेजी गयी। जोहरा इस निश्छल हृदय युवक को प्यार करने लग गयी। धीरे-धीरे जोहरा के ही द्वारा उसे जालपा के विषय में पता लगा कि वह हवड़ा के पास, दिनेश के घर पर, उसके बच्चों की देख-भाल करती है, नदी से पानी लाती है, चंदा उगाहती है हाईकोर्ट में अपील के लिये। रमा भर आया। एक रात वह फिर जालपा के यहाँ पहुँचा। उसने जालपा को अपने नए निश्चय की सूचना दी। जीवन भर की झुठाइयों का पर्दा फाश किया। बताया कि जालपा के गहने उसने ही चुराये थे, देवीदीन से कहा कि वह कायस्थ था ब्राह्मण नहीं। और उसी रात उसने जज से मिलकर सारे केस को उलट दिया।

मुकदमा फिर से पेश हुआ; पुलिस वालों की मौत उनके सिर पर आ गयी। मुलजिम सभी छोड़ दिये गये। पुलिस वालों को उचित दण्ड मिला। मुकदमे में दारोगा, नायबदारोगा, इंसपेक्टर, डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट, तथा प्रतिवादी पक्ष से रमानाथ, जालपा, जोहरा, देवीदीन सबका बयान लिया गया। जोहरा का बयान

मार्मिक था। उसने कहा जिस व्यक्ति को मुझे जंजीरो मे कसने के लिए भेजा गया था मैंने देखा कि वह दर्द से कराह रहा है, उसे जंजीर की नही मरहम की जरूरत है। इससे अधिक प्रभावशाली एवं तार्किक बयान जालपा का था उसने कहा कि मेरे पति सर्वथा निर्दोष है। यदि कुछ दोष भी हैं तो मेरा। जिस समय डकैती का वार-दात हुआ है उस समय मेरे पति की हाजिरी प्रयाग के म्यूनिस्पलबोर्ड मे है। इसके अतिरिक्त उन्होने जो कुछ किया पुलिस की धमकियो और उसकी साजिश के वश। सरकारी वकील का कथन यह था कि रमानाथ ने लालच वश झूठा बयान दिया इसलिए उसे झूठे बयान के लिए सजा मिलनी चाहिये। प्रतिवादी वकील ने जो जोरदार भाषण किया उससे वादीपक्ष एकदम शिथिल पड़ गया। इसके पश्चात जज ने फैसला दिया—मुआमला केवल यह है कि एक युवक ने अपनी प्राण-रक्षा के लिये पुलिस का आश्रय लिया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस कारण से वह पुलिस का आश्रय ले रहा है वह सर्वथा निर्मूल है, तो उसने अपना बयान वापस ले लिया। रमानाथ मे अगर सत्यनिष्ठा होती तो वह पुलिस का आश्रय ही क्यो लेता इसमे कोई सदेह नही कि पुलिस ने उसे रक्षा का यह उपाय सुझाया और इस तरह से झूठी गवाही देने का प्रलोभन दिया। मै यह नही मान सकता कि इस मामले मे गवाही देने का प्रस्ताव स्वतः उसके मन मे पैदा हो गया। उसे प्रलोभन दिया गया जिसे उसने दंड-भय से स्वीकार कर लिया। उसे यह विश्वास दिलाया गया होगा, जिन लोगो के विरुद्ध उसे गवाही देने के लिए तैयार किया जा रहा था वे वास्तव मे अपराधी थे, क्यो कि रमानाथ मे जहाँ दड का भय है वहाँ न्यायभक्ति भी है। वह उन पेशेवर गवाहो मे नही है जो स्वार्थ के लिए निरपराधियो को फसाने मे भी नही हिचकते। अगर ऐसी बात न होती तो वह अपनी पत्नी के आग्रह से बयान बदलने पर कभी राजी न होता। यह ठीक है कि उसे अदालत के बाद ही मालूम हो गया था कि उसपर गबन का कोई मुकदमा नही है और जज की अदालत मे वह अपने बयान को वापस ले सकता था। उसवक्त उसने यह इच्छा प्रकट अवश्य की पर पुलिस की धमकियो ने फिर उसपर विजय पाई। पुलिस का बदनामी से बचनेके लिये इस अवसर पर उसे धमकियाँ देना स्वाभा-विक है क्योकि पुलिस को मुलजिमो के अपराधी होने के विषय मे कोई सदेह न

था। रमानाथ इन धमकियो मे आ गया यह उसकी दुर्बलता अवश्य है पर परिस्थिति को देखते हुये वह क्षम्य है। इसी लिये मै रमानाथ को बरी करता हूँ।

× × ×

तीन साल गुजर गए है। देवीदीन ने जमीन ली, बाग लगया, खेती जमाई, गाय-भैस खरीदी और कर्मयोग मे, अविरत उद्योग मे, सुख-शाति और सतोष का अनुभव कर रहा है। इस नए परिवार मे दयानाथ का पूरा परिवार तथा रतन और जोहरा भी आ गयी है। दयानाथ देवीदीन के असिस्टेंट है। अखबार अब भी पढ़ के सुनाते है। रमानाथ एक अच्छा खासा वैद्य हो गया है। इधर रतन रुग्ण होते-होते अधिक बीमार हो गयी। उसने मणिशकर के ऊपर कोई नालिश नही की, यद्यपि तनिक सी कोशिश पर उसे, उसकी सारी सपत्ति प्राप्त हो सकती थी। बीमारी की अवस्था मे जोहरा अहर्निश उसकी सेवा मे लगी रहती थी। धीरे-धीरे एक दिन रतन भी चिरशाति पा गयी। रतन की मृत्यु से जिसे सबसे अधिक दुख हुआ वह थी जोहरा।

इन्हीं दिनो बरसात के कारण बाढ़ आयी हुई थी गॉव के गॉव बह रहे थे। एक दिन एक किश्ती स्त्रीपुरुषो सहित क्षिप्रातिक्षिप्रगामी लहरो मे बही जा रही थी। अचानक किश्ती उलट गयी केवल एक स्त्री का बाल ऊपर बहता हुआ दिखलाई पड़ा। जोहरा जल मे उतर पडी पर वह पकडते पकडते भी एक धार मे सदा के लिए तिर गयी। रमा देखता ही रह गया। वह भी जल मे जोहरा को पकड़ने के लिए उतरा पर बधन ने रोक लिया।

उस दिन से अक्सर जालपा और वह दोनो किनारे पर आकर घटो उस ओर देखते जहॉ पर जोहरा डूबी थी।

\+ \+ \+

वस्तु-शिल्प

वस्तु-विचार करते समय सबसे पहले यह देखना चाहिए कि कौन मूल कथा है और कौन आनुषगिक। मूल या मुख्य कथा आद्यत चलती है तथा उसके वर्णन मे भी एक विशेष बल लक्षित होता है। आनुषगिक कथा को निश्चित रूप से मुख्य कथा से निकलती हुई चलना चाहिए तथा मुख्य कथा को उत्तर मे बढाते रहना

चाहिए। घटनाएँ एक दूसरे से निकलती चले यह भी नितात आवश्यक है। स्वाभाविकता, समीचीनता, सपूर्णता भी वस्तु-सगठन के आवश्यक तत्व है।

'गबन' की मुख्य कथा-वस्तु रमानाथ और जालपा का जीवन है। 'गबन' की मुख्य समस्या जालपा का अर्थात हमारे नारी-समाज का आभूषण-प्रेम और तज्जनित दुष्परिणाम है। लेखक की सफलता इस बात मे परखनी चाहिए कि वह कहाँ तक इस समस्या को, उपर्युक्त दम्पत्ति के जीवन की संगति मे उभार सका है। जालपा का आभूषण-प्रेम कितना मनोवैज्ञानिक और अवश्यभावी है इसको सिद्ध करने मे लेखक पहले आवश्यक परिस्थितियो की सृष्टि करता है। और इसमे कोई सदेह नही कि उसने एक 'आभूषण-मडित ससार' की स्वाभाविक रूपरेखा प्रस्तुत करके जालपा के आभूषण-प्रेम को स्वाभाविक बनाया भी है। बचपन के बिल्लौरी हार से जागी हुई चद्रहार-प्राप्ति की लालसा दिन-दिन जालपा के मन मे आवश्यक परिस्थितियों के बीच सबलतर ही होती गयी। विवाह मे उसे वर-पक्ष चद्रहार लेकर नही आया। यहाँ उसकी आशा की चिर पोषित लता उच्छिन्न हो जाती है। पति से अपने सतत आग्रहो के द्वारा वह आभूषणो की प्राप्ति मे समर्थ होती भी है। पर इधर पतिदेव रमानाथ किस-किस प्रकार उसकी इच्छाओ को पूर्त करते हैं यह वस्तु भविष्य मे चलकर कथा को एक अलग मोड देती है। वह इतना तीखा मोड़ है कि रमानाथ को गबन करके भागना होता है। जालपा के जीवन मे यहां से जागरण होता है और वह कलकत्ता मे पुलिस के चक्कर मे फॅसे हुए पति को अपने सतत, कठोर तथा कष्टसाध्य प्रयत्नो द्वारा उस जाल से मुक्त करती है। इसके पश्चात रमा और जालपा दोनो प्रयाग के समीप ही, अपने जीवन भर मे सपर्कित, सभी विशेष जनो के साथ, खेतिहर के रूप मे बस कर एक श्रममूलक जीवन का ईमानदारी से परिपूर्ण आदर्श उपस्थित करते है।

इस मुख्य कथा मे समस्या के तीनो पक्ष अपने मुक्त रूप मे सामने आते हैं। प्रथम तो आभूषण प्रेम की गंभीर समस्या। द्वितीय, उसका गबन के रूप मे निश्चित दुष्परिणाम। तृतीय, समाधान के रूप मे संयमित और मितव्ययी जीवन की श्रममूलक परिणति। इस प्रकार मूल वस्तु और मूल समस्या परस्पराश्रित रूप मे काफी पूर्ण है। मुख्य वस्तु की दूसरी विशेषता यह है कि वह आद्यत, अपने मे बिना किसी अतर्विरोध को पोषित किये चलती रहती है। तीसरी चीज यह कि

मुख्य वस्तु के अंतर्गत आनेवाले पात्रों का व्यक्तित्व सबसे अधिक कर्मशील और प्रमुख होता। प्रस्तुत प्रसग मे यदि रमा दोषी है तो अपनी पूर्णताओं के साथ। यदि जालपा बढ़ती हुई तपस्या के बीच शालीन से शालीनतर होती गयी है तो वह भी अपने पूर्णता के साथ। स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनो केंद्रीय चरित्र है।

गबन की आनुषंगिक कथावस्तु एक समूह है। उसमे किसी एक आनुषगिक कथा का योग नहीं बल्कि कई प्रासंगिक कथाओ की एक तालिका है जो क्रमशः मुख्य वस्तु से उद्‌गत होकर मुख्य वस्तु को गतिशील बनाती चलती है। ऐसी पहली आनुषगिक कथा है रतनबाई और एडवोकेट इंदुभूषण की। ध्यान रखना चाहिए इन आनुषगिक कथाओ की भी, अपनी सीमारेखा के भीतर एक जीवन-व्याप्ति होती है। इनकी कथा का प्रारभ मुख्य कथा के प्रारंभ के पश्चात होता है तथा परिसमाप्ति पहले ही हो जाती है। एडवोकेट साहब अपने वृद्ध-व्यक्तित्व की आवश्यक रंगरेखाएँ प्रस्तुत कर थोडे ही समय पश्चात संसार से उठ जाते हैं और रतन भी मुख्य-कथा से सटी हुई अत तक चल कर जोहरा के निरीक्षण में मृत्यु को प्राप्त होती है। कुल मिलाकर यह आनुषंगिक कथा मुख्य कथा के उपलक्ष्य मे ही है। इसकी सार्थकता अपने आप मे कम है मुख्य कथा की रेखाओं को गहरी करने मे अधिक है। रतन ही गबन का तात्कालिक कारण (यद्यपि अप्रत्यक्ष ही) थी—ऐसा तो सभी मानेंगे फिर वही रतन जालपा को अर्थात् मुख्य कथा के एक पक्ष को अपनी परिपूर्ण सवेदनाओ से तीव्रतर बनाती है। और अत मे मुख्य पात्रों के ही आश्रय मे जीवन की अंतिम घडियाँ भी गिन देती है।

दूसरी आनुषगिक कथा है देवीदीन और जग्गो की। मुख्य कथा का पुरुष पक्ष रमानाथ गबन के पश्चात ही अपनी पूर्ण निरीहावस्था मे तीर्थयात्री देवीदीन के वात्सल्यपूर्ण सम्पर्क मे आता है। आगे चलकर यह सपर्क देवीदीन और जग्गो के संरक्षण मे बदल जाता है। जब रमा पुलिस के जाल मे फॅस जाता है तो यह दम्पति अपना महत्वपूर्ण पार्ट खेलकर रमानाथ की भ्रष्ट परिणति और पुलिस की चालबाजियो को और अधिक उभार देती है। जालपा के कलकत्ता पहुँचने पर इस दम्पत्ति के कृत्य इस आनुषगिक कथा को और सपन्नता तथा मुख्य कथा को और रग देते है। जालपा इनके कारण भी उत्कर्षशील होती जाती है। यह

आनुषंगिक कथा मुख्य कथा में कहीं विलीयमान नहीं होती बल्कि अंततक चलती जाती है। पहली आनुषंगिक कथा की तरह यह आनुषंगिक कथा भी मुख्य कथा का उपलक्ष्यत्व स्वीकार करके भी अपना एक पृथक स्मरणीय व्यक्तित्व रखती ही है।

तीसरी अपेक्षाकृत छोटी आनुषंगिक कथा है वेश्या जोहरा का रमा के जीवन में आगमन। यह रमा के जीवन को गलत दिशा में परिवर्तित करने के लिए भेजी जाती है पर स्वयं एक परिवर्तित जीवन लेकर लौटती है। वह मुख्य कथा के दोनों मुख्य पात्रों रमा और जालपा से मिलती है। एक से निश्छल प्यार पाती है और दूसरी से प्रोज्वल कर्तव्य बुद्धि। उत्तर में रमा के कालिमामय जीवन के अंतरवर्ती उज्वलता का प्रमाण बनती है तथा जालपा की साधना की प्रभाव-शक्ति की गहराई का विज्ञापन करती है। इस प्रकार यह आनुषंगिक कथा भी अपना व्यक्तित्व खड़ा करने में समर्थ हो जाती है।

शेष कथाएँ यथा रमेश बाबू का संबंध, पुलिस का व्यवहार आदि मुख्य पात्रों के Associations के रूप में हैं। यह आनुषंगिक कथा के दोहरे दायित्व को पूर्ण नहीं करते। इसके अतिरिक्त कलकत्ता के जीवन की कुछ घटनाएँ घटनाएँ (incidents) भर ही होकर रह गयी हैं। इन घटनाओं का भी एक क्रम और क्रमिक महत्व अवश्य है पर इनकी इतनी ही आलोचना अलम है कि यह अपने उद्देश्य की पूर्ति करती हुई मुख्य कथा में विलीयमान हो जाती है। अब हम 'गबन' के वस्तु-संगठन की अतिरिक्त विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

१—कथानक पूर्णतः स्वाभाविक है—कथानक हमारे साधारण जीवन की एक ज्वलंत समस्या को लेकर चलता है इसलिए वह अपरिचित नहीं है। कथानक का विकास भी क्रमिक, अंतर्विरोध-हीन और समीचीनता के गुण से युक्त (जहाँ जो होना चाहिए वहीं उस चीज का होना) है। जितने मोड़ हैं सब तार्किक और संगत है उत्कर्ष के स्थल कथा की रंजकता को और तीव्र करते हैं। कथानक का सरल विकास भी अपना एक विशेष महत्व रखता है। 'आगे क्या होगा ?'—ऐसे कौतूहलपूर्ण या आयास सिद्ध प्रश्नों को गबन के कथा-विकास में अनवकाश प्राप्त है। 'आगे क्या होगा ?' इसका पूर्वाभास अक्सर हमें पहले ही प्राप्त हो जाता है। रमा के ऊपर विपत्तियाँ आएँगी—ऐसा उसके पत्नी से

छिपाव, कम आमदनी और अधिक खर्च से कौन नहीं समझ लेता। उसकी ढुलमुल यकीनी और दुर्बल चरित्र से कौन नहीं जान लेता कि उसे मुखबिरी से अलग करना अत्यत कठिन है। इसके अतिरिक्त इस कार्य मे उपन्यासकार भी भावी घटनाओं की अग्रसूचनाएँ देकर हमारी सहायता करता है। जालपा के स्वप्न से रमा की भावी विपत्ति का आभास कि उसे सिपाही गिरफ्तार करके लिए जा रहे हैं. इदुभूषण की मृत्यु के पूर्व 'विधि का अंतरिक्ष मे बैठकर हसना यह सब वैसी ही सहायताएँ है।

२—अतिरिक्त समस्याएँ भी—गबन की मूल समस्या, जैसा कि कहा जा चुका है, आभूषण प्रेम और तज्जनित दुष्परिणाम है। पर इस मूल समस्या के साथ प्रेमचद अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अन्य समस्याएँ भी उठाते चलते है। वे अक्सर जितनी आनुषगिक कथाएँ लेते है उन सबको अलग-अलग समस्याएँ भी होती है। रतन की आनुषंगिक कथा के साथ दो समस्याएँ हैं:—(१) वृद्ध-विवाह तथा (२) हिंदू-विधान मे विधवा स्त्री का सपत्ति पर मौलिक अधिकार का प्रश्न। जग्गो–देवीदीन की कथा के साथ (१) स्वाधीनता-संग्राम की समस्या तथा (२) जाति-प्रथा की समस्या है। जोहरा की कथा के साथ (१) मनुष्य की कुछ स्थायी सत्प्रवृत्तियों के चेतन की जरूरत तथा (२) एक वेश्या भी एक आदर्श नारी की सगति से किस प्रकार एक आदर्श परिणति प्राप्त करती है—इसके प्रदर्शन की आवश्यकता है। इस प्रकार जैनेन्द्र आदि परवर्ती लेखको के विपरीत, प्रेमचद अपने बहुमुखी जीवन के अकन के मोह से हमको बहुत कुछ दे जाते है। हाँ इस प्रवृत्ति का अतिक्रम—जो कि टाल्सटाय आदि विदेशी उपन्यासकारो मे विशेष मिलता है–खतरनाक है। पर जहाँतक गबन का संबंध है गबन का बहुमुखी अंकन कोई एतराज नहीं पैदा करता।

३. यौन संबधों का स्वस्थ अंकन—वेश्याओं आदि या अन्य स्त्री-पुरुषो के यौन संबधों का अकन करते हुए भी प्रेमचद अत्यत स्वस्थ और सयमित चित्र उपस्थित करते है। उदाहरण के लिए जोहरा-रमानाथ और जालपा-रमानाथ का यौन सबध।

४ वातावरण का यथार्थ चित्रण—प्रत्येक घटना या परिस्थिति के पीछे जो भी परिवेश हो प्रेमचद उसका अकन बडी ही सफल और अभ्यस्त लेखनी से करते है। उदाहरण स्वरूप म्यूनिस्पैलिटी दफ्तर के दृश्य, पुलिस के दृश्य-

कडे, खटिक की दूकान, चायघर आदि। परिवेश (Environment) के इसी यथार्थवादी अकन द्वारा लेखक पाठक का विश्वास प्राप्त करता है। और प्रेमचद मे यह विशेषता कूट-कूट कर भरी हुई है। यहाँ लेखक की पर्यवेक्षण-शक्ति की परीक्षा होती है और कहना होगा कि प्रेमचंद मे यह गुण पर्याप्त मात्रा मे है।

५—सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व—'गबन' के छोटे धरातल पर भी तीन जोड़े पात्र तीन वर्गों से आकर 'गबन' के सामाजिक चित्रण को परिपूर्णता प्रदान करते हैं।

१—रतन और एडवोकेट इदुभूषण (उच्च मध्यवर्ग)

२—जालपा और रमानाथ (निम्न मध्यवर्ग)

३—जग्गो और देवीदीन खटिक (निम्नवर्ग)

इन तीनो जोडो से सबद्ध तत्वो पर चूँकि पिछली पक्तियो मे विचार हो चुका है इस लिए इसे यहाँ इतना ही कहकर रहने दिया जाता है।

गबन के वस्तु-संगठनगत दोष

दो प्रकार के दोष बताए जाते है।

१—प्रयाग और कलकत्ता के कथानक में एक अनपेक्षित जुड़ाव—मान्य आलोचको का कथन है कि प्रयाग मे आरभ हुआ कथानक यदि प्रयाग मे ही रह जाता तो कथानक अत्यत सुष्ठ रहता। पर कलकत्ता मे ले जाकर जो कथा-विकास किया गया है वह कथा-शिल्प की दृष्टि से अनपेक्षित है। इस विषय मे मेरा नम्र निवेदन है कि रमा और जालपा के जीवन का वह एक ही सूत्र है जो प्रयाग से स्थान बदल कर कलकत्ता पहुँच गया है। थोडी सी नवीनता यह हुई है कि कलकत्ता मे कुछ ऐसे और पात्र सबद्ध हो जाते है जिनसे प्रयाग का पुरानापन समाप्त हो जाता है और कलकत्ता का नयापन शुरू हो जाता है। इस नएपन के विषय मे हम इतना ही कहेगे कि कलकत्ता का कथानक थोडा छितराया हुआ है। पर इस बिखराव से भी जालपा का उत्कर्षसाधन ही होता है।

२—गबन में आए दो व्यक्तियों की लम्बी बातचीत

अ—वकील साहब की स्त्री-स्वाधीनता सबधी लम्बी वार्ता

ब—देवीदीन खटिक के स्वाधीनता-सग्राम का लम्बा संस्मरण

दोनो मे मेरी समझ से वार्ता की सीमा का अतिक्रमण नही किया गया है।

———

चरित्रांकन

गबन को न हम चरित्र-प्रधान उपन्यास कह सकते न घटना प्रधान। वस्तुतः इसमे घटना और चरित्र दोनो एक समंजस अवस्था मे मिलते है। इस प्रकार यदि हम चाहे तो गबन को घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यास कह सकते हैं। प० नददुलारे वाजपेयी 'गबन' मे घटना और पात्र के सबंध (Relation) के विपय मे लिखते हैं:—"गबन मे परिस्थिति और चरित्र-निर्माण का एक दूसरे से अविच्छेद्य सबध स्थापित हो गया है। परिस्थितियो व चरित्रो का अतवर्तित्व इस कृति मे दिखाई देता है अर्थात परिस्थितियों का पात्रो पर व पात्रो का परिस्थतियो पर कैसा स्वाभाविक प्रभाव पड़ता है और वे एक दूसरे से अविच्छिन्न रहकर किस प्रकार विकसित होते है इसका सुन्दर स्वाभाविक निरूपण इस उपन्यास मे है।[1]", इसके पूर्व वाजपेयी जी के ही शब्दो मे "रंगभूमि मे विशालता अधिक है, परंतु कथासूत्र किसी सुनिश्चित केन्द्र से सबद्ध नही है और कथा-विकास तथा चरित्र-विकास अन्योन्याश्रित नहीं है।"[2]

गबन मे रमानाथ का सपूर्ण जीवन विभिन्न परिस्थितियो मे घूमता हुआ एक चलचित्र है जिसमे परिस्थितियाँ उभरती है। रमानाथ उन चारित्रिक विशेपताओ से शून्य है जिनसे व्यक्ति परिस्थितियो के दासत्व से इनकार करता है। परिस्थितिवश ही नौकरी करता है, परिस्थितिवश ही गहने चुराता-खरीदता है, परिस्थितिवश ही गबन करता और भागता है। परिस्थितिवश ही वह खटिक के यहॉ ब्राह्मण बनकर रहता है और परिस्थितिवश ही वह पुलिस

१—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ १४३। २—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ १४३।

की जाल मे फॅसता है, परिस्थितिवश ही उसका सुधार होता है। उसने अपनी इच्छा-शक्ति अर्थात् चरित्रशक्ति से कभी परिस्थितियो के प्रवाह को मोड़ा हो—ऐसा नहीं दीखता। हॉ जालपा मे यह (चरित्रशक्ति) अवश्य सबल है। वह पति के भागने पश्चात से बराबर परिस्थितियों को मोडती हुई चली है। विवाह के कुछ दिनो पश्चात तक तो वह भी परिस्थितियो के प्रवाह मे बहती चली परतु भागने के पश्चात उसने अपनी सहज बुद्धि (common sense) से तुरत समझ लिया कि उसे क्या करना चाहिए और उसने गबन की परिस्थिति को दूर कर दिया—फिर लम्बे वियोग के पश्चात, अपनी बुद्धिशक्ति के द्वारा एक पेचीदे मार्ग से पति का पता लगाया। कलकत्ता पहुँची और जिन परिस्थितियो मे रमा फॅसा था, उनको झटका देने की बराबर कोशिश करती रही और अत मे सफल भी हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि गबन मे घटना और चरित्र दोनो परस्पराश्रित हैं तथा एक दूसरे को बढाते और तीव्र करते है। अब प्रमुख पात्रो का व्यक्तित्व-विश्लेषण कर लेना आवश्यक है।

पात्रो के व्यक्तित्व की विशेषताएँ जानने के लिए निम्नलिखित चार बातो पर ध्यान देना चाहिए—

१—पात्र का कथन।

२—पात्र के कर्म।

३—दूसरे पात्रो द्वारा अभीष्ट पात्र पर व्यक्त अभिमत।

४—पात्र के विषय मे स्पष्टतः व्यक्त किये गए लेखक के विचार।

इसी दृष्टि से गबन के प्रमुख पात्रो का चरित्राकन आगे किया जाता है।

जालपा

प्रेमचद के उपन्यास-साहित्य मे जितने भी नारी पात्रो की अवतारणा हुई हैं जालपा उन सबमे विशिष्ट है। उसकी विशिष्टता इस बात मे है कि वह **परिस्थितियों से टक्कर तो बराबर लेती है पर कभी धैर्य नहीं खोती**। "वह निर्मला की तरह घुलघुलकर प्राण देने वाली नही है और न सुमन की तरह तैश मे आकर जल्दी ही किसी अनजानी राह पर कदम उठाने वाली। उसका चरित्र

कठिनाइयों का सामना करते हुए बराबर निखरता रहा है क्यों कि वह अपनी खामियों को पहचान सकती है। वह एक ईमानदार और साहसी स्त्री है।"[1]

हमारे समाज की अन्य नारियों की तरह जालपा में **आभूषण-प्रेम** था। इस आभूषण-प्रेम के पीछे बड़ी ही सशक्त मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ थीं। प्रेमचंद लिखते हैं — "जालपा को गहनों से जितना प्रेम था उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से नहीं था और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी! जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दूल्हा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लाएगा; ठुमुक ठुमुक कर चलेगी।"[2] इस प्रकार प्रेमचंद के शब्दों में वह आभूषणमंडित संसार में ही पली थी।

जालपा के विवाह में दूल्हा गहनों में वह चंद्रहार नहीं लाया जिसकी आशा जालपा ने बचपन में बिल्लौरीहार खरीदने समय ही बाँध रखी थी जो आशा माँ के चंद्रहार को देखकर एक बार चोट खा चुकी थी। ससुराल में जब मध्यवर्गीय पति अपने पिता की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए अपनी नवागता वधू के गहने चुरा लेता है तो स्वभावतः वधू को भयकर चोट पहुँचती है। और यदि वह रमा की झूठी डींगों और आभूषण न बनने के कारण बहुत दिनों तक ससुराल वालों को तंग करती हो तो उसमें उसका विशेष दोष नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता है।

इसी विकृत मनस्थिति में माँ का भेजा हुआ चंद्रहार प्राप्त होता है। वह माँ की परिस्थिति को तुरत बूझ कर कहती है "प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दे तो मैं दोनों हाथों से ले लूँ। दान भिखारियों को दिया जाता है। मैं किसी का दान न लूँगी चाहे वह माता ही क्यों न हो।"[3] निश्चय ही यहाँ उसकी सुलझी हुई **सहज बुद्धि, स्वाभिमान तथा सिद्धांत के लिए माता तक को ठुकरा देने की शक्ति** दीखती है। वह चंद्रहार नहीं लेती। एक बार रमा उसके लिए उधार गहने बनवाने का विचार करता है। पता चलने पर जालपा अपना नैतिक

---

१. 'प्रेमचंद और उनका युग'; डा० रामविलासशर्मा। २. गबन पृ० २८।
३. वही पृ० ४३।

उत्तर देती है "नही मेरे लिए कर्ज की जरूरत नही। मै वेश्या नही कि तुम्हे नोच खसोट कर अपना रास्ता लूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनो के रहना पडे तो भी मै कर्ज लेने के लिए न कहूँगी।"[१] परंतु प्रेमी पति उसे गहनों से लादने की फिक्र करता ही रहा।

आभूषण पाकर जालपा की चिर पोषित लालसा सतुष्ट होने लगती है और वह **पति की सेवा** भी शुरू कर देती है। संतुष्टि से सेवा का उद्गम स्वाभाविक ही है। पर गहनो के लिए पति की प्रसन्नता खतरे मे पड़े यह उसे किसी भी मूल्य पर पसंद नही। उधार गहनो को देखकर एकबार वह कह उठती है कि "क्या तुम समझते हो कि मै गहने और साडियो पर मरती हूँ? इन चीजों को लौटा लाओ।"[२] और जब उसे यह पता चल जाता है कि गहनो के कारण रमा ऋण के बोझ से टूट रहा है तो उसके मुँह से निकल पडता है—"अगर मै जानती कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियो को तॉगे पर बैठा बैठा कर सैर कराने ले जाती। अधिक से अधिक यही होता कि कभी कभी चित्त दुखी हो जाता पर यह तकाजे तो नहीं सहने पडते।"[३] निश्चित रूप से जालपा को नही पता था कि रमा अपने चदरे से इतना बाहर पैर पसार चुका है। इसके अतिरिक्त उसे यह भी तो सूचना थी कि रमा के माता-पिता के पास काफी धन बैंक मे जमा था। लेकिन ज्यो ही उसके सामने से इस भ्रम का पर्दा अनावृत होता है वह तुरत अपने उम्र के तकाजे से इनकार कर देती है और रमा के गबन करके भाग जाने के पश्चात वह अपने समस्त प्रसाधनों को निर्विकल्प मन से गगा मे बहाते हुए रतन से कहती है "यही निष्ठुरता मन पर विजय करती है। यदि कुछ दिन पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यो देखना पडता।"[४] यहाँ उसकी **निश्चयशक्ति** और **त्यागशक्ति** स्पष्ट होती है।

पर इस विवेचन का यह अर्थ नही है कि वह किसी देवी की धातु की बनी है। **वह देवी नहीं मानुषी है**। यह सारा कर्ज और रमा की तबाही बिलकुल रमा की ही इच्छा से हुई हो ऐसा नही है। जालपा जानती थी कि रमा को ४०) प्रति मास वेतन और थोडी ही ऊपर आमदनी होती है फिर वह आमोद-

१. वही पृ० ५० । २. वही पृ० ७६ । ३. वही पृ० ११७ ।
४. गबन पृ० १५८ ।

प्रमोद, आभूषण-प्रसाधन का इतना बड़ा भार कैसे सँभाल सकता था। इसमें यदि उसकी जानकारी न हो तो उसकी लापरवाही तो माननी ही होगी। रमा के घर से भागने के पश्चात "उसके मन ने पहली बार स्वीकार किया कि यह सब उसी की करनी का फल है। यह सच है कि उसने कभी आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया पर स्पष्ट रूप से मना भी तो नहीं किया। + + + + वह जानती थी रमा रिश्वत लेता है नोच-खसोट कर रुपये लाता है। फिर भी कभी उसने मना नहीं किया। उसने खुद क्यों अपनी कमली से बाहर पाँव फैलाया? क्यों उसे रोज सैर-सपाटे की सूझती थी। उपहारों को ले ले कर वह क्यों फूली न समाती थी।"[1] यहाँ वह अपनी निरुद्देश्य खतरनाक **फजूलखर्ची** को स्वयं स्वीकार करती है।

उसकी दूसरी कमजोरी है दिखावा की मनोवृत्ति। जब वह रतन के यहाँ पहली बार जाती है तो अपने ६००) के कंगन का मूल्य ८००) बताती है। पर वह इस तथा इस प्रकार की अन्य सभी कमजोरियों पर अपनी **पश्चाताप शक्ति** द्वारा विजय पाती गयी। वह अपने ऊपर के कृत्य पर रहती है "मैं व्यर्थ ही झूठ बोली। वह मुझे अपने मन में कितना नीच समझ रहे होंगे। रतन भी मुझे कितना बेईमान समझ रही होगी।"[2]

अपने **दोषों को स्वीकार करने की शक्ति** अपने आप में एक महानशक्ति है। अपने दोष को स्वीकार करने के पीछे अपने परिष्कार की इच्छा भी छिपी रहती है। प्रेमचंद भी कहते हैं "अपनी या अपनों की बुराइयों पर शर्मिन्दा होना सच्चे दिलों का ही काम है।"[3] जालपा में यह अपने आदर्श रूप में मिलती है। कलकत्ता में रमा से मिलने पर वह कहती है "तुम्हारा कोई दोष नहीं सरासर मेरा दोष है, अगर मैं भली होती तो आज यह दिन ही क्यों आता। जो पुरुष तीस चालीस रुपये का नौकर हो उसकी स्त्री अगर दो चार रुपये रोज खर्च करे, हजार दो हजार के गहने पहनने की नीयत रखे तो वह अपनी और उनकी तबाही करने का सामान कर रही है। अगर तुमने मुझे इतना धनलोलुप समझा तो कोई आश्चर्य नहीं किया, मगर एक बार जिस आग में जल चुकी उसमें फिर न कूदूँगी।"[4] वह अन्यत्र भी अपनी विलास-दुर्बलता पर पश्चाताप करती है "जब तक

---

१. वही पृ० १४६। २. वही पृ० ८८। ३. वही पृ० ३०७। ४. वही, पृ० २५७।

ये चीजे मेरी आँखो से दूर न हो जाएंगी, मेरा चित्त शात न होगा। इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरे विपत्ति की गठरी है, । प्रेम की स्मृति नही। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।"[१] अन्यत्र भी जब जालपा गहने न मिलने पर सखियों को पतिनिंदा के पत्र लिखती है तो उसे घोर पश्चाताप होता है। और वह पति के आगे स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है अपने इस दोष को। यह एक कठोर नैतिक शक्ति का काम है यह कहने की आवश्यकता नही।

इस समस्त विलासाडंबर के बीच भी वह अपने **प्रेमदीप को अक्षुण्ण रखती है**। यद्यपि रमानाथ को उसकी जवानी का ही मोह था प्रेमचद लिखते है "वह उसके यौवन पर मुग्ध था। उसकी आत्मा का स्वरूप देखने की कभी चेष्टा ही न की। शायद वह *समझता था* इसमें आत्मा है ही नही। अगर वह रूप-लावण्य की राशि नही होती, तो कदाचित वह उससे बोलना भी पसद न करता। उसका सारा आकर्षण, उसकी सारी आसक्ति केवल रूप पर थी। वह समझता था जालपा इसी मे प्रसन्न है।"[२] पर वस्तुत जालपा इसमें प्रसन्न नही थी क्योकि वह एक **शुद्ध भारतीय सहधर्मिणी** की तरह देखती जो है "भोजन मे भी...तुम्हे कोई आनद नही आता। दाल गाढी है या पतली, शाक कम है या ज्यादा, चावल मे कमी है या पक गए है इस तरफ तुम्हारी निगाह नही जाती। मैं यह सब क्या नही देखती।"[3] वह रमा की धमनी और शिराओं की गति तक पहचानती है। वह रमा से दुख भरे स्वर मे कहती है "तुम अब भी मुझसे किसी-किसी बात मे पर्दा करते हो। अगर तुम्हे मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कोई पर्दा नही रखते। तुम्हारे मन मे कोई ऐसी जरूर बात है, जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनो से देख रही हूँ, तुम चिंता मे डूबे रहते हो। मुझसे क्यो नही कहते? जहाँ विश्वास नही वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है?"[४] रमा के कर्ज के न चुकता करने के रहस्य का जब पर्दाफाश हो जाता है तब वह रमा को समझाती है "मै तो भले बुरे दोनो ही की साथिन हूँ, भले मे चाहे तुम मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे मे तो मै तुम्हारे गले पडूंगी ही।"[५] वह रमा को क्यो प्यार करती है, क्यो इतना चाहती है, क्यो वह पति-पत्नी के 'रिवाजीनाते'

१. वही पृ० १५७। २. वही पृ० १२६। ३. वही पृ० १२८।
४. वही पृ० ९३। ५. वही पृ० ११७।

से अधिक नाता रखती है इसके विषय में भी **वह स्पष्ट है**। कहती है "बतादूँ? मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूँ। अब तुमसे क्या छिपाऊँ जब मै यहाँ आयी तो यद्यपि तुम्हे अपना पति समझती थी लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे चिंता होती थी कि तुम उसे पसंद करोगे या नही। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पुरुष से हुआ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता। यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है, पर अब मै तुम्हे गोपियो के कृष्ण से भी न बदलूँगी लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है। तुम अब भी मुझसे किसी-किसी बात में पर्दा रखते हो।"[1] वह शुरू से ही विपथगामी रमा को सुधारने की बागडोर अपने हाथ में ले लेती है और कडाई से उससे कहती है "मुझसे प्रेम होता तो मुझसे विश्वास भी होता, बिना विश्वास के प्रेम हो भी कहाँ सकता है। जिससे तुम अपनी बुरी से बुरी बात न कह सको उससे तुम प्रेम भी नहीं कर सकते। बोलो है या नहीं? आँखे क्यो चुराते हो?[2]

इसके पश्चात् हम रमा के चले जाने के बाद से उसके प्रथम बार मिलने तक के काल में जालपा की **व्यवहार-बुद्धि, तुरत-बुद्धि** (Presence of mind) **सहज-बुद्धि** (Common sense) के विकास का काल पाते हैं। वह रमा के घर से निकलते ही सायकिल को घर मे पडी देखकर स्थिति का बहुत कुछ अनुमान कर लेती है। तुरत ताँगा करके दफ्तर पहुँचती है। रमा के वहाँ न मिलने पर आशा खोकर लौट नहीं आती, रमेश बाबू से मिलती है उनसे समाचार प्राप्त करती है। इसके पश्चात् भी वह सिर नहीं पीटती बल्कि हार बेच कर पति को अपराध मुक्त करती है। दिन बीत जाता है, सास से नहीं कहती। सारे दुख के भार को स्वय झेलती है। इसी धैर्य शक्ति का विकास उसके जीवन को शीर्ष तक पहुँचाता है। पश्चात् वह तकाजो से परेशान श्वसुर को, रतन को कंगन बेचकर (खड़े दामो मे) और नारायणदास का रुपया चुका कर बोझमुक्त करती है। मोल-तोल तो वह ऐसे करती है कि मर्द क्या करेंगे। उसके बुद्धि की सबसे बडी कुशलता वहाँ पर दीखती है जहाँ वह शतरंज के नक्शो को पुरस्कार सहित निकलवाकर पति का पता लगा लेती है। जालपा की इस सूझबूझ को देखकर कागज और

---

१. गबन, पृष्ठ ६४। २. वही, पृष्ठ १२८।

शतरंज में जीवन खपा देने वाले बड़े बाबू रमेश भी कह उठते है—"मान गया बहूजी तुम्हें। वाह क्या हिकमत निकाली है, हम सबके कान काट लिए।"[1] अंत में वह कलकत्ता पहुँचती है।

कलकत्ता में उसके जीवन को चरमोत्कर्ष (Climex) प्राप्त होता है। वह कलकत्ता पहुँचते ही एक खटिक की पत्नी जग्गो को दो चार क्षणों में अपनी माँ के समान स्वीकार कर लेती है। **उसकी निष्ठा कर्मशीला है।** वह बुढ़िया जग्गो से कहती है "अब तुम्हें भोजन न बनाना पड़ेगा माँ जो मैं बना दिया करूँगी।"[2] देवर के लड़कपन पर वह उसे फटकारती है "खटिक हो या चमार हों लेकिन हमसे और तुमसे सौगुने अच्छे हैं। एक परदेशी आदमी को छः महीने तक अपने घर में ठहराया, खिलाया-पिलाया। हममें है इतनी हिम्मत? यहाँ तो मेहमान आ जाता है, तो भारी हो जाता है। अगर यह नीच है तो हम इनसे कहीं नीच है।"[3] इस उत्तर में हिंदुओं की जातीय समस्या का उत्तर है।

इसके पश्चात् वह अपनी पूरी शक्ति से पति को पुलिस के दलदल से उबार लेने का प्रयत्न करती है। अपने इस कृत्य द्वारा वह अपनी पतिभक्ति का प्रमाण देती है जो शायद (छोटे मुँह बड़ी बात के लिए क्षमा किया जाऊँ तो) सीता और सावित्री भी न दे सकी थीं। **वह अपने को कठिनाइयों में फेंक देती है।**

रमा को एक चेतावनी से युक्त पत्र गोधूलि के अँधियारे में **नि शंक भाव** से बंगले के अहाते में पहुँचा आती है। रमा को पहली बार देवीदीन के घर आने पर अपनी पूरी शक्ति से जालपा ने समझाया पर उसके मुखबिरी के बाद नौकरी पाने की लालच को सुनकर क्रोधपूर्ण उत्तर दिया—कैसी बेशर्मी की बातें करते हो जी? क्या तुम इतने गए-बीते हो कि अपनी रोटियों के लिए दूसरो का गला काटो? मैं इसे नहीं सह सकती। मुझे मजदूरी करना, भूखों मर जाना मंजूर है। बड़ी से बड़ी विपत्ति जो संसार में है, वह सिर ले सकती हूँ लेकिन किसी का **अनभल करके स्वर्ग का राज भी नहीं ले सकती।**[4] रमा के लिए वह **शक्ति का फौव्वारा छोड़ती** है "जिस आदमी में हत्या करने की शक्ति हो उसमें

---

१. गबन पृ० २३८। २. वही पृ० २४१। ३. वही पृ० २४१।

४. वही पृष्ठ २५८।

हत्या न करने की शक्ति का न होना अचम्भे की बात है। जिसमे दौडने की शक्ति हो उसमें खडे होने की शक्ति न हो इसे कौन मानेगा ? जब हम कोई काम करने की इच्छा करते है तो शक्ति अपने ही आप आ जाती है। तुम यह निश्चय कर लो कि तुम्हे बयान बदलना है बस और सारी बाते आप ही आप आ जाएँगी।"[1] पर जब दूसरी बार भी रमानाथ ने वही बयान दे दिया तो जालपा कट सी गयी। पर "जालपा का मन अपनी हार मानने के लिए किसी तरह राजी नही होता। वह उस अभिनय मे सम्मिलित होने और अपना पार्ट खेलने के लिए विकल हो रही थी। क्या एक बार फिर रमा से मुलाकात न होगी ? उसके हृदय मे उन जलते हुए शब्दो का एक सागर उमड़ रहा था जो वह उससे कहना चाहती थी—तुम्हारा धन और तुम्हारा वैभव तुम्हे मुबारक हो, जालपा उसे पैरो से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रँगे हुए हाथो के स्पर्श से मेरी देह मे छाले पड़ जाएँगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी उसे मै मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नही हो।"[2] इसके पश्चात् उसकी मनःस्थिति यह है। "उसके (रमा के) मर जाने की सूचना पाकर भी शायद वह न रोती। प्रणय का वह बंधन जो उसके गले मे ढ़ाई साल पहले पडा था, टूट चुका था पर निशान बाकी था। रमा की इस घृणित कायरता और महान स्वार्थपरता ने जालपा के हृदय को मानो चीर डाला था फिर भी उस प्रणय बधन का निशान अभी तक बना हुआ था। रमा की प्रेम-विह्वल मूर्ति जिसे देखकर एक दिन वह गद्गद् हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय मे छाये हुए अंधेरे मे क्षीण मलिन, निरानन्द ज्योत्स्ना की भाँति प्रवेश करती और एक क्षण के लिए वह स्मृतियाँ विलाप कर उठती। + + + उसके लिए भविष्य की मधुर स्मृतियाँ नही थीं, केवल कठोर नीरस वर्तमान विकराल रूप से खडा घूर रहा था।[3] फैसला निकला कोई नहीं छूटा। एक को फासी की सजा मिली पाँच को दस-दस साल और आठ को पाँच-पाँच साल। उसी दिनेश को फासी हुई। ~~रमा~~ के मन मे तत्काल उठा—इन बेचारो के बाल बच्चो का न जाने क्या हाल होगा। यह **तीव्र परदुखकातरता** जालपा के नारी-हृदय की महत्वपूर्ण विशेषता थी।

---

१ गबन पृष्ठ २५६। २. वही पृ० २७५। ३. वही पृ० २७६।

फतह की खुशखबरी लेकर, सिर पर बनारसी रेशमी साफा, रेशम का बढ़िया कोट, आँखों पर सुनहरी ऐनक पहने रमानाथ जब जालपा के लिए हार और जग्गो के लिए चूड़ियाँ लेकर आता है उस समय जालपा का स्वागत देखने योग्य है "उसके अंतिम शब्द जालपा के कानों में पड़ गए। बाज की तरह झपट कर धम धम करती हुई नीचे आयी और जहर में बुझे हुए वाक्यबाणों का उसपर प्रहार करती हुई बोली—अगर तुम सख्तियों और धमकियों से इतना दब सकते हो तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं ? क्या सख्तियाँ की थीं जरा सुनूँ तो ? लोगों ने हँसते-हँसते सिर कटा लिए हैं। अपने बेटों को मरते देखा है, कोल्हू में पेले जाना मंजूर किया है पर सचाई से जौ भर न हटे। तुम भी आदमी हो तुम क्यों धमकी में आ गए। क्यों नहीं छाती खोल कर खड़े हो गए कि इसे गोली कर निशाना बना लो पर मैं झूठ न बोलूँगा। क्यों नहीं सिर झुका दिया। देह के भीतर इसलिए आत्मा रखी गयी है कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश करदे।"[1] जालपा ने आगे कहा—"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूँ कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया कि तुम मर गए। तुम भी समझ लो कि मैं मर गयी। बस जाओ। मैं औरत हूँ मगर कोई धमका कर मुझसे पाप कराना चाहे तो चाहे उसे न मार सकूँ अपनी गर्दन पर छुरी चला लूँगी। क्या तुममें औरत के बराबर भी हिम्मत नहीं है ?

अपने कलकत्ता-प्रवास में जालपा अपने चरित्र के चरमोत्कर्ष (Climex) को प्राप्त करती है यह कहा जा चुका है। इस चरमोत्कर्ष प्राप्ति के सहायक उपादान क्या हैं ? वह है उसकी **न्याय की शक्तियों में निष्ठा, मनुष्य की सत्प्रवृत्तियों में विश्वास; पतित को उत्कर्षित करने की क्रियाशील आकांक्षा, त्रस्त को पोषित करने की लालसा।** वह दिनेश के परिवार की सेवा करके, उसके घर गगरियों से पानी भर कर के एक महत्तम आदर्श उपस्थित करती है। वह बताती है कि मनुष्य यदि किसी प्रकार किसी का बड़ा से बड़ा भी अनुपकार करदे तो भी प्रत्युपकार करने से चूकना नहीं चाहिए। प्रत्युपकार ही अनुपकार का प्रायश्चित है।

---

१. गबन पृष्ठ २७०-२८०।

जालपा के इस उत्कर्षशील व्यक्तित्व पर रमा कहता है:—तब वह प्यार करने की वस्तु थी अब वह उपासना करने की वस्तु है।[1] जोहरा उल्लसित होकर कहती है—'तुमने मुझे उस देवी से वरदान लेने के लिए भेजा जो ऊपर से फूल है पर भीतर से पत्थर, जो इतनी नाजुक होकर भी इतनी मजबूत है। यहाँतक कि जोहरा जैसी वेश्या भी जालपा से मिलकर अपनी पेशे से पैदा हुई बुराइयो को मिटा देती है और सर्वथा परिणत स्थिति को पहुँच जाती है, देवीदीन की विधवा वधू के रूप मे सेवा का जीवन बिता ले जाती है। दिनेश की माँ प्रभावित होकर कहती है "हमे तो इन्होंने जीवन दान दिया। कोई आगे पीछे न था। बच्चे दाने-दाने को तरसते थे। जब से यह यहाँ आ गयी हैं, हमे कोई कष्ट नही है। न जाने किस शुभ कर्म का वरदान मिला है।"[2]

न्यायालय मे सफाई का वकील जालपा के 'रोल' का अच्छा ज़िक्र करता है। "जालपा ही इस ड्रामा की नायिका है। उसी के सदनुराग, उसके सरलप्रेम, उसकी धर्म परायणता, उसकी पति-भक्ति, उसके स्वार्थ-त्याग उसकी सेवा-निष्ठा, किस किस गुण की प्रशसा की जाय। आज यह रग-मच पर न आती तो १५ परिवारो के चिराग गुल हो जाते। उसने पद्रह परिवारो को अभयदान दिया है। उसे मालूम था कि पुलिस का साथ देने से सासारिक भविष्य कितना उज्वल हो जाएगा, वह जीवन की कितनी ही चिताओ से मुक्त हो जाएगी। सम्भव है कि उसके पास भी मोटर कार हो जायेगी, नौकर चाकर हो जायेंगे, अच्छा-सा घर हो जायगा, बहुमूल्य आभूषण होंगे। क्या एक युवती रमणी के हृदय मे इन सुखो का कुछ भी मूल्य नही है। लेकिन वह यातना सहने के लिए तैयार हो जाती है। एक साधारण स्त्री मे जिसने उच्चकोटि की शिक्षा नही पाई क्या इतनी निष्ठा, इतना त्याग, इतना विमर्श किसी दैवी प्रेरणा के परिचायक नही है।"[3]

इसप्रकार, "जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य के तूफानो की अग्र सूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मजबूती से पाँव रखा है और भविष्य की ओर निःशक दृष्टि से देखती है। वह एक नई आग है जो झूठी सस्कृति के कागज़ी फूलो को भस्म कर देती है। वह सदियो की लाञ्छना और

---

१. गबन की पृष्ट २९८। २ वही, पृष्ट ३०३। ३, वही, पृष्ट ३२४।

अपमान को पहचानने वाली नई शूरता है जिसके आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। वह हिंदुस्तान के नए आने वाले इतिहास की भूमिका, वह इतिहास जिसमें लाखों जालपा एक साथ बढ़ेंगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेंगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र फीके लगेंगे।" [१]

रमानाथ

रमा जालपा का पति है इसलिए नायक है। रमा की चरित्रसृष्टि के द्वारा प्रेमचंद को मध्यवर्ग के खोखलेपन को सामने रखना अभिप्रेत था। इसलिए रमा में मध्यवर्ग की समस्त विशेषताएँ या दुर्बलताएँ मिलती हैं। मध्यवर्ग की जो सबसे खतरनाक प्रवृत्ति है वह यह कि 'बिना पोल खुले जितनी प्रतिष्ठा पा सको पा लो, चाहे उसको पाने में थोड़ा जोखम ही क्यों न उठाना पड़े।' मध्यवर्गीय व्यक्ति की यह एक ऐसी मूलभूत चेष्टा होती है जिससे अन्य चेष्टाएँ भी संचालित होती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति बराबर पूँजीपतियों की ओर ही खिंचता है वह उन्हें पा लेना चाहता है चाहे जैसे भी हो। सुख-सुविधा उसके लिए नैतिकता से बडी चीज होती है। उसका परंपरागत 'स्व' भी बड़ा संकुचित होता है इस 'स्व' के लिए वह अक्सर 'पर' की हस्ती की परवाह को अस्वीकार कर देता है। उसकी प्रतिष्ठा, मर्यादा, सुख-प्राप्ति का क्रम बराबर बना रहना चाहिए। और चाहे जो हो यदि प्रतिष्ठा जाने की नौबत आई तो उसकी मृत्यु है। मध्यवर्ग के यह सब गुण या दोष रमानाथ के चरित्र के अनिवार्य निष्कर्ष हैं।

मैट्रिक पास करके, बेकारी के सूने दिनों को, रमानाथ मित्रों के माँगे हुए कपडों से अपनी शौक की प्यास बुझाता हुआ, टेनिस, सैर और शतरंज खेलने में काटता रहता है। उसे क्रोध है कि पिता क्यों नहीं कचहरी की दूकान पर बैठकर अपनी नैतिकता का क्रय-विक्रय किया करते। तब शायद वह अपनी बेकार जिंदगी को अधिक तृप्त कर पाता। नैतिकता का अर्थ उसके आगे फटीचरपना था। उसके सोचने की दिशा यही थी। उसकी मनोवृत्ति का प्रत्यक्ष झुकाव रईसी की ओर था। इन्हीं दिनों शादी की बात आई। शादी थी तो रमा की। रमा और फटीचरपना—दोनों दो बातें थीं। मित्रों के सहकार से, पिता को मजबूर 'हूँ हूँ' के

१. डा० रामविलास शर्मा 'प्रेमचंद और उनका युग'।

बीच उसने तिलक के १००० रुपयों से बारात का साज किया। कार ठीक हुई, आतिशबाजी की फुलझड़ियाँ छूटने को आई, गाने-बजाने का सामान ठीक हुआ और राहियो की एक अनसोचे और तफरीहन निकले हुए 'वाह' के लिए यह बारात काफी शानदार समझी गयी। विवाह हुआ। रामेश्वरी का कहना था कि जालपा के गुलछर्रे विवाह के बाद रोजी—रोजगार मे बदल जाएँगे। यह बखूबी परखी हुई बात सच निकली, रमा को अपनी सुन्दर पत्नी की इच्छाओं की अभितृप्ति आवश्यक जान पडी और उसने परिचितो के यहाँ दफ्तरो मे नौकरी के लिए चक्कर काटना शुरू किया।

हाँ, इधर शादी के दिन अच्छे बीते। मुंशी दयानाथ ने बहू को चढ़ाव शान के साथ उधार ही बनवा लिया था। बारात को ठहराने और बारात के दान दहेज मे, उनको जो मिला था और जो अपना था, सारा रुपया खर्च हो गया। यदि रूपया होता तो आभूषणो का दाम बडे आसानी से चुक जाता। पर यह कैसे होता? प्रतिष्ठा कहाँ जाती? तो? तो रमा ने लाचार होकर वह किया जो करना चाहिए था। पर किया किस ढग से?

उसने सुहाग-रात का इस्तेमाल अपनी जीटे उडाने मे किया था। बतलाया था कि 'जमीदारी है उससे कई हजार का नफा है, बैंक मे रुपये है, उनका सूद आता है।'[1] इसके अतिरिक्त 'घर का किराया ५) था रमानाथ ने पन्द्रह बतलाए थे, लड़को की शिक्षा का खर्च मुश्किल से १०) था रमानाथ ने ४०) बताए थे।'.[2] उड़ा चुका जीटे तो फिर वह किस मुंह से जालपा से गहने मागता कि 'उधार के रुपये नहीं बन सके गहने दे दो गला छूटे, हम गहने पहिनने के लिए नही बने है।' तो उसने फिर वैसा उपाय किया जो गलत से गलत होते हुए भी मध्यवर्ग के व्यक्तियो को अक्सर करना पड़ता है। वह अर्थात 'रमानाथ टेनिस रैकेट लिए बाहर से आया। सफेद टेनिस शर्ट था, सफेद पतलून कैनवसका जूता, गोरे रग और सुन्दर मुखाकृति ने रईसों की शान पैदा कर दी। रूमाल मे बेले के गजरे लिए हुए था।'[3] घर आकर लड़को से भाग सहित मिठाई मंगवाई और ये दोनो चीजे ले, जालपा के कमरे

---

१. गबन पृ० १८। २. वही पृ० १०। ३. वही पृ० १७।

की ओर चला। आधीरात को—"गहनो की सन्दूकची आलमारी मे रखी हुई थी, रमा ने उठा लिया और थरथर कापता हुआ नीचे उतर गया। दयानाथ नीचे बरामदे मे सो रहे थे। रमा ने उन्हे धीरे से जगाया, उन्होने हकबका कर पूछा कौन? रमा ने ओठ पर अंगुली रखकर कहा मै हूँ। यह संदूकची लाया हूँ। रख लीजिए। ऐसे कुत्सित कार्य में पुत्र से साठ-गाठ करना उनकी अतरात्मा को किसी तरह स्वीकार न था। पूछा—'इसे क्यो उठा लाए'। रमा ने धृष्टता से कहा आप ही का तो हुक्म था। दयानाथ—झूठ कहते हो। रमानाथ—तो फिर क्या रख आऊँ। झेपते हुए बोले— अब क्या रख आओगे।"[1] इस प्रकार घर के भीतर के ही लोगो के विरुद्ध चक्रो का सृजन हमारे अधिकाश परिवारो के भीतर होता है जहाँ प्रतिष्ठा के बोझ को उठाने का लाचारी है। ऐसे अवसरों पर युधिष्ठिर भी झूठ बोलते है।

कहा जारहा था रमा नौकरी की खोज मे था। चुगी कचहरी की मुन्शीदारी मिली। पिना को ४०) वेतन के ३०) वताया। यहाँ जालपा का निश्चित सहयोग था। इस झूठ की वह सहभागिनी थी। वैसे ही जैसे पिता ने पुत्र की चोरी में भाग लिया।

चुगी कचहरी मे रमा भीख (घूस) के लिए भेष की रचना करता है। पूछता है "सडक के चौकीदार को एक पैसा काफी समझा जाता है लेकिन उसकी जगह सारजेंट हो तो किसी की हिम्मत न पडेगी कि उसे एक पैसा दिखावे। फटेहाल भिखारी के लिए एक चुटकी काफी समझी जाती है। लेकिन गेरुए रेशम धारण करने वाले बाबा जी को लजाते-लजाते भी एक रुपया देना हो पड़ता है।" वह अधिक सरलता पूर्वक घूस लेने के लिए, कोट पैन्ट तथा हैट पहन कर अपनी कुर्सी पर शान के साथ बैठ जाता है। अपने काम को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए तर्क पेश करत है "वे सब भी ग्राहको को उलटे छुरे से मूडते है ऐसो के साथ ऐसा व्यवहार करते हुए उसकी आत्मा को लेश मात्र भी सकोच न होता था।"[2] मौका आने पर कसमे खाता है "मै जरा साफ सुथरे कपडा पहनता हूँ जरा नई प्रथा के अनुसार चलता हूँ इसके सिवा आप ने मुझमे कौन सी बुराई देखी

---

१. गबन पृ० २६-२७। २. वही पृ० २५।

है ? मै जो खर्च करता हूँ ईमानदारी से कमा के करता हूँ। जिस दिन धोखा और फरेब की नौबत आयेगी जहर खा के मर जाऊँगा ।"[1] सफेद झूठ इसी को कहते है। इधर वह दफ्तर मे व्यवस्था करता है। व्यापारियो को क्रमक्रम से बुलाकर काम करना आरभ करता है। व्यापारी भी प्रसन्न हो जाते हैं। अवैध आमदनी अकेले नही पचती इस तथ्य को जानते हुए वह दफ्तर के और बाबुओ को भी खिलाता पिलाता है। इसप्रकार वह भेष की रचना पूरी करता है अर्थात **व्यावहारिकता** दिखाता है। यह व्यावहारिकता उसकी बुद्धि की कुशलता का परिचायक तो अवश्य है पर हृदय की श्रेष्ठता का तनिक भी परिचायक नहीं। पर ध्यान रखना चाहिए कि वह उन लाखो साप्रतिक मध्यवर्गीय व्यक्तियो मे कुछ अधिक नहीं, कुछ अतिरेक से भरा नही बल्कि लाखो घूस लेने वालो मे से एक है।

जालपा के रूप पर मुग्ध रमा जब पैसा पाने लगता है तब आभूषण-प्रेमी जालपा की पूर्ण तृप्ति और प्रसन्नता के लिए भूत-भविष्य का विचार छोड देता है। रमेश बाबू समझाते है कि यह रोग बुरा है पर वह नहीं सुनता। उसकी मुग्धता उसे विवश कर देती है। कहता है "अगर अपना वश होता तो इसी वक्त किसी बडे सर्राफ की दूकान पर ले जाकर कहता तुम्हे जो जो चीजे लेनी है ले लो।"[2] अनजान जालपा भी अब आभूषण मडित होकर बाहर भीतर के समुदायो की रानी बनने लगती है। यहाँ हम रमा के एक ऐसे मनुष्य का रूप पाते हैं जिसके प्रति हमे मोह है। वह अपने पत्नी की आत्मा तक अभी नही पहुँचा है। वही नहीं यौवन के उद्दाम क्षणो मे कम लोग वासना की लहरो मे पैठ कर तलवर्ती आत्मा तक पहुँचते हैं। पर यह अवश्य है कि रमा ने यहाँ बुद्धि से काम नही लिया। और उधर दुराव-छिपाव की प्रवृत्ति भी उसके विपत्तियो का सृजन करती रही।

उसकी विपत्ति का वास्तविक आरभ वहाँ से होता है जहाँ से वह रतन से मिलता है। रतन के कगन बनवाने के आग्रह का स्वीकार जालपा की तरह हमे भी एक पुरुषोचित उत्तर लगता है। वहाँ उसकी तलवर्ती मनुष्यता भी दिखलाई पड़ती है। यदि वह चाहता तो रतन से कगन के ६००) के स्थान पर ८००)

---

१. गबन पृ० ८। २. वही पृ० ५६।

आसानी से ले लेता पर वह ऐसा नही करता। यहाँ वह जालपा से भी प्रशस्त रहता है। जालपा के गहने चुराने के समय भी उसकी मनुष्यता सुप्त नही रहती। वह कहता है "हा ! इस सरला के साथ मैं ऐसा विश्वासघात करूँ। जिसके लिए मैं अपने प्राणों को भेंट कर सकता हूँ उसी के साथ यह कपट।"[1] **इस प्रकार हम पाते हैं कि रमा दुर्बलताओं में घिरे हुए उस कमजोर आदमी की तरह है जो परिस्थितियों की भीषणता के आगे अपनी आत्मा, अपनी मनुष्यता के आग्रह को दब जाने देता है।**

रतन के रुपये तो गंगू ने पिछले उधार में जमा कर लिए और इधर रतन का तकाजा साँप की कुन्डली की तरह कसता ही रहा था। पत्नी से छिपाव की प्रवृत्ति भी उसके रग-रग में खून की तरह बह रही थी। ऐसी स्थिति में वह बहुत कुछ परिस्थितियों के आगे मुड़ने वाले आदमी के ही रूप में उपस्थित होता है। यों उसकी **मनुष्यता** और **आत्मसुधार** के कई एक संकेत यहाँ भी मिलते हैं। वह अपनी पत्नी के प्रति दुराव-छिपाव का अतिक्रमण अततः करना ही चाहता है। पर उसका पत्नी को लिखित पत्र कुछ ऐसे समय प्रगट होता है (ठीक उसके सामने ही) कि वह उस परिस्थिति को झेल नही पाता और बाहर, बाहर से फिर स्टेशन और स्टेशन से फिर कलकत्ता को चल निकलता है। एक बात और विचारणीय है। गबन वह अपने चेत में या गबन की मशा से नही करता बल्कि वह कुछ ऐसे फँस जाता है कि उससे निकलना कठिन हो जाता है। यहाँ भी उसकी वही कमजोरी उस पर हावी हो जाती है और वह आसन्न परिस्थिति के प्रति साहसपूर्ण कदम नही उठा पाता।

कलकत्ते का देवीदीन के सरक्षण में बीतने वाला उसका जीवन एक परकटे पक्षी का जीवन है जो एक पिंजरे में अपनी उड़ने की आदत से बाज आकर यों ही पड़े-पड़े जीवन बिताता है। पर इस बीच भी उसके जीवन के कुछ मानवीय स्पर्श हमको प्रभावित करते है। वह देवीदीन के यहाँ ब्राह्मण की हैसियत से रहता था। यह हमे अत्यंत अस्वाभाविक नही लगता। जो व्यक्ति इतने झूठ पचा सका हो वह इतना भी कह सकता है। पर जिस समय वह सेठ के यहाँ

---

१. गबन पृष्ठ १२६।

ब्राह्मण बनकर कवल लेता है वहाँ उसका आतरिक अनुताप उसकी पूर्ण मनुष्यता का द्योतक है। दक्षिणा तो वह किसी भी प्रकार नही लेता। रात्रि मे "जब रमा कम्बल ओढ़कर लेटा तो उसे बड़ी ग्लानि होने लगी। रिश्वत मे हजारो रुपये मारे थे पर कभी एक क्षण के लिए भी उसे ग्लानि न आयी थी। रिश्वत, बुद्धि, कौशल और पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन, या पाखडियों का आधार है।"[1]

रमा मे एक और विशिष्टता है। **वह कृतज्ञ और नम्र है।** देवीदीन के उपकारो के प्रति कृतज्ञ होते हुए वह कहता है—'तुमने मुझे जो पाठ पढ़ाए हैं उन्हें मै उम्र भर नहीं भूल सकता। मुँह पर बड़ाई करना खुशामद है, लेकिन दादा. माता-पिता के बाद जितना प्रेम मुझे तुमसे है, उतना और किसी से नहीं। तुमने ऐसे गाढ़े समय मेरी बाँह पकडी जब मै बीच धार मे बहा जा रहा था।"[2] देवीदीन ने जितने स्नेह से इस अकिंचन बेराह यात्री को शरण दिया था उतने ही स्नेह से रमा भी उस परिवार मे, उस परिवार का होकर मिल गया। जग्गो के प्रति भी वह माता का स्नेह रखता है। वह कहता है "मेरा घर यही है, अम्मा। कोई दूसरा घर नहीं है।"[3] रमा इस परिवार के बीच चाय की दूकान पर काफी मन से काम करता है। वह एक कर्म शील का जीवन शुरू करता है। परंतु रमा की **शंक वृत्ति और स्वाभाविक डरपोकपना** उसे कैद करा देती है। इस डर की प्रवृत्ति ने ही, जिसे दूसरे शब्दो मे हम कायरता कह सकते है, उसे मुखबिर बनने[3] के लिए बाध्य किया है। वह जेल जीवन, पुलिस के हथकडों से भयंकर रूप से डरता है। यही उसका दूसरा प्रबलतम दोष सामने आता है, अपने स्वार्थ के पीछे बड़ा से बड़ा परघात करना। उसके सम्मुख १५ आदमियो के जीवन का कोई खास मूल्य नहीं रह जाता जितना कि उसकी अपनी सुख-सुविधा का। यही उसके चरित्र की सबसे बडी कालिमा है। उसको विवश करने मे प्रेमचंद ने भी पुलिस के हथकंडों का बड़ा उभरा हुआ वर्णन किया है। उसके इस आचरण के लिए काफी लोक-निंदा भी मिलती है। कोर्ट मे बैठी हुई स्त्रियाँ कहती है 'जी चाहता है इस दुष्ट को गोली मार दे। ऐसे-ऐसे स्वार्थी भी

१. गबन १६४। २. गबन पृ० १७०। ३. वही पृ० १८३।

इस अभागे देश में पडे हुए है जो नौकरी या थोड़े से धन के लोभ मे निरपराधों के गले पर छुरी फेरने मे भी नहीं हिचकते।"[1] उसके इस कुकृत्य के विषय मे जालपा का मत है 'तुम्हारे खून से रगे हाथो के स्पर्श से मेरी देह मे छाले पड़ जाएँगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मै मनुष्य नही समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नही, तुम कायर हो। कायर।"[2] उसकी **स्वार्थपरता** वहाँ सचमुच इतनी निंदनीय हो उठी है कि जग्गो जो रमा को अपने बेटे की तरह मानती थी कहती है "उस कोख को आग लगे जिसने तुम्हारे जैसे कपूत को जन्म दिया। यह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आए होगे। समझते होगे वह तुम्हारे रुपयो की थैली देखकर लट्टू हो जाएगी। इतने दिन उसके साथ रहकर भी तुम्हारी लोभी आँखे उसे न पहचान सकी। तुम जैसे राकस उस देवी के जोग न थे अगर तुम मेरे लड़के होते तो मै तुमको जहर दे देती।" पर क्या इस दोष का वही संपूर्णतया भागी है? निश्चित ही नहीं। वह एक साधारण आदमी है जिसके पास जालपा की प्रखर नैतिक शक्तियाँ नही है। अगर ऐसे व्यक्ति को पुलिस के हथकडो मे डाल दिया जाय उसे हर प्रकार की यातना देने की धमकी दी जाय, हर समय विलास के समुद्र मे आपाद मस्तक डुबोये रखा जाय, साँस लेने की फुरसत न दी जाय, मदिरा से नहला दिया जाय, लोभ का एक महान आधार सामने खडा कर दिया जाय; तो उसका विचलित हो जाना कठिन नहीं है। रमा इतने प्रकार के भूल भुलैये मे डाला गया था कि उसे आत्म स्थिति के विवेचन, सही मार्ग के निर्णय के लिए समय ही नही मिलता था। एक बार जब जालपा उसे पूर्ण प्रबोध देती है तब भी वह अपना बयान इसलिए नहीं बदल पाता कि उसे धमकी दी गयी कि उसके पत्नी की भी बेईज्जती की जायेगी। उपन्यासकार स्पष्ट कहता है कि **सभी दुर्बल मनुष्यों की भाँति रमा भी अपने पतन से लज्जित था।** फिर भी वह जब एकात मे बैठता तो उसे अपनी दशा पर दुख होता—क्यो उसकी विलास शक्ति इतनी प्रबल है" वह इतना विवेक शून्य नही था कि अधोगति मे भी प्रसन्न रहता। लेकिन ज्यो ही और लोग आ जाते, शराब की बोतल आ

---

१ **गबन** पृ० २७१। २, वही पृ० २७५।

जाती, जोहरा सामने आकर बैठ जाती' उसका सारा विवेक और धर्मज्ञान नष्ट हो जाता।" १

इस प्रकार हम देखते है कि रमा हमारे क्रोध और घृणा का उतना पात्र नहीं है जितना समवेदना और सहानुभूति का। **वह अंततः प्रबुद्ध होता है** और अपने जीवन के प्रत्येक कुसस्कार को जैसे झटक देता है। उसके बधन की जकडी शृंखला जैसे जगह-जगह से टूट जाती है। वह अपने कृत्यो के फल नौकरी के परवाने—डी०ओ० को फाड कर अपने लोभ की जबर्दस्त कडी को तोड देता है। फिर पुलिस उसे जालपा की 'मिजाज पुर्सी' की और उसको फिर फँसाने की धमकी देती है। रमा विचलित हो जाता है। पर यह अधिक दिन तक नही चलता। उसका जन्मजात सस्कार भय भी धीरे-धीरे भागता है और वह बहादुर की तरह सतरी को लॉघता हुआ जालपा को अपना नया निश्चय सुनाने बढ़ जाता है:—'मैने अब सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का निश्चय कर लिया है। इसी इरादे से इस वक्त चला हूँ। मेरी वजह से इनको (जालपा को) इतने कष्ट हुए इसका मुझे खेद है। मेरी अक्ल पर परदा पडा हुआ था, स्वार्थ ने मुझे अंधा कर रखा था। प्राणो के मोह से कष्टो के आगे बुद्धि डरती थी। कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके अनुष्ठानो ने उस ग्रह को शात कर दिया। शायद दो चार साल के लिए सरकार की मेहमानी खानी पडे। इसका भय नहीं। जीता रहा तो फिर भेंट होगी। नही, मेरी बुराइयो को माफ करना और मुझे भूल जाना। तुम भी देवी दादा और दादी मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगो ने मेरे ऊपर जो दया की है। वह मरते दम तक न भूलूँगा। अगर जीता लौटा, तो शायद तुम लोगों की कुछ सेवा करूँ। मेरी तो जिन्दगी ही सत्यानाश हो गयी। न दीन का हुआ न दुनिया का। यह भी कह देना कि उनके गहने मैने ही चुराए थे। सराफ को देने के लिए रुपये न थे। गहने लौटाना जरूरी था। इसीलिए यह कुकर्म करना पडा उसी का फल आजतक भोग रहा हूँ और शायद जब तक प्राण न निकल जाएँगे भोगता रहूँगा। अगर उसी वक्त सफाई से सारी कथा कह दी होती तो चाहे उस वक्त इन्हे बुरा लगता, लेकिन यह विपत्ति सिर पर

१, वही पृ० २९८।

न आती। तुम्हे भी मैने धोखा दिया था दादा। मै ब्राह्मण नही हूँ, कायस्थ हूँ। तुम जैसे देवता से मैने कपट किया। न जाने इसका क्या दड मिलेगा? सब कुछ क्षमा करना। बस यही कहने आया था।"[1]

इसकी जालपा के ऊपर जो प्रतिक्रिया हुई वह देखने योग्य है। "विलासिनी रूपमे वह केवल प्रेम के आवरण के दर्शन कर सकी। आज त्यागिनी बनकर उसने उसका असली रूप देखा। कितना मनोहर, कितना विशुद्ध, कितना विशाल, कितना तेजोमय।"[2]

अत मे वह कच्चा-चिट्ठा खोल भी देता है। उसकी दोनो कडियॉ टूट जाती है वह बधन मुक्त हो जाता है। जालपा कोर्ट मे बयान देती है "मेरे पति निर्दोष हैं। उनके भाग्य मे मेरी विलास-शक्ति का प्रायश्चित करना लिखा था वह उन्होने किया। वह बाजार से मु ह छिपा कर भागे। मुझे प्रसन्न करने के लिए, मुझे सुखी करने के लिए उन्होने अपने ऊपर बडा से बडा भार लेने मे भी सकोच न किया। अगर अपराधिनी हूँ तो मै जिसके कारण उन्हे इतने कष्ट झेलने पडे।"[3]

वकील भी कहता है "उसकी **सरलता और सवेदना ने** एक वेश्या तक को मुग्ध कर लिया।"[4] अतत जज भी प्रभावित होकर रमानाथ को छोड देता है।

अब रमानाथ **ईमानदार संयमित कर्ममूलक जीवन का** आरभ करता है। जोहरा से भी उसका प्रेम है और वह उसकी ओर से भी उदासीन नही है। जब जोहरा बाढ़ मे बहती हुई स्त्री को बचाने के लिए नदी मे कूद पडती है और डूब जाती है तब वह कहता है "ईश्वर करे लौट आवे। मुझे तो अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है।" जालपा ने बेहयाई से कहा—"इसमे लज्जा की कौन बात है? मरी लाश के लिए जान को जोखम मे डालने से फायदा! जीती होती तो मैं खुद तुमसे कहती, जाकर निकाल लाओ।" रमा ने आत्मधिक्कार के भाव से कहा —"यहाँ से कौन जान सकता है, जान है या नही? सचमुच, बाल बच्चो वाला आदमी नामर्द हो जाता है। मै खडा रहा जोहरा चली गई।"[5] यहाँ हमे रमा का सशक्त, उत्तरदायी और सवेदनशील मनुष्य नजर आता है।

---

१. गबन पृ० ३११-१२। २. वही पृ० ३१२। ३. वही पृ० ३१६। ४. वही पृ० ३२४। ५. वही पृ० ३३१।

यह मध्यवर्गीय मनुष्य जो कमजोर था, जिसकी आस्था कमजोर थी, परिस्थितियों की ठोकरों से इतना मजबूत बन सका कि वह अंत तक आते-आते जालपा से भी प्रशस्त हो गया।

देवीदीन और जग्गो

देवीदीन निम्नवर्ग का प्रतीक है। प्रेमचद ने देवीदीन के द्वारा एक ऐसे मिहनतकश का चरित्र अकित किया है जिसे विश्वास है कि आजादी उसके द्वारा ही प्राप्त होगी। एक मिहनतकश की खुशी, उसके प्रेममय जीवन की झाकी प्रेमचद ने देवीदीन के रूप मे दी है।

देवीदीन का पहला दर्शन हमे वहॉ होता है जहॉ वह गाडी के एक अपरिचित नवयुवक को—जिसकी बेइज्जती पर गाडी के समस्त यात्री आनद ले रहे थे—अपने पुत्र की तरह अपना लेता है। वहॉ दिखलाई पडता है कि **उसका भीतर-बाहर एक है।** गाडी की सफर मे ही वह रमा को एकदम अपने जीवन की सारी घटनाऍ कह सुनाता है।" हमारे मन मे उसके प्रति श्रद्धा के अकुर यहीं से उग आते है। इतना विशाल हृदय, इतना परोपकारी, इतना निष्कपट व्यक्ति मिलना इस दुनियॉ मे कठिन है।

परोपकार ही नहीं उसके जैसे मन को सवेदनाओ के पारखी, परिस्थितियो के जानकार भी इस दुनियॉ मे कम ही मिलते है। वह रमा की सारी परिस्थिति, अपनी उसी शक्ति के कारण क्रमशः बूझ लेता है।

पत्नी के परिश्रम-शक्ति से वह निश्चिन्त है। बुढौती मे भी उसे पढ़ने का शौक है। "थोडीसी हिदी जानता था। बैठा बैठा रामायण, तोतामैना रामलीला या माता मरियम की कहानी पढ़ा करता था। जब से रमा आ गया है बुड्ढे को अग्रेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सवेरे ही प्राइमर लेकर बैठ जाता है और ९-१० बजे तक अक्षर पढता रहता है।"[1] उसे भी गहने के रोग का कटु अनुभव है। क्यो कि वह भी इस रोग का भुगत चुका है। अपनी जवानी मे स्त्री पर अधिक आसक्त होने के कारण, उसको जेवर बनवाने के लिए, वह जाली दस्तखत बनाकर मनीआर्डर का रूपया गबन करने के अपराध मे तीन वर्ष की सजा पा चुका

---

१ गबन, पृ० १५९।

था। कदाचित इसलिए वह रमानाथ की परिस्थिति को सरलता से आंक लेता है। ऐसी अनेकों वारदातें उसकी देखी हुई है।

देवीदीन **स्वदेश-प्रेम से ओत-प्रोत** है। उसका स्वदेश-प्रेम बडी ही ठोस आधार-शिला पर टिका हुआ है। वह केवल आवेशयुक्त या भावुकतामय नही है। वह आजादी का अर्थ निकालता है—आर्थिक आजादी तथा किसानो और मजदूरो का राज। ऐसी आर्थिक आजादी कैसे आएगी इसकी भी रूपरेखा उसके सामने स्पष्ट है। उसे पूर्णतः ज्ञात है कि जब तक हम स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार करके विदेशी का आयात बद न करेगे तब तक राष्ट्रीय धन देश से बाहर जाता ही रहेगा और देश दरिद्र होता ही रहेगा। वह डंके की चोट पर कहता है—"जिस देश मे (हम) रहते है जिसका अन्न जल खाते है उसके लिए इतना भी न करे तो जीने को धिक्कार है।"[1] उसका कथन है कि "इधर बीस साल से तो (विदेशी) कपडे नही लिए, उधर की बात नही कहता। कुछ बेसी दाम लग जाता है। पर रुपया तो देश ही मे रह जाता है।"[2] वह रमा के अनुसार नियम का इतना पक्का है कि 'विदेशी सलाई' तक घर मे नही लाता। इस तरह लगता है कि वह स्वतत्रता को पहले आर्थिक प्रश्न के रूप मे लेता है तब राजनीतिक प्रश्न के रूप मे। वह स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात केवल यही इच्छा रखता है "मेरा पहला सवाल यह होगा कि विलायती चीजो पर दुगुना महसूल लगाया जाय और मोटरो पर चौगुना"।[3] उसके और भी प्रश्न है—" तो सुराज मिलने पर दस-दस पॉच-पॉच हजार के अफसर नही रहेंगे ? वकीलो की लूट नही रहेगी ? पुलिस की लूट बंद हो जाएगी?"[4] इस प्रकार वह स्वतत्रता का कितना स्पष्ट लोकतान्त्रिक और आर्थिक दृष्टि से शोषणविहीन देश की कल्पना करता है। देवीदीन की इस समझ (understanding) की हमे प्रशसा करनी ही होगी।

इतना ही नही इस प्रकार की आजादी किस प्रकार प्राप्त होगी-इस संबध मे भी उसके निश्चित और सुलझे हुए विचार है। वह बखूबी समझता है कि "इन बडे-बड़े आदमियो के किए कुछ न होगा। इन्हे बस रोना आता है, छोकरियो की भॉति बिसूरने के सिवा इनसे कुछ नही हो सकता। बडे-बड़े देश भगतो को बिना

---

१ गबन पृ० १७३। २ वही, पृष्ठ १७२। ३ वही पृ० १७५। ४ वही पृ०१७५

विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देशी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिए, घर का और सब समान विलायती है सब के सब भोग विलास में अधे हो रहे है, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूट कर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इस लिए तुम्हारा इस देश में जन्म हुआ है। हाँ × × × × विलायती मुरब्बे और अँचार चखो, विलायती बरतनो में खाओ, विलायती दवाइयाँ पीओ पर देश के नाम से रोए जाव।"[1] धनपतियो, नेताओ की देश-भक्ति की इस विडंबना को देवीदीन ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से समझ लिया है। वह इस प्रकार के नेताओं की आजादी का चित्र भी साफ देखता है। उसके आँखो में भविष्यत स्पष्ट है। वह कहता है एक बार यहाँ बडा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर यहाँ खड़े होकर खूब उछले कूदे। जब वह नीचे आए तो मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओं, जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखो के सामने आता है? तुम भी बडी-बड़ी तलबें लोगे, तुम भी अंग्रेजो की तरह बगले में रहोगे पहाड़ो की हवा खाओगे, अंग्रेजों ठाट बनाए घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंदों की जिंदगी भले ही आराम से गुजरे पर देश का तो कोई भला न होगा। बस बगले झाँकने लगे। तुम दिन में पाँच बेर खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल, गरीब क्रिसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूसकर सरकार तुम्हे हुदे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जाएगा तब तो तुम गरीबो को पीसकर पी जाओगे।"[2] इस प्रकार वह सकेत करता है कि यदि देश-सेवा करनी है तो उच्च वर्ग को निश्चित रूप से निम्नवर्ग का शोषण छोड़ना होगा और उनकी आर्थिक सेवा करनी होगी।

आजादी कैसे प्राप्त होगी—वह इस विषय में भी स्पष्ट है। कहता है 'मुदा

---

१ गबन पृ० १७४। २ वही पृ० १७५।

इस रोने से कुछ न होगा। रोने से माँ भी दूध पिलाती है, सेर अपना सिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने जिसमें दया और धरम हो। तुम धमकाकर ही क्या कर लोगे। जिस धमकी में कुछ दम नही है, उस धमकी की परवाह कौन करता है।"[1] इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि स्वतन्त्रता एक मात्र बलिदान और त्याग से प्राप्त होगी। वह कहता है "दो जवान बेटे इसी स्वदेशी को भेंट कर चुका हूँ भैया। भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता, तो इस समय उन्हे भी भेज देता। जब अर्थी चली तो एक लाख आदमी साथ थे। बेटों को गंगा में सौंपकर मैं सीधे बजाजे पहुँचा और उसी जगह खडा हुआ, जहाँ दोनों वीरों की लहास गिरी थी। गाहक के नाम चिड़िये का पूत तक न दिखाई दिया। आठदिन वहाँ से हिला तक नही बस भोर के समय आता था और नहा धोकर कुछ जल पान करके चला जाता था। जब दूकानदारों ने कसम खायी कि विलायती कपड़े अब न मँगायेंगे तब पहरे उठा लिए।"[2]

स्वतन्त्रता का अर्थ, उसकी प्राप्ति के साधनों, प्राप्ति के मार्ग में रुकावटों के विषय में इतनी सुस्पष्ट कल्पना देवीदीन के मन में होती है कि देखकर आश्चर्य होता है। इसी लिए देवीदीन को एक आदर्श पात्र (Ideal character) कहा जाता है।

परोपकार, जिज्ञासु, स्वदेश-भक्त के अतिरिक्त वह, स्वच्छद तबियत (Romantic) का आदमी भी है। जिंदगी में एक प्रकार की रौ लाने के लिए वह नशाओं का उपयोग करता है। हँसी और मजाक में वह मुक्तमन है। उसकी हँसी इस सीमा तक बढ़ गयी है कि वह काल पर भी हँस सकता है। "बुढ़िया अभी जीती है। देखें, हम दोनों में पहले कौन चलता है। वह कहती है, पहले मैं जाऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं जाऊँगा। देखो किसकी टेक रहती है।"[3]

इस निश्चिन्त स्वच्छदता के अतिरिक्त वह धार्मिक प्रवृत्ति का भी आदमी है। रमा से जिस समय वह मिला उस समय यह बद्री नाथ से यात्रा करके लौट रहा था। वार्द्धक्य इतना था कि वह घुल गया था, माँस तो क्या हड्डियाँ तक गल गयी थीं। लेकिन उतनी पहाड़ियों को खुशी खुशी चढकर आ रहा था।

---

१. गबन पृ० १७४। २. वही पृ० १७३। ३. वही पृ० १३६।

व्याहारिकता तो उसकी रग रग मे भरी है। पुलिस की नस नस पहचानता है जानता है कि रमा सरकारी रकम गबन करके भाग आया है फिर भी शरणागत की रक्षा के भाव से कह उठता है "किसी परदेशी को अपने घर मे ठहराना पाप नहीं है। हमे क्या मालूम किसके पीछे पुलिस है यह पुलिस का काम है पुलिस जाने। मै पुलिस का मुखबिर नही, गोइन्दा नही।"[1]

और जब रमा को पुलिस पकड ले जाती है तो एक अनुभवी वैद्य की तरह अनुभूत नुस्खे का प्रयोग करता है। वह एक परदेशी के लिए ५० गिन्नियो का प्रबध करता है। उसकी परोपकार-वृत्ति का अग्रेजी राज के दारोगा पर भी इतना असर पड़ता है कि वह कह उठता-"है तो खूसट मगर है बड़ा नेक।"[2]

देवीदीन जब सुनता है कि भैया मुखबिर हो गये तो उसकी युवा पुत्रो को बलिदान कर देने वाली आत्मा चीख उठती है। दर्द घनीभूत हो उठता है। वह दारोगा से कहता है 'इससे तो यही अच्छा है कि आप इनका चलान कर दें।"? और अंत में जब रमा नहीं मानता तब जग्गो से वह उदासीन भाव से कहता है "होगा भाई जान भी तो प्यारी होती है।"

इसके पश्चात उसके इन्हीं गुणो का प्रकाशन तब होता है जब जालपा आकर देवीदीन के यहाँ टिकती है। जालपा के प्रयत्नो मे देवीदीन मन-वचन-कर्म सबसे सहायक है।

इस प्रकार देवीदीन के रूप मे प्रेमचद ने भारत की उस वास्तविकता को वाणी दी है जो भारत की गतिशील जनता है, जो फेरबो को पहचानती है, जो अधिकारो के लिए लड़ सकती है, जो अपने विशाल हृदय मे हर भूले हुए और त्रस्त व्यक्ति को स्थान देती है।

जग्गो

जग्गो निम्नवर्ग की वह मिहनतकश स्त्री है जो अपनी अज्ञानता मे भी विशाल है, अपनी कंजूसी मे भी उदार है. जो अपने मुहफटपने मे भी पति से गहराई के साथ प्यार करती है।

जग्गो के स्वभाव की पहली और सबसे बड़ी विशेषता उसका घोर परिश्रम है।

---

१. गबन पृ० १६८। २. वही पृ० २२१।

कहती है "घडी पहर रात से चक्की मे जुत जाती हूँ और दस बजे रात तक दूकान मे बैठी सती होती रहती हूँ। खाते पीते बारह बजते है तब कहीं चार पैसे दिखाई देते है।"[1]

उसकी दूसरी विशेषता है उसको उदारता और आतरिक विशालता। रमा के शब्दो मे "कितना पावन धैर्य है। कितनी विशाल वत्सलता, जिसने लकडी के इन दो टुकडो को भी जीवन प्रदान कर दिया है। रमा ने जग्गो को माया और लोभ मे डूबी हुई, पैसे पर जान देने वाली, कोमल भावो से सर्वथा विहीन समझ रखा था। आज उसे विदित हुआ कि उसका हृदय कितना स्नेहमय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है।"[2] उसकी उदारता और विशालता का यह सबसे बडा प्रमाण है कि वह एक परदेशी युवक को स्नेह सबध बॅधने पर पुत्रवत ही प्यार करने लगती है। उसकी सुखसुविधा का पूरा ध्यान रखती है।

उसकी तीसरी विशेषता है पति के साथ गहरा प्रेम। कम औरते ऐसी होगी जो पति को बैठाकर खिलावे और मनमाना खर्च करने को पैसे दे। वस्तुतः इस के पीछे जग्गो का बुड्ढे के प्रति गहरा प्यार है। वह कभी कभी उसे झिडकियाँ देती है तो इसका अर्थ यह नही कि वह प्यार नही करती बल्कि वह प्यार करने का ही एक अग है। मिहनतकश का प्यार कर्म मे प्रदर्शित होता है शब्दो मे नही। उसके क्रियाशील प्यार का एक मृदु रूप देखिए:—"जग्गो ने लोटे मे पानी लाकर रख दिया और बोली—चिलम रख दूँ? बुढिया को सदय नेत्रो से देखकर (देवीदीन) बोला—नही, रहने दो, चिलम न पिऊँगा।

'तो मुँह हाथ धो लो, गर्द पडी हुई है।'

'धो लूँगा जल्दी क्या है।'

'तो कुछ जालपान कर लो। दोपहर को भी तो कुछ नहीं खाया था। मिठाई लाऊँ? लाओ पखी मुझे दे दो।'

देवीदीन ने पखियाँ दे दी। बुढ़िया झलने लगी।"[3]

उसमे कुछ जातिगत विशेषताएँ भी है जैसे जातिगौरव का अभिमान। कहती है "बेटा! खटिक कोई नीच जाति नही है। हम लोग ब्राह्मण के हाथ का भी नहीं

१. गबन पृ० १८०। २. वही पृ० १८१। ३. वही पृ० २३६।

खाते। कहार तक का पानी नहीं पीते। मास मछरी हाथ से नही छूते। कोई कोई शराब पीते है मुदा लुक छिपकर।"[1]

उसकी पॉचवी विशेषता है अन्याय के प्रति न झुकने वाली प्रवृत्ति। रमा जब जग्गो को गहनो की प्रेमी समझकर सोने की चार चूडियॉ, पुलिस की ओर से लेकर पहनाने आता है और उसके पैरो पर रख देता है तब का दृश्य देखे —"जग्गो ने चूडियॉ उठाकर जमीन पर पटक दी और ऑखे निकाल कर बोली—जहॉ इतना पाप समा सकता है वहॉ चार चूडियो की जगह नही है। भगवान की दया से बहुत चूडियॉ पहन चुकी और अब भी सेर दो सेर सोना पडा होगा, लेकिन जो खाया पहना अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नही दबाया। पाप भी सिर पर नहीं लादी, नीयत नही बिगाडी। उस कोख को आग लगे जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। अगर तुम मेरे लडके होते तो तुम्हे जहर दे देती।"[2]

इस प्रकार जग्गो मे प्रेमचद ने उस मिहनती नारी का चित्र अंकित किया है जो इमानदार है, विशाल है, अभिमानी है।

रतन और इन्दुभूषण

इन्दुभूषण हाईकोर्ट के एडवोकेट, अत्यन्त सम्पन्न, विदेशो से वापस, वृद्ध-विवाह के समर्थक और अत्यन्त सीधे व्यक्ति है। उनका जितना जीवन उपन्यास मे आया है वह अत्यन्त सज्जनता से भरा, प्राणवत्ता से हीन और वृद्धो का सा नीरस है। वह रतन को हृदय से चाहते है और उसको पूर्ण स्वतत्रता दे दी है। उसकी इच्छाओ को पूर्त करने का सर्वदा प्रयत्न करते रहते है। रतन के जीवन को अपने साथ गूँथने के लिए वे कभी कभी पश्चाताप भी करते है। मृत्यु के समय, भूत-प्रेत बाधा मे उनका अविश्वास प्रकट होता है।

रतन उनकी पत्नी है जो उपन्यास की मुख्य कथा अर्थात रमा और जालपा के जीवन की कथा को आगे बढाने मे काफी सहयोग देती है। रतन और उनकी अवस्था मे इतना अन्तर है जितना पिता और पुत्र की उम्र मे। प्रेमचद ने रतन के रूप मे उस नारी का अंकन किया है जो गरीबी के कारण वृद्धो के पल्ले, उनसे कुछ ले-दे कर बाँध दी जाती है। प्रेमचद ने रतन मे इस प्रकार के विवाह

---

१. गबन पृ० १८४। २. वही पृष्ठ २७६।

के प्रति असंतोष नहीं दिखाया है। कदाचित यहाँ पर उन्हें भारतीय परंपराओं ने प्रभावित किया हो। जो भी हो, रतन पति को उसी प्रकार प्यार करती है जिस प्रकार किया जा सकता है। वृद्ध पति भी उसकी प्रसन्नता के लिए अपना तन-मन-धन सब कुछ निछावर करने के लिए तत्पर रहते है। रतन उन हिंदू-नारियों में है जो अपने पति को देवतुल्य मानती है। सब प्रकार से सुखी जालपा जब रतन से कहती है कि बहन तुम्हारा मन तो उनसे न मिलता होगा तब वह उत्तर देती है—मुझे तो कभी ख्याल ही नहीं होता बहन कि मैं युवती हूं और वे बूढे है। मेरे हृदय में जितना अनुराग है वह सब मैंने उनको अर्पित कर दिया। "अनुराग यौवन या रूप या धन से उत्पन्न नहीं होता अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है।"[1]

पति के लिए निश्चित रूप से रतन अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने के लिए तत्पर रहती है। वह उनको बीमार देखकर कहती है। अगर कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दे कि इस बीमारी की जड़ टूट जाए तो मैं खुशी से दे दूंगी।"[2]

रतन को बच्चों से विशेष प्रेम है। क्योंकि हर स्त्री पहले माता होती है। रतन में यह वृत्ति इसलिए विस्तृत हो गयी है कि उसके स्वयं संतान नहीं है। वह दूर-दूर के बच्चों को झूले झुलाती है। जालपा के दोनों देवरों—गोपी और विश्वम्भर से भी उसे अधिक स्नेह हो गया है। वह उन दोनों को भी मोटर पर घुमाने ले जाती है। इस प्रकार रतन अपने मातृत्व का कोष उन्मुक्त रूप से समाज के बच्चों में लुटाती है।

आभूषण-प्रेम भी उसमें प्रचुर मात्रा में है। क्यों न हो? उसके पास तो पैसे की कमी भी नहीं है। इसलिए यह आभूषण-प्रेम उसके सम्मुख समस्या के रूप में नहीं आया है जैसे रमा के सामने।

रतन काफी व्यावहारिक है। रमा के ऊपर उसे ठीक संदेह हुआ कि रमा ने उसके कंगन के रुपए उड़ा दिये। इसके पश्चात वह जो जो झिड़कियाँ देती है वह हमें बहुत नहीं खलतीं।

---

१. गबन पृ० १५१। २. वही पृ० १८६।

पति-प्रेम के पश्चात् रतन की सबसे बड़ी विशेषता है—मैत्री निर्वाह करने की कला में उसकी पूर्णता। वह मित्रता का अर्थ निकालती है आजन्म-स्नेह बंधन। उसकी मित्रता में दो का दुख-सुख एक हो जाता है। जालपा की ओर से रतन के प्रति मित्रता के निर्वाह में कुछ कमी हो सकती है पर रतन की ओर से कोई कमी नहीं है। एक बार वह जालपा से कहती है "मैत्री परिस्थितियों का विचार नहीं करती अगर यह विचार बना रहे तो समझ लो मैत्री है ही नहीं। मैंने मन में समझा था तुम्हारे साथ जीवन के शेष दिन काट दूंगी। लेकिन तुम अभी से चेतावनी दिए देती हो।"[1]

रतन की पति भक्ति की दीपशिखा उस समय अपनी पूर्ण ज्योति के साथ जल उठती है जब पति मृत्युशैया पर पड़ता है। पति भी पत्नी के प्रति उतना स्नेह प्रदर्शित करते हैं जिस की कल्पना नहीं की जा सकती। वे दवाएं इसलिए पी लेते हैं कि रतन को दुख न हो। वे अपनी मृत्यु की ओर निरन्तर बढ़ती हुई दशा को इसलिए छिपाते हैं कि रतन को दुख न हो। वे वसीयत लिख जाना चाहते हैं। पर रतन इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती। उसे पति-मृत्यु की कल्पना भी भयावह लगती है।

धैर्य भी उसके भीतर पर्याप्त मात्रा में है। जब आखिरी बार पति की उलटी सांस चलने लगती है "तब रतन उठकर स्टोव जलाने लगी कि शायद सेंक से कुछ फायदा हो। उसकी सारी घबराहट, सारी दुर्बलता, सारा शोक मानो लुप्त हो गया। उसकी जगह एक प्रबल आत्मविश्वास का भाव उदय हुआ। कठोर कर्तव्य ने उसके सारे अस्तित्व को सचेत कर दिया।"[2] पति को उसने आराम न पहुँचाया इसका उसे घोर पश्चाताप है। वह कहती है—"इस आठ साल के जीवन में मैंने पति को क्या आराम पहुंचाया। वह १२ बजे रात तक कानूनी पुस्तकें देखते रहते थे, पर मैं सोती रहती थी। वह सध्या समय मुवक्किलों से मामले की बातें करते रहते थे, मैं पार्क और सिनेमा की सैर करती थी, बाजारों में सटर-गश्ती करती थी। मैंने इन्हें धनोपार्जन के एक यंत्र के अतिरिक्त और क्या समझा ? वह कितना चाहते थे कि मैं उनके साथ बैठूं और बातें करूं। पर मैं

---

१. गबन; पृ० १८८। २. वही पृ० १९७।

भागती फिरती थी ? मनोरंजन के सिवा मुझे और कुछ सूझता ही न था। विलास और मनोरंजन यही जीवन के दो लक्ष्य थे।"[1] पर वह विवाह के लिए अपने पति को किंचिन्मात्र भी दोष नहीं देती क्योंकि उसे—जवान पति सुख देते ही—इस आस्था में विश्वास ही नहीं है। वह वकील "साहब को सागर की भाँति गंभीर" कहती है। मनोवैज्ञानिक कह सकता है कि यह अपने को भुलाने की प्रवृत्ति है पर असल में यह एक हिंदू नारी का आदर्श है जो कि उसे परम्परा से प्राप्त है। भारतीय पातिव्रत के इस आदर्श को रतन मनसे निबाह सकी इसके लिए वह प्रशंसा की पात्र है।

पति की मृत्यु के पश्चात वह वैधव्य का यथोचित निर्वाह करती है। उसके मन में जितना भी कल्मष शेष था वह सब धुल जाता है।

रतन देहाती वातावरण में पली हुई लड़की थी। इसलिए उसके स्वभाव में वह ग्रामीण उन्मुक्तता तथा उसके शरीर में परिश्रम का वह ग्रामीण साहस सुरक्षित था। एक बार जालपा ने देखा "+ + रतन गेहूँ पीसने में मग्न थी। विनोद के स्वाभाविक आनंद से उसका चेहरा खिला हुआ था। इतनी ही देर में उसके माथे पर पसीने की बूँदें आ गयी थीं। उसके बलिष्ठ हाथों जाँत लट्टू की तरह नाच रहा था।"[2]

रतन आत्मरक्षा के सिद्धांत को भी स्वीकार करती है और इसके लिए एक छुरी भी अपने पास रखती है। जालपा को कलकत्ते जाते समय, आर्थिक सहायता के साथ वह यह हिंसक छुरी भी भेंट करती है।

रतन के चरित्र का वह स्थल बड़ा मर्मस्पर्शी है जहाँ एक साथ ही वह अपना आक्रोश और संतोष दोनों व्यक्त करती है। मणिभूषण धीरे-धीरे सारी संपत्ति पर अधिकार कर चुका है। तब रतन अपना आक्रोश व्यक्त करती है। उसने निश्चय किया "जो कुछ मेरा नहीं है उसको लेने के लिए मैं झूठ का आश्रय कभी नहीं लूँगी, किसी तरह नहीं। मगर ऐसा कानून बनाया किसने ? क्या स्त्री इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है ? क्यों ?"[3] वह फिर कहती है न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है

---

१. गबन पृ० १९८। २. वही पृ० २११। ३. वही, पृ० २६७।

तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूँगी क्या तेरे घर माँ-बहने न थीं ? तुझे उनका अपमान करते लज्जा नही आई। अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश मे उसकी आवाज पहुँच सकती तो मै सब स्त्रियो से कहती—बहनो ! किसी सम्मिलित परिवार मे विवाह मत करना अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लो चैन की नींद मत सोना। + + परिवार तुम्हारे लिए फूलो की सेज नही, काँटो की शैय्या है, तुम्हारा पार लगाने वाली नैया नही, तुम्हे निगल जाने वाला जतु है।"[1]

जोहरा

जोहरा के चरित्र की भूमिका हमे 'सेवासदन' की सुमन मे प्राप्त होगी। प्रेमचद का यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक अन्वेषण था कि अधिकाश वेश्याएँ विषम परिस्थितियों के कारण मजबूर होकर वेश्या बनती है। इसके साथ ही उनका विश्वास था कि इन अभागिनी ललनाओ को यदि कोई सही हृदय से प्यार करने वाला मिले तो वह उस मर्यादित जीवन के लिए निश्चित रूप से प्रस्तुत हो जाएँगी।

कहा जाता है कि वेश्याएँ युवको को पथभ्रष्ट करती है। विडबनाओ से भरा यह समाज यह नहीं समझ पाता कि यह वेश्याएँ भी दिल रखती हैं और नारी की मर्यादा प्राप्त करने के लिए तडपती रहती है। जोहरा भी एक ऐसी ही नारी है। वह रमा को पथभ्रष्ट करने के लिए पुलिस का एक हथकंडा बनकर आयी थी। पर जोहरा भी आदमी पहचानती थी। प्रेमचंद कहते है "जोहरा वेश्या थी उसे अच्छे बुरे सभी तरह के आदमियो से साबिका पड चुका था। उसकी आँखो मे आदमियों की परख थी।'[2]

सीधा सादा रमा इस भयंकर जाल मे फँसा हुआ था। बिलकुल निरीह, हत-बुद्धि, सहारा के लिए छटपटाने वाला। जितना भी छल उसके आगे पीछे था सब कुछ या तो परिस्थितिवश था या आरोपित। रमा की इस विवश परिस्थिति को जोहरा ने अंदाज लिया। कमजोर और अकिंचन रमा को एक सहारा मिला वह जोहरा के आगे बिछ गया। मर्यादित जीवन और शुद्ध प्रेम के लिए तडपने वाली

---

१. गबन, पृ० २६६-७०। २. वही, पृ० २८५।

जोहरा भी रमा मे अनुरक्त हो गयी । अनुराग के पश्चात एक दूसरे के लिए बलिदान का प्रकरण प्रारभ होता है । जोहरा ने जालपा का पता लगाने और उसे प्रयाग भेज देने का व्रत लिया । परतु हृदय की सहज उपस्थिति के कारण उसका मन साधनामूर्ति, जालपा को देखकर पिघल गया । सगति का प्रभाव उसे प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा इन्सान बनने के लिए प्रेरित करता है । चोटी के विलासोपकरणो से लदी रहने वाली वेश्या बरतन माँजती है ।

इन्सान और स्पृहणीय बनने की यह भूख उसके जीवन का एक दूसरा उज्वलतर पक्ष है । मर्यादित जीवन पाने की उसकी भूख यदि प्रथम सोपान है तो परोपकार की ओर उन्मुख होने की यह सगति अतिम । वह जालपा की इस महत्तर विभूति को इन शब्दो मे स्वीकार करती है—"वह चितवन आह कितनी पाकीजा, और थी कितनी पाक करने वाली । उनकी इस बेगरज खिदमत के सामने मुझे अपनी जिदगी कितनी जलील, कितनी काबिल नफरत मालूम हो रही थी, उन बरतनो के धोने मे जो आनंद मिला, बयान नही कर सकती ।"[1]

सेवा के इस मंत्र का अनुसरण जोहरा ने इतनी तत्परता से किया । कि उसका जीवन ही सेवामय हो गया ।उसने रमा, जालपा और देवीदीनके साथ वेश्यावृत्ति को तिलॉजलि देकर, कलकत्ता छोड दिया । विलास को नदी मे तैरने वाली वेश्या गॉव मे विलास-शून्य जीवन बिताने के लिए प्रस्तुत हो गयी । गॉव मे जोहरा को रतन के रूप मे एक बहन मिली । जोहरा रतन की बीमारी मे सहभागिनी बनी । साल भर तक उसने अहर्निश सेवा किया । इस प्रकार उसने एक अत्यत विलासमय पर निकृष्ट जीवन से अत्यत कष्टमय पर उत्कृष्ट जीवन की ओर प्रभावशाली अभियान किया । प्रेमचद ने जोहरा के इन उभय रूपो की तुलना इन शब्दो मे किया है—"इन चार सालो मे जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था । अपने अतीत को मिटाने के लिए, अपने पिछले दागो को धो डालने के लिए उसके पास इसके सिवा और क्या साधन था । उसकी सारी कामनाएँ सारी वासनाएँ सेवा मे लीन हो गयी । कलकत्ते मे वह विलास और मनोरज की वस्तु थी । × × × × यहॉ सभी उसके साथ अपने

१, गबन पृ० ३०६

प्राणी का सा व्यवहार करते थे। दयानाथ-रामेश्वरी को यह कह कर शांत कर दिया गया था कि वह देवीदीन की विधवा बहू है। जोहरा ने कलकत्ते में जालपा से केवल उसके साथ रहने की भिक्षा माँगी थी। उसे अपने जीवन से घृणा हो गयी थी। जालपा की विश्वासमय उदारता ने उसे आत्मशुद्धि के पथ पर डाल दिया, रतन का पवित्र निष्काम जीवन उसे प्रोत्साहित किया करता था।"[1]

जोहरा के रूप में प्रेमचंद ने भारतवर्ष के उस वर्ग की ओर संकेत किया है जिसे समाज जबर्दस्ती अपना नैतिक अस्तित्व और मानवीय मूल्य मिटाने के लिए बाध्य करता है। पर क्या उनमें पति और पुत्र के प्यार से पूर्ण जीवन के प्रति वितृष्णा होती है? प्रेमचंद ने इस प्रश्न को हिंदी साहित्य में पहली बार इतना अधिक महत्व दिया। प्रेमचंद ने दुहराया है कि एक वेश्या अपेक्षाकृत अधिक सार्थक नारी हो सकती है।

दयानाथ और रामेश्वरी

दयानाथ मध्यमवर्ग के एक ईमानदार पिता है। नौकरी में कभी एक पैसा घूस न लिया यद्यपि चाहते तो वह भी आदमी बन जाते। बिमारी में नौकरी को चल जाने दिया पर सिविल सर्जन को १६) घूस देकर मेडिकल सर्टिफिकेट न ले सके। ईमानदारी की इस अटूट आदत के बावजूद भी वह बहू के चोरी के गहनों के बक्स को पचा जाते हैं (भूलना न चाहिए कि वह परिस्थितियों के शिकजे में बुरी तरह कसे थे)।

२० वी शती में ईमानदारी के इतने ठोस, अप्राप्त उदाहरण होते हुए भी मुन्शी जी मध्यमवर्ग के सस्कारो (कुसंस्कारो ?) से मुक्त नहीं है। विवाह में दिल खोल कर खर्च करने में उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। बल्कि रामेश्वरी द्वारा चढ़ाव के लिए हार को रोकने पर बिगड़ खड़े भी हुए। कहना न होगा दयानाथ की यह संस्कारगत शिथिलता; दुर्बल चरित्र वाले रमानाथ को विपत्ति के गर्त में झोंकने में काफी सहायक हुई (यदि वे खर्च में सयम रखते तो रमा को गहने चुराने और क्षतिपूर्ति स्वरूप गहने बनवाने के लिए अनेक गलत कार्य नहीं

---

[1] गबन पृ० ३३३।

करने पड़ते) । पर कचहरी के एक अत्यंत सीधे ईमानदार क्लर्क तथा रूढ़ियों के मलवे के नीचे दबे हुए व्यक्ति को इसके लिए बहुत दूर तक दोषी नहीं कहा जा सकता ।

उनकी तीसरी विशेषता यह है कि वे कचहरी की फाइलों में बंद होते हुए भी पुस्तकालय में सर्वाधिक रुचि रखते हैं यहाँ तक कि अपने पुत्र को भी पढ़ने लिखने के लिए सलाह देते रहते है। बीमारी में जब बकते है तब भी अखबार को नहीं भूलते । पर उनकी यह सारी पढाई-लिखाई भी क्लर्की के जीवन जैसी ही यान्त्रिक है ।

अपने पिता के संबंध मे रमानाथ का यह मत था—"जिस आदमी ने अपने जीवन मे हराम का एक पैसा भी न छुआ हो, जिसे किसी से उधार लेकर भोजन करने के बदले भूखों सो रहना मंजूर हो उसका लड़का इतना बेशर्म और बेगैरत हो । रमा पिता की आत्मा का वह घोर अपमान न कर सकता था ।"

जालपा ने पति और ससुर के चारित्र्य (Character) के इस विरोध को इन शब्दों में व्यक्त किया "जिसका पिता इतना सच्चा, इतना ईमानदार हो, वह इतना लोभी और कायर ।"

कुलमिलाकर मुन्शी दयानाथ मध्यमवर्गीय कुटुम्ब के एक ईमानदार, सिद्धान्तवादी, संस्कृत रुचि के विरले पिता है ।

रामेश्वरी

रामेश्वरी मे मातृत्व का पूर्ण दर्शन होता है। वह रिश्वत को साधारण मध्यमवर्गीय स्त्रियो की तरह अच्छा समझती है। आभूषणप्रिय वह भी है। रामेश्वरी को स्त्रियो को नवीन सभ्यता नापसंद थी "उसकी नीति मे बहू बेटियों को भारी और लज्जाशीला होना चाहिए रामेश्वरी व्यावहारिक भी है । वह इस मनोविज्ञान को भलीभाँति जानती है कि "पड़ने पर सबलोग ठीक हो जाते है" और अपने बिगड़ैल पुत्र को विवाह द्वारा ठीक करने का प्रस्ताव करती है ।

रमेश

रमेश का चरित्र गबन मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । एक क्लर्क—जिसके आगे-पीछे कोई नहीं है—जीवन को किस प्रकार सोचता समझता है, यह रमेश के

चरित्र से हमे प्राप्त होता है। प्रेमचद ने दिखाया है कि एक क्लर्क फाइलो का कीडा ही नही अपितु सरस भी होता है।

रमेश का पत्नी-प्रेम और एकपत्नीव्रत उसकी सबसे पहली विशेषता है। पत्नी दिवगत हो चुकी है पर वह पुनर्विवाह नही करता। एक स्थान पर वह कहता है "बरफी खाने के पश्चात गुड खाने को किसका जी चाहता है। महल का सुख भोगने के पश्चात झोपडा किसे अच्छा लगता है? मै तुमसे सच कहता हूँ इस विधुर जीवन मे मैने किसी स्त्री की ओर आँख तक नही उठाई, कितनी ही सुन्दरियाँ देखी कई बार विवाह के लिए लोगो ने घेरा भी लेकिन कभी इच्छा ही नही हुई। उस प्रेम की मधुर स्मृतियों मे मेरे लिए प्रेम का सजीव आनद भरा हुआ है।"[1]

उपन्यास के आरभ से ही हम रमेश बाबू को शतरज के एक खिलाडी के रूप मे पाते है। रमेश के शतरज के खेल को देखकर हमे प्रेमचद की प्रसिद्ध कहानी 'शतरज के खिलाडी' की याद आ जाती है। रात के दो बजे चाहे तीन बजे, कोई परवाह नही। यह ध्यान रखने की बात है कि इस सारी विशृंखलता के बावजूद भी रमेश बाबू प्रातः ५ बजे उठकर नित्यकर्म से विधिवत निवृत होते थे और ठीक दस बजे आफिस पहुँचते थे।

रमेश बाबू की तीसरी बडी विशेषता है मित्रो की सहायता, उनकी खरी आलोचना और उनको परामर्श। रमा को कर्ज के जाल मे फँसते देखकर रमेश बाबू कहते है "कर्ज से बडा पाप दूसरा नही। न इससे बडी विपत्ति दूसरी है। जहाँ एक बार धडका खुला कि तुम आए दिन सराफ की दूकान पर नजर आओगे। भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो पर कर्ज न लेना।"[2] असल मे रमेश बाबू गहनो को अपव्यय का एक साधन समझते थे। उनका कथन था "गहनो का मर्ज न जाने कैसे इस देश मे फैल गया? जिन लोगो के भोजन का ठिकाना नही वे भी गहनो के पीछे प्राण देते है। हर साल अरबो रूपये केवल सोना चाँदी खरीदने मे ही व्यय हो जाते है। ससार के और किसी देश मे इन धातुओ की खपत नही। तो बात क्या है? उन्नत देशो मे धन व्यापार मे लगता

---

१ गबन पृष्ट ४०। २. वही पृ० ५२।

है जिससे लोगों की परवरिश होती है और उनका धन बढ़ता है। यहाँ धन शृंगार में खर्च होता है उससे उन्नति और उपकार की जो महान शक्तियाँ है उन दोनों का अंत हो जाता है। × × बुरा मरज है बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए बाल बच्चों का पेट काट कर गहनों को भेंट कर दिया जाता है।"[1]

पर इतना निश्चित विवेक और स्वभाव रखने वाला व्यक्ति भी अपने वर्गीय संस्कार नहीं छोड़ सका है। सामान्य क्लर्कों की तरह 'जी हुजूरी' के द्वारा काम बनवा लेने में उनका विश्वास है। रमा के मित्र रतन और उनके पति एडवोकेट इंदुभूषण के माध्यम से रमेश बाबू के सालों को नौकरी मिलने की संभावना है। इसलिए वे रमा द्वारा आयोजित की हुई पार्टी (जिसमें वकील साहब सपत्नीक आने वाले हैं) का सारा भार अपने ऊपर ले लेते है। और कहते है "तुम मेरा इंट्रोडक्शन करा देना बाकी सब मैं कर लूंगा।"

घूस के विषय में भी रमेश बाबू उदार थे। घूस क्यों ली जाती है इसके कारणों का सुलझा विश्लेषण वे करते है "जिस घर में बहुत से आदमी हों वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जाएगा कि वह भलमसी के साथ निर्वाह कर सके तब तक रिश्वत बंद न होगी यही रोटी दाल घी दूध तो वह भी खाते है फिर एक को ३० रूपये दूसरे को ३०० रूपये क्यों देते हो?"[2] परंतु उनका विचार है कि रिश्वत यदि ली जाय तो कायदे के अंदर ही। वे रमा से कहते है "कायदे के अंदर रहो और जो चाहे सो करो। तुम पर आंच तक न आने पावेगी।"[3] इस कथन के पीछे स्पष्ट अंतर्ध्वनि है कि घूस लेना तब तक बंद न होगा जब तक उसके कारणों का विनाश न हो जाय।

रमेश बाबू की सबसे बड़ी विशेषता थी व्यक्ति और समाज की आमफहम समस्याओं पर सुलझे हुए मस्तिष्क से सोचना। विधुर है फिर भी उनसे औरतों का स्वभाव मालूम किया जा सकता है। वे कहते है "औरत का स्वभाव तुम जानते नहीं। तुम चाहे दो चार रूपये अपने पास से ही खर्च कर दो पर वह यह समझेगी कि मुझे लूट लिया। नेकनामी तो शायद ही मिले हाँ बदनामी तैयार खड़ी है।"[4]

---

१. गबन पृ० ५३। २. वही पृ० ३७। ३. वही पृ० ४६। ४. वही पृ० १००।

रमेश बाबू कुछ दूर तक सिद्धान्तवादी भी है। कहते हैं "मने अपने जीवन मे दो चार नियम बना लिए है और बडी कठोरता से उनका पालन करता हूँ। उनमे से एक नियम यह भी है कि मित्रो से लेनदेन का व्यवहार न करूँगा। मित्रो से लेनदेन शुरू हुआ कि वहाँ मनमुटाव होते देर नहीं लगती।"[1] अपने दूसरे सिद्धान्त के विपय मे रमेश बावू का कथन है "तुम्हे मालुम है मैं सरकारी काम मे किसी प्रकार की मुरौवत नहीं करता अगर तुम्हारी जगह मेरा भाई या वेटा होता तो मै उसके साथ भी यही सलूक करता बल्कि शायद इससे सख्त।"[2]

पर रमेश रमा के प्रति कठोर ही बने रहे—ऐसा नहीं है। वह रमा के गायब हो जाने के पश्चात रमा को सलाह देते है कि वह जाकर अपने पिता से सारा हाल कह दे। यदि पिता सहायता न करे तो वह मै चुका दूँगा (३००) परामर्श भी अनुचित नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त रमेश के भग जाने के पश्चात भी रमेश बावू उसके और उसके घर के कुशल-क्षेम के वारे मे सदैव चिंतित दिखलाई पड़ते है।

उम्र की दृष्टि से रमेश बाबू रमा से अत्यधिक वडे है। कदाचित रमा के पिता के समवयस्क। पर अवस्था का अन्तर होते हुए भी रुचि-साम्य के कारण मित्रता होती हुई देखी जाती है। पर इस प्रकार की मित्रता मे उभयपक्ष एकदम हमउम्र जैसा व्यवहार नहीं कर पाते। रमेश बाबू उस ज्येष्ठ मित्र के सवूत है जो मित्रता निभाते हुए भी अधिक उम्र की गरिष्ठता नहीं छोड पाते।

× × × ×

चरित्र-चित्रण-कला

प्रेमचंद हिंदी के प्रथम उपन्यासकार है जिन्होने अपने उपन्यासो मे सामाजिक पात्रो की मनोवैज्ञानिक गतिशीलता का परिचय देना आरम्भ किया। इसके पूर्व हिंदी का मौलिक उपन्यास साहित्य इन विशेषताओ से शून्य था। इन पूर्ववर्ती उपन्यासो के पात्रो मे सामाजिक मनुष्य का कम आभास मिलता

१. गबन पृ० १०० । २. वही पृ० १२० ।

है। ये पात्र या तो सज्जन है या दुष्ट या सर्वथा आलौकिक। पर प्रेमचद ने इस एकागिता को छोडकर मनुष्य को उसकी अच्छाइयो और बुराइयो के साथ-साथ लिया। उनके पात्र न तो केवल अच्छे है और न केवल बुरे। वे अपनी सारी दुर्बलताओ और सबलताओ के साथ हमारे सामने आते है। इस प्रकार प्रेमचद ने हिंदी मे सबसे पहले मनुष्य को उसकी समूची वास्तविकता के साथ उपस्थित किया।

प्रेमचद के प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' मे ही द्वन्द्वशील सामाजिक पात्रो की एक शृखला मिलती है। आगे उनकी चरित्र-चित्रण-कला क्रमश और भी निखरती गई। गबन तक आते-आते प्रेमचद के पात्रो का शील-वैचित्र्य भी अच्छी तरह प्रस्फुट हो गया।[1] पात्रो मे अधिक स्वाभाविकता आई, उनके अतर्द्वन्द्व अधिक स्पष्ट हुए जिससे उनका व्यक्तित्व और उभरा। गबन मे प्रत्येक पात्र अपनी विशिष्ट वैयक्तिकता (Individuality) रखता है जो उसके वर्गीय-शील (चरित्र) की सगति मे है। दूसरे शब्दो मे, वह अपने वर्गीय-शील का प्रतिनिधित्व तो करता ही है पर साथ ही अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ भी रखता है। गबन के प्रधान पात्र रमा को ही हम उदाहरणस्वरूप ले सकते है। उसका वर्गीय शील—दिखावा, छिपाव, घूसखोरी आदि से स्पष्ट है। इसके साथ ही उसकी वैयक्तिकता—कायरता, मनोबल का अभाव आदि भी सुरक्षित है। इसी प्रकार देवीदीन भी है। वह भी निम्न वर्ग की विशेषताओ—यथा श्रम मे विश्वास, नशे का सेवन आदि का प्रतिनिधित्व तो करता ही है, साथ ही अपनी वैयक्तिकता यथा निर्द्वन्द्व प्रकृति, परोपकार-निष्ठा, श्रेष्ठतर देश-भक्ति औसत से अधिक समझ आदि का परिचय भी देता है।

व्यक्ति की इस वैयक्तिकता का उद्घाटन उपन्यास-कला के क्षेत्र मे बहुत कुछ अतर्द्वन्द्व-चित्रण के माध्यम से होता है। प्रेमचंद इस कला के निपुण कलाकार हैं। घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे जितना मनोविश्लेषण अपेक्षित है प्रेमचद उतना रख सके है इसमे कोई सदेह नही, उदाहरण के लिए, ' + + +

---

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास ले०—आचार्य रामचद्र शुक्ल (सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण १९९९ सवत) पृ० ५९७।

लेकिन (रमा) जब चाबी निकालने के लिए झुका तो उसे जान पड़ा कि जालपा मुस्करा रही है। उसने झट हाथ खींच लिया और लैम्प के क्षीण प्रकाश में जालपा के मुख की ओर देखा जो कोई सुखद स्वप्न देख रही थी। हा इस सरला के साथ मैं ऐसा विश्वासघात करूं जिसके लिए मैं अपने प्राणों को भेंट कर सकता हूँ उसी के साथ यह कपट? जालपा का निष्कपट स्नेहपूर्ण हृदय मानो उसके मुखमंडल पर अंकित हो रहा था।"[1] रमा के इस अंतर्द्वंद्व में किसप्रकार चोरी करने की आसुरी वृत्ति तथा चोरी न करने की दैवी वृत्ति का संघर्ष हो रहा है। प्रेमचंद स्पष्टत: इस प्रकार के अंतर्द्वन्द्वों में रमकर उनका अपनी प्रणाली से वर्णन करते हैं।

प्रेमचंद अपने चरित्रों का विकास एक दूसरी प्रणाली से भी करते हैं। वे परस्पर विरोधी गुणों के पात्रों को एकत्र करके, पात्रों को विकसित होने का अवसर देते हैं। गबन का रमानाथ कायर स्वभाव का है। वह अपने कलकत्ता-प्रवास में अपनी सुख-सुविधा के लिए दूसरों के जीवन की परवाह नहीं करता। इसी स्थल पर उसके आश्रयदाता देवीदीन का वीर चरित्र सामने आता है जो स्वतंत्रता संग्राम में अपने दो जवान बेटों को होम कर चुका था और अपने प्राणों की भी बाजी लगाए हुए था जो परोपकारी है तथा अपने आश्रय में एक निरवलंब और सनत अपरिचित युवक को स्वेच्छा से ले लेता है, जो अक्खड़ और हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने वाला है। इसी प्रकार रमा के प्रयाग के जीवन में उसका और उसके पिता के चरित्र का विरोध या वैषम्य (Contrast) है! पिता कचहरी की घूस की खुली दूकान पर बैठकर भी घूस नहीं लेता, पर चुंगी के महकमे में पहुँचने पर पुत्र बेधड़क घूस खोरी का व्यापार फैला देता है। इसी प्रकार तीसरा उदाहरण लें। रतन वृद्ध एडवोकेट की तरुणी पत्नी है। उसका आभूषण-प्रेम उसे शोभा देता है पर जालपा का आभूषण-प्रेम उसका एक अशोभन विलास इस अर्थ में है कि उसका पति थोड़ा वेतन पाने वाला एक चुंगी मुन्शी है। जब कि रतन का प्रत्येक खर्च उसके पति को प्रसन्न कर सकता है तब जालपा का प्रत्येक खर्च उसके पति का गला नाप सका है। खोजने पर इस प्रकार के अनेक

---

१ गबन पृ० १२६,

उदाहरण गबन के पृष्ठों में भरे मिलेंगे। गुणों और पात्रों के इसी परस्पर विरोध (Contrast) को लेकर प्रेमचन्द ने चरित्र-विकास को अधिक ज़ोरदार और स्वाभाविक बनाया है। चरित्रों के विकास में भी इस प्रकार काफी सहायता मिली है।

विरोधों में उभरते हुए चरित्र-चित्रों के अतिरिक्त गबन में चरित्र-विकास की एक और विशेषता है। जैसा कि कहा जा चुका है गबन एक घटना-चरित्र प्रधान उपन्यास है। घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यास का अर्थ यह होता है कि उसके भीतर क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में घटनाएँ चरित्रों को और चरित्र घटनाओं को प्रभावित करती हैं गबन के पात्रों का चरित्र-विकास उसी पद्धति से हुआ है। रमा का अधिकांश चरित्र परिस्थिति-चालित है। जालपा भी परिस्थिति विशेष के कारण ही उतनी ऊँचाई तक उठती है। इसी प्रकार यदि हम विवेचना करके देखें तो पता चलेगा कि प्रायः प्रत्येक पात्र या तो परिस्थिति-चालित है या परिस्थितियों को पैदा करता है। समूचे उपन्यास में परिस्थितियों का वेग अधिक है, चरित्रगत दृढता का वेग कम। चरित्रगत दृढ़ता का वेग हमें जालपा के कलकत्ता-प्रवास के प्रयत्नों में दीखता है। इन प्रयत्नों का वेग इतना अधिक है कि साम्राज्य शाही के चंगुल में फंसा हुआ भीरु रमा भी अभूतपूर्व दृढता और तुल्य आत्मबल प्राप्त कर लेता है। देखा जाय तो जोहरा का परिवर्तन भी जालपा के ही कारण हुआ। इसप्रकार समूचे गबन में जालपा एक ऐसी केन्द्रीय चरित्र है जो बहुत सी परिस्थितियों को जन्म देती है और रमानाथ एक ऐसा चरित्र है जो बहुत सी परिस्थितियों से प्रभावित होता है।

———

कथोपकथन

कथोपकथन के द्वारा प्रत्येक उपन्यास मे मोटे तौर पर चार उद्देश्य सिद्ध होते है:—

१—नाटकीयता की पूर्ति: उपन्यास मे स्वाभाविकता और रोचकता की वृद्धि

२—पात्रो का चरित्रोद्‌घाटन

३—कथावस्तु का विकास

४—कभी कभी आवश्यक समस्याओ पर मत-प्रकाश

प्रेमचद की लेखनी, वस्तु को ही नही संवाद को भी उसके पूरे शिल्प के साथ उपस्थित कर सकती है इसका आभास 'सेवासदन' से ही मिलने लगा। आगे चलकर इसका विकास ही होता गया। 'गवन' तक आकर प्रेमचद की संवादकला भी पूर्णतः सतुलित हो जाती है। सवाद के लिए नाटकीयता, असगति दोप को बचाते हुए स्वाभाविकता, उपयुक्तता, सरलता आदि जिन जिन गुणो का आग्रह हम करते है प्रेमचद मे वे प्रचुर मात्रा मे मिलते है।

नाटकीयता की पूर्ति

'गवन' विश्लेपणात्मक प्रणाली का उपन्यास है जिसमे उपन्यासकार सर्वज्ञ होता है और वहुत कुछ टीका-टिप्पणी अपनी ओर से कर सकता है। इसके विपरीत अभिनयात्मक प्रणाली है जिसमे लेखक अपनी ओर से कुछ नही कह सकता और जिसमे नाटकीयता के गुण के विकास का पूर्ण अवकाश रहता है। इस अभिनयात्मक प्रणाली का आश्रय आगे चलकर जैनेन्द्र आदि ने लिया। विश्लेपणात्मक प्रणाली को अपनाते हुए प्रेमचद 'गवन' मे कुछ कम नाटकीयता

ला सके हो ऐसी बात नहीं। असल में नाटकीयता का गुण प्रणाली-सापेक्ष कम है उपन्यासकार की प्रतिभा-सापेक्ष विशेष है। प्रेमचंद बात को नाटकीय ढंग से, कृत्रिमता को सर्वथा बचाते हुए कह सकते हैं—यह उनकी औपन्यासिक प्रतिभा का ही अंग है। जहाँ तक 'गबन' का प्रश्न है गबन में कथोपकथन का विशेष आश्रय लिया गया है। गबन का आरंभ ही आवश्यक पृष्ठभूमि के पश्चात बिसाती और मानकी की बातचीत से होता है। इस कथोपकथन में कितनी नाटकीयता है देखिए :—

"माँ ने पूछा—बाबा यह हार कितने का है?

बिसाती ने हार को रुमाल से पोंछते हुए कहा—खरीद तो बीस आने की है मालकिन जो चाहें दे दें।

माता ने कहा—यह तो बड़ा महँगा है। चार दिन में इसकी चमकदमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा—बहू जी, चार दिन में तो बिटिया को असली चंद्रहार मिल जायेगा!"[1]

इस संवाद में एक ही साथ—व्यावहारिक सजीवता, नाटकीय संक्षिप्तता तथा ओज है। यह अवतरण प्रसंग-साम्य से ज्यों का त्यों उठाकर किसी नाटक में रखा जा सकता है।

पात्रों का चरित्रोद्घाटन

हमारा चरित्र हमारे वार्तालाप से खुलता है यह एक सामान्य तथ्य है। प्रेमचंद के सभी उपन्यासों के पात्रों के कथोपकथन में ऐसे स्वाभाविक और सार्थक संकेत बराबर मिलते हैं जिससे पात्रों का चरित्रोद्घाटन होता चलता है एक अवतरण लें—

"जब वह ऊपर पहुँची तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। उसे देखते ही कौतुक से बोला—आज सराफे का जाना व्यर्थ ही गया। हार कहीं तैयार नहीं था। बनाने को कह आया हूँ।

---

१. गबन पृ० १।

"जालपा की उत्साह से चमकती हुई मुख-छवि मलिन पड़ गयी, बोली वह तो पहले ही जानती थी। वनते वनते पॉच छः महीने तो लग ही जाएँगे।

रमा ०—नही जी वहुत जल्द वना देगा कसम खा रहा था।

जालपा—ऊँह चाहे जब दे।"[१]

'ऊँह चाहे जब दे' मे जालपा का आत्यंतिक आभूपण-प्रेम और आभूपणों के न मिलने से उत्पन्न होने वाली खीझ स्पष्ट हो जाती है। इसीप्रकार, जालपा की तेजस्विता का, रमा की भीरुता का, देवीदीन की देश-भक्ति और परोपकार का, जग्गो के मातृप्रेम का चित्र जगह-जगह उनके कथोपकथन से पूरी तरह चित्रित होता चलता है।

वस्तु-विकास

जैसा कि कहा जा चुका है कथोपकथन द्वारा वस्तु-विकास का कार्य भी होता है। 'गवन' मे भी पात्र कभी कभी अपने कथनो द्वारा अनजाने ही अनेक घटनाओ को पैदा कर देते है। उदाहरण स्वरूप रतन द्वारा रमा के प्रति कहे गए वे सभी कटु-वचन लिए जा सकते है जो उसने अपने आभूषण और रुपये के न मिलने पर कहे थे। इन वचनों ने रमा को कोई तात्कालिक (Immediate) हल खोजने के लिए वाध्य किया। यदि रतन के ये कथन रमा को अत्यत शीघ्र रुपये दे देने के लिए वाध्य न करते तो वह कचहरी के ८००) घर लाने की खतरनाक वात मन मे न लाता। और फिर इस एक कथन से वस्तु का जितना विकास होता है ज्ञात ही है। जालपा और रामेश्वरी की वातचीत के रुख ने ही रमा को सराफ चरणदास के ईयररिंग आदि आभूषण लेने को वाध्य किया। तात्पर्य यह कि उपन्यास की अधिकतर घटनाओ का वीज, यदि हम ढूॅढना चाहे तो, वह कथोपकथन मे प्राप्त होगा।

समस्याओं पर प्रकाश

उपन्यासो मे प्रासगिक समस्याओं पर कलात्मक ढग से प्रकाश डालने का उपयुक्त माध्यम कथोपकथन ही है। 'गवन' मे इस माध्यम का प्रेमचद ने पूरा उपयोग किया है। रमेश आभूपण-प्रेम की समस्या पर, वकील साहव नारीस्वातन्त्र्य

---

१. गवन पृ० ६२।

की समस्या पर, रतन स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार के विषय पर, देवीदीन स्वराज्य-प्राप्ति, मिलमालिक और मजदूरों के संबंध की समस्या पर, कोर्ट का जज पुलिस की धांधली की समस्या पर, स्थान-स्थान पर आवश्यक प्रकाश कला की पूरी सरसता के साथ डालते है। यह अवश्य है कि यह कथोपकथन कहीं कहीं अपनी सीमा से आगे बढ़कर भाषण का रूप ले लेते हैं फिर भी उनमें कथोपकथन का वेग सुरक्षित रहता है।

गबन के कथोपकथन की विशेषताएँ

(१) स्वाभाविकता : पात्रों के स्थिति-स्तर के अनुकूल भाषाः—

इलाहाबाद का कहार किसप्रकार की भाषा बोल सकता है इसको प्रेमचंद समझते थे —

'कहार ने त्योरियाँ बदल कर कहा—तो का चार हाथ गोड़ कर लेई। कामे से तो गया रहिन। बाबू मेम साहब के तीर रूपये लेबै को भेजिन रहा।

जालपा—कौन मेम साहब ?

कहार—जौन मोटर पर चढ़कर आवत है ?

जालपा—तो लाए रुपये ?

कहार—लाए काहे नहीं। पिरथी के छोर पर तो रहत है। दौरत-दौरत गोड़ पिराय लगा।"[1]

गुलामी को वरदान मानने वाले अंग्रेजो अफसर किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे यह भी प्रेमचद ने पूरी स्वाभाविकता के साथ उतारा है।

"टेलीफोन—तुम उसको क्यो जाने दिया ? हमको ऐसा डर लगता है कि उसने सब हाल जज से कह दिया। मुकदमा का जाँच फिर से होगा। आप से बड़ा भारी ब्लन्डर हुआ है। सारा मिहनत पानी में गिर गया। उसको जबर्दस्ती रोक लेना चाहिए था।

"तो क्या वह जज साहब के पास गया था ?

"हाँ साहब वहीं गया था और जज भी कायदा को तोड देगा वह फिर

१. गबन पृ० ११४।

से मुकदमा का पेशी करेगा । रमा अपना बयान बदलेगा । अब इसमे कोई **डाउट** नही है । और यह सब आपका **बंगलिग** है हम सब उस बाढ मे बह जाएगा । जोहरा ने भी दगा दिया ।"[1]

इसी प्रकार—

"डिप्टी ने सिगार का कश लेकर कहा—बाहरी गवाही से काम नहीं चलने सकेगा । इनमे से किसी को **'अप्रूवर'** बनाना होगा । और कोई **'आल्टरनेटिव'** नहीं है ।"[2]

ऊपर के उदाहरणो मे अहिंदी भाषी डिप्टी सुपरिन्टेडेन्ट को हिंदी का रूप तथा उसके द्वारा प्रयुक्त सस्कार जन्य अग्रेजी शब्द यथा Blunder, Doubt, Bungling, Approver और Alternative—देखने योग्य है ।

(२) उपयुक्तता—प्रेमचद के पात्रो की बातचीत मे उपयुक्तता बराबर बनी रहती है । रमा केवल हाई स्कूल है । वह हाईकोर्ट मे एडवोकेट इन्दुभूषण के साथ बात करते हुए कम से कम बात करता है क्योकि उसका ज्ञान और अनुभव अत्यल्प है । लेकिन जब पात्र आवश्यकता से अधिक तथा अप्रासगिक बाते कहने लगते हैं तब उपयुक्तता पर आँच आती है । उदाहरण स्वरूप वकील साहब के पाश्चात्य-सभ्यता पर हुए व्याख्यानवत कथोपकथन । लेकिन प्रेमचद इस दोष से बराबर बचते गए । 'सेवासदन' के बोर्ड के सदस्यो के भाषण, और 'प्रेमाश्रम' के 'इत्तिहादी रहीमखाना' के सैय्यद ईजाद हुसेन की लम्बी वक्तृताओ का अनौचित्य गबन मे नही दुहराया गया है । असल मे व्यक्ति के स्वभाव या वातावरण के औचित्य के अंकन के विशेष आग्रह से ही यह अनुपयुक्त कथोपकथन आ जाता है पर प्रेमचंद मे आगे चलकर यह दोष निकल जाता है ।

कुल मिलाकर 'गबन' का कथोपकथन कला की दृष्टि से प्रेमचद को पूर्व-वर्ती कृतियो से अधिक विशिष्ट है । दूसरे शब्दो मे, 'गबन' की कथोपकथन-कला अपनी विशिष्टता के कारण प्रेमचद की विकसित कथोपकथन-शैली का उदाहरण हो सकती है ।

———

१. गबन पृ० ३१६ । २. वही पृ० २१७ ।

देश-काल-चित्रण

गबन प्रेमचंद के महत्वपूर्ण उपन्यासो मे अपेक्षाकृत छोटा है। फिर भी वह समाज के विभिन्न अगो के विभिन्न पक्षो के बहुमुखी चित्रो के कलात्मक अकन के कारण प्रेमचद की स्मरणीय कृति बन सका है।

यो तो 'गबन' की रचना के पीछे एक ही उद्देश्य लक्षित होता है—भारतीय मध्यवर्ग, विशेषतः निम्नमध्यवर्ग मे आभूषण-प्रेम और तज्जनित दुष्परिणामो का अकन करके आभूषण प्रेम की एक सामती अशिक्षित मनोवृत्ति पर प्रहार। फिर भी 'गबन' इस एक समस्या के अतिरिक्त अन्य समस्याएं भी अपनी परिधि मे घेर सका है। सबसे पहले हम उस समाज का विश्लेषण करे जो 'गबन' के विस्तार-क्षेत्र के अतर्गत आता है।

गबन मे तीन प्रकार के परिवार हमारे सामने आते है।

१—रमा और जालपा [निम्न मध्यवर्ग]

२—एडवोकेट इन्दुभूषण और रतन [उच्च मध्यवर्ग]

३—देवीदीन खटिक और जग्गो [निम्नवर्ग]

ऊपर की तालिका मे आए तीनो दम्पति अपने-अपने वर्गीय शील के प्रतीक-रूप मे आए है इसलिए वे 'गबन' मे अपने समस्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक परिपार्श्वों के साथ अकित हुए है।

१—**रमा और जालपा**—रमा इधर पढाई छूट जाने के कारण एक प्रकार की टिपिकल मध्यवर्गीय बेकारी की जिन्दगी काटता है और दूसरी ओर जालपा एक अल्पशिक्षित पर सम्पन्न माता-पिता के उस परिवार मे पलती है जिसका

संसार ही 'आभूषण-मंडित' है। रमानाथ के पिता मुन्शी दयानाथ अपनी उस ईमानदारी के लिये प्रसिद्ध है जो कि मध्यवर्ग के नैतिकतापसन्द लोगो की एक अच्छी मनोवृत्ति होती है और जालपा के पिता मुन्शी दीनदयाल मध्यवर्ग की उस मनोवृत्ति के साथ है जो जमींदारो और मिलमालिको की अंगुली पकड़कर अपने को सपन्न बनाए रखना चाहती है। दोनो परिवारो मे विवाह संबंध निश्चित होता है। एक खानदानी-प्रतिष्ठा का बोझ दोनो पक्षो के सिर पर रहता है जिसे अच्छे से अच्छे रूप मे निभा ले जाने की समस्या दोनो के सम्मुख है। और खानदानी प्रतिष्ठा ही क्यो, मध्यवर्गीय दिखावे की मनोवृत्ति का तथा वधूपक्ष से वरपक्ष को श्रेष्ठतर ही रहना चाहिए—इसका भी ध्यान बराबर रखा जाता है। इस विवाह मे मुन्शी दीनदयाल तो निभ जाते है क्योकि उन्होने जमींदार की अगुली पकड़ रखी है पर मुन्शी दयानाथ नही निभ पाते। रमानाथ डटकर आतिशबाजियॉ, फुलवारियॉ, कार आदि ठीक करता है तथा टीके के हजारो रुपये खर्च कर देता है। और यह सब क्यो? उसी इज्जत और दिखावे के लाल गुब्बारे को फुला कर दिखाने के लिए जिसके भीतर खोखलापन रहता है और ऊपर भडकीला रग। यदि दूर तक देखा जाय तो इस 'वाहवाही' के मूल्य-स्वरूप ही आगे चलकर पिता और पुत्र को नवागता वधू के आभूषण चुराने पडते हैं। प्रेमचद ने जिस कुशलता से मध्यवर्ग की इस ओछी मनोवृत्ति का चित्रण किया है वैसा हिन्दी के अन्य लेखको मे नहीं मिलता।

विवाह के पश्चात भी चुंगी कचहरी का क्लर्क रमानाथ झूठे प्रदर्शन की इन खोखली मनोवृत्ति का बराबर शिकार होता जाता है। वह अपनी सुख-दुख की सहभागिनी जालपा से भी अपनी स्थिति नही स्पष्ट करता और एक के बाद दूसरी विपत्ति की ओर द्रुतगति से बढता जाता है और होता है वही जो होना चाहिए।

रमानाथ के कलकत्ता जाने के बाद से प्रेमचद ने इस मध्यवर्ग के उस सुत शील का भी बडा ही भव्य अकन किया है जो दुनियॉ के परिवर्तनो का एक बड़ा साधन है। जालपा का चरित्र ऐसी ही शक्ति का एक लघु प्रतीकात्मक सस्करण है।

२—एडवोकेट इन्दुभूषण और रतन—यह परिवार उच्च मध्यवर्ग का एक

सही प्रतीक है। वृद्ध इंदुभूषण, अपने धन की ताकत पर रतन से विवाह करते हैं। प्रतिपादन भी करते है कि "जब कोई अधेड आदमी किसी युवती से ब्याह कर लेता है तो क्यो अखबारो मे इतना कुहराम मच जाता है? यूरोप मे ८० बरस के बूढ़े युवतियो से ब्याह करते है सत्तर वर्ष की वृद्धायें युवको से ब्याह करती है। कोई कुछ नही कहता।" लेकिन स्पष्ट है कि यह भी एक प्रकार की प्राकृतिक आवश्यकता का निरोध है। रतन यद्यपि अपने जीवन से सतुष्ट-सी लगती है। वकील साहब भी उसे सब प्रकार का सुख देने का उपक्रम करते रहते है। फिर भी इस सारे दम्पति जीवन के पीछे वह उल्लास, वह आनद और वह कर्मशक्ति नही दृष्टिगत होती जो वस्तुतः होनी चाहिए। रतन और वकील साहब के जीवन मे भी कहीं कुछ ठोस है, कही कुछ प्रवहमान है, यह नजर नही आता। और वकील साहब की मृत्यु के पश्चात ऐसे ऊँचे परिवारो मे जो स्वभावतः होता आया है—वही होता है। दूर का भतीजा मणिशकर—वकील साहब की मृत्यु के पश्चात रतन को बेवकूफ बनाकर सबकुछ लेकर चल देता है। रतन चाहती तो अधिक कुछ कर सकती थी पर वह सतोष की भित्ति के सहारे टिकी रह जाती है।

३-देवीदीन और जग्गो—यह परिवार उस निम्नवर्ग का प्रतीक है जिसमे पति-पत्नी दोनो श्रम करते हुए सुखी रहते है, जिनका मूल मत्र है स्वावलम्बी उद्योग। अपने पैरो पर खडे हुए निम्नवर्ग का यह चित्र अद्भुत है। इनके जीवन का हर कुछ पुष्ट और सुदृढ़ है। इनको काटते जाइए पर ये ऐसे है कि खतम नही होगे। जिस आजादी की प्राप्ति का श्रेय आज बडी बडी खिप्रगदार गद्दियाँ मनमाने ढग से ले रही है उस आजादी का श्रेय वस्तुत. देवीदीन खटिक जैसे भारत के मजूर के सपूतो को है जो लड़ाई के अगले मोर्चे पर रहे, मिट गए, पर हटे नही, जिनका इतिहास मे कही नाम नही है। देवीदीन के रूप में प्रेमचद ने कोटि-कोटि भारतीय जनता की उस वाणी को स्वर दिया है जो सभ्यता के ओट मे होने वाले फरेब को समझती है, जो अर्थव्यवस्था के वास्तविक तत्वो को बखूबी बूझती है (क्योकि सारी अर्थव्यवस्था इसी वर्ग के ऊपर घूमती है), जो कि तनकर यह कह सकती है कि 'जो अपने फायदे के लिए दूसरो का गला काटे उसे जहर देने मे पाप नही है, जो बडे बड़े मिलमालिकों, पूँजीपतियों के दीन-धर्म के मूल को समझती है, जो मरते दम तक सीखते जाने की आकांक्षिणी

है, जो उन अपराधियों को भी पचा जाती है, जो विवशतावश अपराध कर जाते हैं। कुल मिलाकर देवीदीन और जग्गो का जोड़ा शुद्ध भारतीय स्वावलम्बी निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है जिसके रूप में इस विशाल जनता की लड़ती हुई शक्ति मूर्त हो गयी है। देवीदीन उस कोटि का चित्र है जिस कोटि में सूरदास और होरी आते हैं।

गबन में आई हुई समस्याएँ:—

[१] भारतीय जीवन में आभूषण-प्रेम की समस्या—हमारा भारतीय समाज, विशेषत इस समाज की स्त्रियाँ—अपने आभूषण-प्रेम के लिए बदनाम हैं। यह समस्या बहुत पहले से ही भारतीय अर्थशास्त्र का विषय बन चुकी है। साहित्य में भी प्रेमचद के द्वारा यह समस्या उठाई गई और गबन की रचना हुई। यह समस्या समाजव्यापी है। 'जहाँ देखो हाय गहने। गहने के पीछे जान दे दे, घर के आदमियों को भूखों मारे, घर की चीजें बेचे और कहाँ तक कहूँ अपनी आबरू बेचे। छोटे बड़े, गरीब-अमीर सबको यही रोग लगा हुआ है'।

गबन का प्रत्येक स्त्रीपात्र अनिवार्य रूप से न्यूनाधिक आभूषणप्रिय अवश्य है। जालपा तो आभूषण-मडित ससार मे पलकर अपने रक्त में ही आभूषण-प्रेम ले आई थी। उसकी माँ मानकी भी ६००) का चंद्रहार अपने लिए मँगवाती है जब कि बेटी की उम्र शौक-शान करने के योग्य है। रतन को भी गहनों से बेहद शौक है। सपत्नी के गहने पर्याप्त नहीं, बाजार की हर नई डिजाइन उसे अपने पास चाहिए। रमा की माँ रामेश्वरी भी आभूषणों के लिए तरसती ही रह गई। खटकिन जग्गो के आभूषण-प्रेम के कारण डाकिया देवीदीन जेल भुगत चुका है। अब भी 'बुढ़िया दो एक आभूषण, बनवाती ही जाती है'।

प्रेमचंद समस्या पर दृष्टिपात करते हैं—"गहनो का मर्ज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया। जिन लोगो के भोजन का ठिकाना नहीं वे भी गहनो के पीछे प्राण देते हैं। हर साल अरबो रूपए केवल सोना-चाँदी खरीदने में व्यय हो जाते हैं। ससार के और किसी देश में इन धातुओं की इतनी खपत नहीं। तो बात क्या है? उन्नत देशों में धन व्यापार में लगता है जिससे लोगो की परवरिश होती है. धन बढ़ता है। यहाँ धन शृंगार मे खर्च होता है उससे उन्नति और उद्यम

की जो महान शक्तियाँ हैं उन दोनों का अंत हो जाता है। बुरा मरज बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल बच्चों का पेट काट कर गहनों को भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले न सही घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुँचे न सही, मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों कोई परवाह नहीं, पर देवी जी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवाएँगे। दस-दस बीस-बीस रूपए पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ जो सिड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति जीवन काटते हैं, जिन्हें सबेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता, उनपर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूँ यह गुलामी-पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं लगा सकते।"[1]

प्रेमचंद ने समस्या के यथार्थ पक्ष को उसके सभी दुष्परिणामों[2] के साथ सामने रखा है। पर इस समस्या का कोई समाधान स्पष्टतः उन्होंने व्यक्त नहीं किया है। इतना ध्वनित अवश्य होता है कि इस आभूषण-प्रेम को छोड़कर हमें पादेय कामों में लगकर अपना स्वस्थ विकास करना चाहिए।

(२) पुलिस के हथकंडों की समस्या—प्रेमचंद ने राजनीति के उस मोड़ पर गबन की सृष्टि की जब भारतवर्ष में साम्राज्यवाद को उन्मूलित करने के लिए आतंकवादी क्रांतियाँ चल रही थीं। उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और बंगाल इन क्रांतियों के गढ़ थे। उत्तरप्रदेश में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में भगत सिंह राजगुरु आदि आदि नवजवानों की टोलियाँ प्राणों की बाजी लगाकर राजनैतिक डकैतियाँ डालती थीं और ट्रेनें उलटती थीं। आतंकवादियों के पकड़ में न आने पर पुलिस और सरकार दूसरे निरपराध व्यक्तियों को किसी मुखबिर की सहायता से फँसाकर केस खड़ा करने की कोशिश करती थी। मुखबिर बनाना—उस समय पुलिस विभाग का एक मुख्य कर्त्तव्य हो गया था जिसके लिये वे नौकरी, पुरस्कार आदि प्रलोभनों से लेकर वेश्या, मदिरा, मांस आदि विलासिता की सामग्री की टाल भी लगाते थे और इस प्रकार मुखबिर के विवेक को शून्य

---

१. गबन पृ० ५३। २. देखिए, इसी पुस्तक में 'उद्देश्य' शीर्षक अध्याय।

कर देते थे। 'गबन' में भी इस समस्या का आभास मिलता है। पुलिस के हथकंडो, दिनेश की गिरफ्तारी, रमा की मुखबिरी के पार्श्व में किसी आतंकवादी राजनैतिक डकैती की घटना जान पड़ती है (यद्यपि उपन्यासकार ने संकेत नहीं किया है)। निरपराध दिनेश और अन्य १५ व्यक्तियों को फँसाकर, रमा को मुखबिर बनाकर, उसके विवेक को मास, मदिरा, वेश्या, आदि से शून्य करके 'केस' को पर्याप्त मजबूत किया जाता है। जैसा कि हम 'गबन' में देखते हैं मुखबिरों को उस समय एक प्रकार से नजरबंदियों की तरह कैद रखा जाता था। इस प्रकार प्रेमचद ने पुलिस के हथकंडो को उसकी पूरी बारीकियों के साथ उपस्थित किया है जो उपन्यास का एक तिहाई से अधिक भाग घेरता है। इसका प्रयोजन सम्भवत. यह रहा हो कि जनता पुलिस के कारनामो से अभिज्ञ हो, विदेशी शासन के प्रति घृणा प्रचारित हो और अंतिम उद्देश्य के रूप में साम्राज्य-वाद की कड़ियाँ टूटें।

(३) **बेकारी की समस्या** – सन ३१ में गबन का प्रकाशन हुआ था उस समय बेकारी देश की एक महत्वपूर्ण समस्या थी (आज भी है)। इसी पृष्ठभूमि को प्रेमचंद ने लिया। रमानाथ बेकारो का एक प्रतिनिधि पात्र है। रमेश बाबू के सालों की बेकारी की बात भी आगे चलकर आती है। रमेश बाबू एक स्थल पर कहते भी हैं:—"इसे (नौकरी को) जितना आसान समझ रहे हो उतनी आसान नहीं है। अच्छे अच्छे धक्के खा रहे हैं।"[1]

निम्न मध्यवर्ग विशेषत क्लर्की की ओर झुकता है। क्योंकि ऊँची नौकरियों के लिये आवश्यक ऊँची शिक्षा, उच्चशुल्क, पोषित (nourished) मस्तिष्क उनके लिये दुर्लभ है। और यह वर्ग पढ़ा-लिखा भी होता है। लाचारी की अवस्था में इन्हें बाबूगिरी करनी पड़ती है। यह बाबूगिरी भी आसान नहीं है। प्रेमचद स्थिति का अवलोकन करते हुए लिखते हैं "क्या तुम समझते हो घर बैठे जगह मिल जायेगी ? महीनों दौड़ना पडेगा, महीनो ! बीसियों सिफारिशें लानी पडेगी। सुबह शाम हाजिरी देनी पडेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है।"[2] और इस बाबूगिरी के मिलने के बाद बेचारे क्लर्क को अफसर साहब बुरी तरह डाँटता है लोग उसके सामने जाते हुए काँपते है।"[3]

---

१ गबन पृ० ३६। २ वही पृ० ३९। ३ वही पृ० ३९।

'गबन' के प्रायः सभी मध्यवर्गीय पात्र नौकर हैं। दयानाथ, रमानाथ, रमेश सभी कचहरी के 'अहलकार' है। यह सभी आर्थिक दृष्टि से परेशान है। अपनी दैनदिन आवश्यकताओं के लिए सभी अक्सर मजबूर।

ध्यान देने की बात यह है कि बेकारी की समस्या 'गबन' मे चित्रित समाज के अनुसार विशेषतः मध्यवर्ग मे है। वह न तो उच्च मध्यवर्ग के एडवोकेट इन्दुभूषण सरीखे स्वतत्र और अधिक आय वाले पेशेवरो मे है न तो निम्नवर्ग के देवीदीन जैसे अपने उद्योग मे विश्वास रखने वालो मे है। हम पाते है कि इदुभूषण तो सुखी है ही, देवीदीन भी दो घटे मे ५० गिन्नियो का प्रबन्ध कर ही लेता है। अपने संस्कारो के कारण परेशान होता है यही मध्यवर्ग।

कुल मिलाकर प्रेमचद ने 'गबन' के द्वारा बेकार लोगों को यह सदेश दिया है कि नौकरी का मुँह हमेशा देखना उचित नही है। व्यक्ति को अपने उद्योग में हर पूर्वग्रह और दिखावटी आदतो को छोडकर जुट जाना चाहिए। 'गबन' का पर्यवसान भी श्रममूलक ग्रामोद्योग मे होता है।

(४) घूस की समस्या—प्रेमचद ने 'घूस लेना चाहिये या नही' इस प्रश्न के समर्थको और विरोधियो दोनो को गबन मे स्थान दिया है। लेने वालो या लेने के पक्षपोषको मे है रमानाथ और रमेश। विरोधियो मे हैं मुशी दयानाथ जिन्होंने नौकरी को १६) घूस के लिए तिलाजलि दे दी। प्रेमचद किसके समर्थक है यह कहना सर्वथा कठिन है। इसमे तो कोई सदेह नही कि जहाँ जहाँ घूस लेने-देने का प्रकरण 'गबन' मे आया है वह पूर्णत यथार्थ और हमसे परिचित है। प्रेमचद ने कोई मार्ग नही सुझाया है इसलिए हम यह मान ले कि वे घूस के समर्थक है— ऐसा उचित नही लगता। जिस व्यक्ति ने अपनी पच्चीस साल की सरकारी नौकरी को ठुकरा दिया हो, जिसने इतनी बडी प्रतिभा लेकर गरीबी मे जिदगी काट दी हो, वह कभी घूस का समर्थक नही हो सकता।

(५) मध्यवर्ग में प्रदर्शन की प्रवृत्ति की समस्या—प्रेमचद ने रमानाथ के विवाह के प्रसग मे इस समस्या को ओर पूरा ध्यान दिया है। उन्होने इस समस्या से सटा दहेज की समस्या को तो छोड दिया है क्योकि शायद उन्हे शीघ्र ही अपनी अभीष्ट समस्या आभूषण-प्रेम पर आ जाना था पर उन्होने बारात के द्वारा प्रदर्शन की समस्या को भी लिया है। रमा का विवाह है।

घूस के घोर विरोधी मुन्शी दयानाथ भी कल्पित आबरू के चक्कर में पड़कर प्रद-र्शन के पीछे खूब धन खर्च करते हैं। कम पढ़े-लिखे और कम उम्र वाले रमानाथ का तो कहना ही क्या था। वह आतिशबाजियाँ, नाच-गाने, कार आदि में तिलक के सारे रूपए खर्च कर देता है दयानाथ चुप रहते हैं। परिणाम यह होता है कि सुनार के रुपए चुकाने के लिए पति को प्रिया का तथा घूस और असतमूलक कामों के घोर विरोधी श्वसुर को अपनी पुत्रवधू के गहने की चोरी मिलकर करनी पड़ती है। यह उसी प्रदर्शन का मूल्य है।

युवतियाँ इस मनोवृत्ति की अधिक शिकार होती हैं। जालपा बाहर इसलिए नहीं निकल पाती कि उसके पास आभूषण नहीं है। आभूषण और पैसे होते ही वह सारे मुहल्ले की महारानी बन जाती है। चादर से काफी बाहर तक पाँव फैला देती है। ४०) माहवार का क्लर्क एडवोकेट से संपर्क स्थापित करता है। उनको 'चाय' पर आमंत्रित करता है। इस आमंत्रण में मुन्शी दयानाथ भी अपनी अंग्रेजी-सभ्यता के अनुकरण की परीक्षा देने लगते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा मध्यवर्ग प्रदर्शन के रोग से बुरी तरह ग्रस्त है। आज भी पुत्र या पुत्री की शादी में जितना पैसा खर्च किया जाता है उतने में संतान विदेश से उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सकती है तथा कितने परिवारों का अस्त होना का रुक सकता है।

प्रेमचंद ने दिखाया है कि उच्चवर्गीय तथा निम्नवर्गीय लोग प्रदर्शन के पीछे इतने मतवाले नहीं रहते। न तो इंदुभूषण न और तो देवीदीन ही—कोई प्रदर्शन इतना लोभी नहीं है।

प्रेमचंद ने इस सामंती संस्कार के दुष्परिणाम को काफी कलात्मक ढंग से व्यक्त किया। यदि रमा के विवाह में संयमित ढंग से खर्च किया जाता तो, न तो जालपा के गहने चुराए जाते न तो (कदाचित) रमा को इतने गहरे गर्त में गिरना पड़ता।

आश्चर्य तो यह है कि मध्यवर्ग के रक्त में यह मनोवृत्ति इस तरह प्रवाहित हो गयी है कि प्रिय अपनी प्रिया से अपनी स्थिति को गुप्त रखता है। प्रेमचंद ने इस मूलभूत कुप्रवृत्ति पर बड़े कलात्मक ढंग से प्रहार किया है।

(९) स्वतंत्रता-प्राप्ति की समस्या—गबन में देवीदीन के आगमन के

साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति की समस्या भी सामने आई है। स्वतंत्रता युद्ध का वास्तविक सैनिक कौन है ? स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त होगी ? नेताओ की स्वतन्त्रता का क्या खाका है ? इन सभी प्रश्नो का उत्तर देवीदीन के चरित्र के माध्यम से मिलता है।

देवीदीन हमेशा स्वदेशी वस्तुएँ व्यवहार मे लाता है। वह डके की चोट पर कहता है "जिस देश मे रहते हैं जिसका अन्न-जल खाते है उसके लिए इतना भी न करे तो जीने को धिक्कार है। दो जवान बेटे सुदेशी को भेट कर चुका हूँ भइया।" उसे सुदेशी और स्वराज्य से इतना प्रेम है कि वह विदेशी सलाई तक घर में नही आने देता। उसे इसका पूरा ज्ञान है कि देशी माल लेने मे बेसी दाम लग जाता है तो क्या रुपया तो देश मे ही रह जाता है। इसका अर्थ यह है कि देवीदीन के रूप मे एक भारतीय मजदूर सुदेशी या 'स्वराज्य' को केवल राजनीतिक प्रश्न के रूप में ही नही देखता वरन उसे एक आर्थिक प्रश्न भी समझता है। इस भारतीय निम्नवर्गीय व्यक्ति के सामने उच्चवर्गीय नेताओ का ढोग स्पष्ट था। देवीदीन के शब्दो मे "इन बडे बड़े आदमियो के किए कुछ न होगा। बड़े बडे देश-भगतो को बिना विलायती सराब के चैन नही आती। उनके घर मे जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने के लिए दस-बीस गाढ़े के कुरते बनवा लिए, घर का और सब सामान विलायती है सबके सब भोग विलास मे अधे हो रहे है छोटे भी बड़े भी, उस पर दावा है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे ! तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबो को लूट कर घर भरना तुम्हारा काम है। इसलिए इस देश मे तुम्हारा जनम हुआ है। हाँ रोये जाव, विलायती सराबे उडाते जाओ, विलायती मोटरे दौडाओ, विलायती मुरब्बे और अँचार चखो, विलायती बरतनो मे खाओ, विलायती दवाइयाँ पीओ पर देश के नाम को रोये जाओ। रोने से मा भी दूध पिलाती है। सेर अपना शिकार नहीं छोडता। रोओ उसके सामने जिसमे दया और धरम हो। तुम धमका कर ही क्या कर लोगे। जिस धमकी मे कुछ दम नही है उस धमकी की परवाह कौन करता है।"[1] स्पष्ट है कि देवीदीन जैसी जनता 'सुराज' का अर्थ किसान

१. गबन पृ० १७४।

मजदूर का राज समझती थी और ऐसी शासन-सत्ता को पाने का स... आंदोलन (Constitutional Agitation) नहीं बल्कि वैधानि... निक के परे सक्रिय आंदोलन चाहती थी जिससे उसकी मुक्ति शीघ्र से शी... हो सके। सन ३० तक जनता इन नेताओं के चक्कर में काफी पिस चुक... उन्हें जितनी घृणा इन नेताओं से हो चुकी थी उतनी अंग्रेजों से नहीं।... कहता है "एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब वहा... होकर खूब उछले कूदे। जब वे नीचे आए, तब मैंने उनसे पूछा—साह... बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी... के सामने आता है। तुम भी बड़ी बड़ी तलबें लोगे, तुम भी अंग्रेजों के... बगलों में रहोगे। तुम भी पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजों की ठाट बनाए... इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्द... जिन्दगी भले ही आराम और ठाट से गुजरे पर देश का तो कोई भला न हो... बस बगलें झाकने लगे। तुम दिन में पाँच बेर खाना चाहते हो और... बढ़िया माल, गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता... का रक्त चूसकर सरकार तुम्हें हुद्दे देती है तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर... है। अभी तुम्हारा राज है तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो... राज हो जाएगा तो गरीबों को पीसकर पी जाओगे।"[1] इस कथन में प्रेमचंद... २२ वर्ष पूर्व ही स्वतंत्र भारत की दुर्दशा को अंदाज लिया था। देवीदीन के... शब्द में स्वतंत्रता के उस पक्ष पर बल है जिसमें जनता की आर्थिक मुक्ति... न कि एक ऊपरी परिवर्तन।

मजदूरों और निम्नवर्गीय किसानों की इसी चेतना का निरंतर... प्रेमचंद का उद्देश्य था जिसको 'गबन' में प्रेमचंद ने एक हद तक पूरा... दिखाया कि साहित्य-स्रष्टा समाज का भविष्य-द्रष्टा भी है। अंत में ... है "भैया तुम भी इन बातों को समझते हो। यही मैंने भी सोचा था... करे, कुछ दिन और जीऊँ। मेरा पहला सवाल यह होगा कि विलायती चीजों... दुगुना महसूल लगाया जाय और मोटरों पर चौगुना।"[2]

१. गबन पृ० १७४-७५। २. वही पृ० १७५।

प्रेमचन्द ने देवीदीन की यह इच्छा, हिंदुस्तान की नई पीढ़ी के लिए एक विरासत की तरह छोड दी है। हमारे सघर्ष की यह भूमिका है। गबन के समाज-दर्शन के अनुसार अभी तक हमने पूर्ण स्वतन्त्रता नही प्राप्त की। जबतक हमारा आर्थिक ढाँचा पूर्ववत है हमारी स्वतन्त्रता अधूरी है।

(७) मजदूरों को समस्या—'गबन' मे एक छोटा पर अपने मे पूर्ण प्रसंग मजदूरो की समस्या को भी छूता है। अहर्निश दान-धर्म मे व्यस्त रहने वाले सेठियों की पोल खोलता हुआ देवीदीन कहता है—"उसकी जूट की मिल है। मजदूरो के साथ जितनी निर्दयता उसकी मिल मे होती है और कही नही होती, आदमियो को हटरो से पिटवाता है हटरो से। चरबी मिला घी बेचकर इसने लाखो कमा लिए। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरत तलब काट लेता है। अगर साल मे दो चार हजार दान न कर दे तो पाप का धन पचे कैसे।"[१]

प्रेमचद इस समस्या की गहराई मे नही गए। अत मे वे देवीदीन के मुँह से इतना कहलवा कर इस समस्या को बात खत्म कर देते है। **"आदमी चाहे और कुछ न करे, मन में दया बनाए रखे। यही सौ धरम का एक धरम है।"**[२]

(८) जातिप्रथा को समस्या—'गबन' मे एक ऐसा मार्मिक स्थल आता है जब जाति-प्रथा पर प्रेमचद अपना अभिमत प्रगट करते है। 'खटिक' जाति हिंदू समाज के अभिजात वर्ग के लिए अछूत है। लेकिन जब बुढ़िया जग्गो ने रमा को अलग बनाने-खाने पर जोर दिया तो उसने कहा—'जिसकी आत्मा बडी हो वही ब्राह्मण है।'[३] इसप्रकार ब्राह्मणत्व को प्रेमचद ने जन्मगत न मानकर गुणगत माना। प्रसाद जी ने भी ब्राह्मणत्व को 'सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव' कहा था।[४] इन मान्यताओ के मूल मे वस्तुतः जातिप्रथा से इनकार है। इसके अतिरिक्त जब जालपा के देवर गोपी ने उससे खटिको के प्रति घृणा प्रगट की तो उसने कहा-'खटिक हो या चमार हो, लेकिन हमसे और तुमसे सौ गुने अच्छे है।[५]

---

१. गबन पृ० १६३। २. वही पृ० १६४। ३. वही पृ० १८४। ४. चद्रगुप्त (नाटक)। ५. गबन पृ० २४१।

इतना ही नहीं रमा और जालपा, देवीदीन खटिक और जग्गो को अपना माता-पिता तक मानते है। और अंत मे तो कई जातियो के पात्र प्रयाग मे गंगातट पर अपनी आश्रमिक गृहस्थी बसाते ही है जिसमे सभी मनुष्य हैं जाति कोई नहीं।

इन समस्याओ की तह मे जाकर उनका उत्तर देने के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने देश-काल की स्थूल पृष्ठभूमि को भी अत्यंत कौशलपूर्वक सामने रखा है। 'गबन' मे चुगी कचहरी का दृश्य इस प्रकार चित्रित किया गया है कि हमारी आँखो के सामने चुगी की कचहरी का चित्र खिच उठता है। विवाहो मे टीम-टाम का बदोबस्त और जनवासे तथा विवाह-मडप का दृश्य, सराफो के यहाँ मोल-भाव का दृश्य उनका चलता पुर्जापन ; स्टेशन के कुलियो की धोखा धडी, चाय की दूकान तथा तरकारी की दूकान का दृश्य, कलकत्ता शहर के साकेतिक चित्र, शतरज का खेल जघन्य लीलाओ के घटना-स्थल, पुलिस के थाने का दृश्य; कचहरी मे वादी प्रतिवादी ,जज, दर्शको आदि से भरा चित्र, और देहात की श्रम मूलक, सतत कर्मशील जिंदगी का चित्र सभी कुछ यथास्थान लेखक की अद्भुत वर्णन-शक्ति से चमक कर सशक्त समाजिक पृष्ठभूमि का काम देते है। देवीदीन के संस्मरण मे स्वतन्त्रता-संग्राम का भी जो चित्र आया है वह 'गबन' मे अपना अलग महत्व रखता है।

कुल मिलाकर 'गबन' मे देशकाल की उन सभी परिस्थितियो को पृष्ठभूमि के रूप मे लिया गया है जो उसके विस्तार-क्षेत्र के अतर्गत आती है तथा उस काल की महत्वपूर्ण समस्याओ के महत्व पूर्ण उत्तर भी दिए गए है। ये उत्तर कई प्रकार से दिए गए है। कुछ का स्पष्ट समाधान दे दिया गया है, कुछ का समाधान ध्वनित किया गया है। ये समाधान इतने स्थिति-सापेक्ष है कि हमारे सामाजिक जीवन के लिए आज भी हित कर हो सकते है।

शैली-शिल्प

प्रेमचंद ने पहली बार हिंदी को वह भाषा दी जो निराडंबर थी पर सप्राण थी, जनता से ली गयी थी पर साहित्यिक थी, जो अत्यंत सार्थक होते हुए भी जनसाधारण के लिए सुबोध थी। यदि कहा जाय कि खड़ी बोली को लेकर प्रेमचद ने वही काम किया जैसा तुलसीदास ने अवधी को लेकर किया था तो अनुचित न होगा। उत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषा के चलतेपन को आत्मसात करके साहित्यिकता का निर्वाह कर ले जाना एक बडी बात है। प्रेमचंद की भाषा और शैली की एक विशेषता यह भी है कि वह आयाससिद्ध नही है वरन नदी की तरह स्वतः प्रवाहिनी (Spontanious) है। इसीलिए प्रेमचंद के गद्य में कही-कही कविता का सा आनद आता है। उदाहरणार्थ "चैत्र की शीतल सुहावनी, स्फूर्तिमयी संध्या, गगा का तट, टेसुओं से लहलहाता हुआ ढाक का मैदान, बरगद का छतनार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गायें-भैंसें, कद्दू और लौकी की बेलों से लहराती हुई झोपडियाँ, न कहीं गर्द न गुबार, न शोर न गुल, सुख और शाति के लिए क्या इससे भी अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गगा लाल, काले, नीले आवरण से चमकती हुई, मन्द स्वरो में गाती, कही लपकती, कहीं झिझकती, कहीं चपल, कही गभीर अनन्त अन्धकार की ओर चली जा रही है, जैसे बहुरजित क्रीड़ा और विनोद की गोद में खेलती हुई, चिन्तामय, सघर्षमय, अधकारमय भविष्य की ओर चली जा रही हो।"[1] ऐसे स्थलों पर प्रेमचद भावुक हो गए है और उनका गद्य कवित्व-

---

१. गबन पृ० ३२७।

मय। रमा जब-जब उछ्‌वसित होकर जालपा से बात करता है तब-तब यह भावात्म-कता स्पष्ट हो जाती है। करुण प्रसगो के वर्णन में प्रेमचद की लेखनी जैसे भीग उठती है। जालपा और रमा के विछोह के समय का वर्णन, प्रेमचद ने किस कुशलता से किया है देखिए "जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले लगा लिया और इस तरह भेच भेच कर उससे आलिंगन करने लगा मानो यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता यही उसका अतिम आलिंगन हो। उसके करपाश मानो रेशम के सहस्रों तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गए थे। मानो कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुन्जी मुट्ठी में बंद किए हो और प्रतिक्षण मुट्ठी कठोर पडती जाती हो। क्या मुट्ठी को बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण न निकल जाएँगे।"[१] प्रेमचद का शब्द-शक्ति पर कितना सहज अधिकार था यह स्पष्ट हो जाता है। इन वर्णनो में कितनी गत्यात्मकता और सक्रियता है!

प्रेमचद की शैली अनेक स्थलो पर विवेचनात्मक होती है "जालपा ने सोचा दुनिया कैसी अपने राग-रग में मस्त है। जिसे उसके लिए मरना हो मरे, वह अपनी टेक न छोडेगी। हर एक अपना मिट्टी का घरौदा बनाए बैठा है। देश वह जाय उसे परवाह नहीं, उसका घरौदा बचा रहे। उसके स्वार्थ में बाधा न पडे।"[२] इसप्रकार प्रेमचद ने पात्रो के जीवन-अनुभवो को अनेक स्थानो पर सार्व-भौम रूप दिया है।

प्रेमचंद ने अपनी भाषा का विन्यास पात्रो के व्यक्तित्व के अनुसार ही किया है। यदि कोई पात्र हँसमुख है तो उसके मुख से निःसृत शब्दावली भी कुछ ऐसी होगी कि बिना आनद आए नहीं रहेगा। उदाहरणार्थ, "माघ का स्नान भी तो करूँगा। कष्ट के बिना कहीं पुन्न होता है। मैं तो कहता हूँ तुम भी चलो। मैं वहाँ सब रंग-ढ ग देख लूँगा। अगर देखना कि मामला **टिचन** है तो, चैन से घर चले जाना। कोई खटका मालूम हो तो मेरे साथ लौट आना।"[३] इसी प्रकार इदुभूषण का हर कथन बातूनी वकील को सामने लाता है।

प्रेमचद ने शब्दो को तोड़ मरोड़ा भी है। यह तोड़-मरोड़ अधिकतर ग्रामीण

---

१. 'गबन' पृ० १३३। २. वही पृ० २८२। ३. वही पृ० १६६।

या अल्पशिक्षित पात्रों के मुँह से होती है। जैसे देवीदीन 'जैसा' को 'जौन सा' कहता है। कहार—'पृथ्वी' को 'पिरथी' कहता है। प्रेमचद के वाक्य भी तोड़े गए हैं। पर यह तोड़ अल्प हिंदीभाषी पात्रों के मुख से ही हुई है। प्रेमचद ने, जैसा कि कहा जा चुका है, उर्दू और अंग्रेजी के चालू शब्दों को जो कि हिंदी तत्सम ,शब्दों से अधिक जन-जिह्वा पर उतर चुके हैं—अपनाया है। इन सबसे भाषा की पाचन-शक्ति का विकास हुआ है।

प्रेमचद की शैली के प्रभावशाली होने के दो-तीन प्रमुख कारण और हैं। प्रथम यह कि उनके उपमाओं में बड़ी शक्ति है। हिंदी में सभवतः तुलसी के पश्चात प्रेमचद के इतना बड़ा उपमा बाँधने वाला लेखक नहीं मिलता। सटीक उपमाएँ देना वस्तुतः विशाल जीवनानुभव की अपेक्षा रखती है। प्रेमचद इसके धनी थे। उदाहरण स्वरूप "अब इस नए चद्रहार के सामने उसकी (पुराने बिल्लौरी हार की) चमक उसी भाँति मन्द पड़ गयी थी जैसे इस निर्मल ज्योति के आगे तारों का आलोक। उसने उस नकली हार को तोड़ डाला और उसके दानों को नीचे गली में फेक दिया, उसी भाँति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद -कोई उपासक मिट्टी की पार्थिवी को जल मे विसर्जित कर देता है।"[1] पद-पद पर प्रेमचद ऐसी ऐसी उपमाएँ प्रस्तुत करते है कि उपमेय निर्भ्रान्त रूप से सामने आ जाता है।

दूसरा कारण है मुहावरों का प्रयोग। मुहावरों और कहावतों से भी प्रेमचद ने भाषा की व्यंजनाशक्ति को बढ़ाया है इसमें सदेह नही। पर मुहावरों का इतना विशाल ज्ञान और उनका सटीक प्रयोग सबके बूते का काम नहीं है। यह लोकोक्तियाँ लोकचित्त में पनपती हुई वाणी की परिपक्वता की वक्र सूत्र हैं। 'गबन' इन लोकोक्तियों से पूर्ण है। उदाहरणार्थ, बँधा हुआ घोड़ा थान से खुलना, दमड़ी की हँडिया खोकर कुत्ते की जात पहचानना आदि।

प्रेमचद ने घटने वाली घटनाओं की अग्रसूचना देने की भी विधि अपनाई है। अग्रसूचनाएँ अक्सर उन घटनाओं के पूर्व हैं जिनके अकस्मात घटने से पाठक के चित्त को झटका लग सकता है। यह अग्रसूचनाएँ स्वप्न, निद्रावस्था

---

१. गबन पृ० ६१।

मे बडबडाने तथा उपन्यासकार के स्वकथन के रूप मे आई है। रमा के गबन के पूर्व ही जालपा ने उसको हथकडी-बेडी मे बँधकर जेल जाते हुए स्वप्न मे देखा था। घर लौटने के पूर्व रमा एक दिन नींद मे बडबडाता है "अम्मा कहे देता हूँ फिर मेरा मुँह न देखोगी मै डूब मरूँगा।"[1] इन्दुभूषण के बीमार होकर कलकत्ता जाने से पहले जालपा का रतन से मिलन का वर्णन उपन्यासकार ने इन शब्दो मे किया है "विधि अतरिक्ष मे बैठी हँस रही थी। जालपा मन मे मुस्करायी। जिस बीमारी की जड जवानी मे न टूटी बुढापे मे क्या टूटेगी लेकिन इस महिला से सहानुभूति न रखना असभव था।"[2] अततः हम देखते है कि विधि ने अतरिक्ष मे बैठकर व्यग्यहास किया और इदुभूषण का देहावसान हो गया।

अत मे, प्रेमचद के भाषाधिकार के पीछे जो सबसे बडी बात थी वह यह कि उनके पास कहने के लिए बहुत कुछ था। भाषागत श्रेष्ठ गुण उनकी रचनाओ मे स्वयमागत है। इसीलिए उनकी प्रारभिक रचनाओं में भाषा का अनगढ-पन और शैली की शिथिलता है। पर 'गबन' इन दोषो से मुक्त होकर 'गोदान' के भाषाकार प्रेमचद की सूचना देता है

× × ×

'गबन' की वर्णन-शैली

प्रेमचद वस्तुतः 'वर्णन' (narration) के उपन्यासकार है। वे अपने वर्णनो मे इतनी कुशलता से रग भरते है कि वर्ण्य-वस्तु साकार हो उठती है। कथोपकथन की कला मे पूर्ण अधिकार रखते हुए भी प्रेमचद ने वर्णनो मे ही मन लगाया है। वस्तु-वर्णन ही नहीं, प्रेमचद मन. स्थिति-वर्णन, प्रकृति-वर्णन सभी मे समान विशेषताएँ रखते है।

वर्णन की कला

वस्तु-वर्णन के क्षेत्र मे प्रेमचद अकेले है। चाहे चौपाल का दृश्य हो चाहे कुजडे की दूकान का, चाहे सराफो की दूकान का हो चाहे विवाह मडप का, चाहे चुगीकचहरी का हो चाहे न्यायालय का, चाहे पुलिस थाने का हो चाहे स्टेशन का, प्रेमचद इन सबका वर्णन इतने कम शब्दो मे इतनी सधी हुई कलम

१. गबन, पृ० ११२। २. वही पृ० १८७।

से करते हैं कि पूरा चित्र सामने आ जाता है। वस्तु-वर्णन मे अधिकाश लेखकों मे यह दोष अक्सर आ जाता है कि दृश्य के फालतू अगो का भी वर्णन हो जाता है। ऐसे वर्णनो को Superfluous कहते है। प्रेमचद इन वर्णनो से बचे हैं। उदाहरण स्वरूप—

"शहरो मे ऐसी घटनाएँ मदारियो के तमाशो से भी ज्यादा मनोरजक होती हैं। सैकडो आदमी जमा हो गए। देवीदीन इसी समय अफीम लेकर आ रहा था, जमाव देखकर वह भी आ गया। देखा कि तीन कासटेबुल रमानाथ को घसीटे लिए जा रहे है।"[1]

इस वर्णन के प्रथम पक्ति से लेखक ने जितना बडा दृश्य खडा किया है वह औसत लेखक के वश के बाहर की बात है। इसप्रकार के वस्तुवर्णन की कला श्रेष्ठ उपन्यासकारो मे ही मिलती है। वे, चाहे प्रकृति-वर्णन हो चाहे मनःस्थिति-वर्णन हो सबको कम से कम शब्दो मे व्यक्त करने की कोशिश करते है। उदाहरण के लिए देखिएः—"देवीदीन ने **आधारहीन साहस** के भाव से कहा—मुझसे रोब न जमाओ पाड़े, समझे। यहाँ धमकियो मे नही आने के।" इसीप्रकार कही-कही 'कातर नेत्र,' 'प्रश्न भरी आँखे,' 'खुश खुश चक्की पर पीसना' 'गर्वमय हर्ष' आदि शब्द अत्यत भावगुफित शब्दावली के रूप मे मिलते है।

पूरी की पूरी पृष्ठभूमि को अत्यन्त थोडे मे दे देना प्रथम-श्रेणी के वर्णन-कौशल का द्योतक है।

"सध्या हो गयी थी। म्युनिस्पैलिटी के अहाते मे सन्नाटा छा गया था। कर्मचारी एक एक करके जा रहे थे। मेहतर कमरो मे झाडू लगा रहा था। चपरासियों ने जूते पहनना शुरू कर दिया। खोंचेवाले दिन भर की बिक्री के पैसे गिन रहे थे, पर रमानाथ कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था।"[2]

प्रतीको का चयन इस वर्णन-कौशल मे बडा सहायक होता है। प्रेमचद ने प्रतीको का पर्याप्त प्रयोग किया है। ऊपर के उदाहरण मे 'चपरासियो के जूते पहनने' के प्रतीक से लेखक ने दफ्तर के बिलकुल बद होने का पूरा सकेत कर दिया।

---

१. गबन पृ० २१६। २. वही पृ० १००।

इन वर्णनों की एक विशेषता प्रेमचंद मे यह भी लक्षित होती है कि वे वर्णन से सूत्र या सूक्तियाँ निकाल लेते है। उदाहरण के लिए—

(१) "बहुधा हमारे जीवन पर उन्ही के हाथो कठोरतम आघात होता है जो हमारे सच्चे हितैषी होते है।"

(२) बीमार के साथ वाले भी बीमार होते हैं। उदासो के लिए स्वर्ग भी उदास है।"[1]

(३) मन की एक दशा वह भी होती है जब आँखे खुली होती है और कुछ नही सूझता, कान खुले रहते है और कुछ सुनाई नही पड़ता।"[2] इत्यादि।

इन वर्णनो में अक्सर चिन्तनशीलता और परिस्थिति के अनुसार गत्यात्मकता तथा स्थिरता के वर्णन भी मिलते है। गतिशीलता का एक चित्र लें—

"वह बड़ी तेजी से नीचे उतरी। उसे विश्वास था कि वह नीचे बैठे हुए इन्तजार कर रहे होगे। कमरे मे आयी तो उनका पता न था। साइकिल रखी हुई थी, तुरन्त दरवाजे से झाँका। सड़क पर भी पता न था। कहाँ चले गए? सड़क पर आकर एक ताँगा किया, और कोचवान से कहा चुगी कचहरी चलो। रास्ते मे दोनो तरफ बड़े ध्यान से देखती जाती थी। क्या इतनी जल्द इतनी दूर निकल आये? शायद देर हो जाने के कारण वह भी आज ताँगे ही पर गए हैं। .... कोचवान से बार बार घोड़ा तेज करने को कहती।"[3] इत्यादि

तीसरी विशेषता यह है कि इन चित्रों मे रग भरने के लिए प्रेमचद अक्सर सहज अलकारो का प्रयोग करते हैं। उदाहरण स्वरूप—

(१) "रतन के बंगले पर आज बड़ी बहार थी। वहाँ नित्य ही कोई न कोई उत्सव, दावत, पार्टी होती रहती थी। रतन का एकान्त नीरस जीवन इन विषयो की ओर उसी भाँति लपकता था जैसे प्यासा पानी की ओर लपकता है।"[4]

(२) रमा के मनोल्लास की इस समय सीमा न थी, किन्तु यह विशुद्ध

---

१. गबन पृ० २३४। २. वही पृ० १००। ३. वही पृ० १४२। ४. वही पृ० १३३।

इन वर्णनों की एक विशेषता प्रेमचंद में यह भी लक्षित होती है कि वे वर्णन से सूत्र या सूक्तियाँ निकाल लेते हैं। उदाहरण के लिए—

(१) "बहुधा हमारे जीवन पर उन्हीं के हाथो कठोरतम आघात होता है जो हमारे सच्चे हितैषी होते है।"

(२) बीमार के साथ वाले भी बीमार होते हैं। उदासो के लिए स्वर्ग भी उदास है।"[1]

(३) मन की एक दशा वह भी होती है जब आँखे खुली होती है और कुछ नहीं सूझता, कान खुले रहते है और कुछ सुनाई नहीं पड़ता।"[2] इत्यादि।

इन वर्णनो में अक्सर चिन्तनशीलता और परिस्थिति के अनुसार गत्यात्मकता तथा स्थिरता के वर्णन भी मिलते हैं। गतिशीलता का एक चित्र ले—

"वह बड़ी तेजी से नीचे उतरी। उसे विश्वास था कि वह नीचे बैठे हुए इन्तजार कर रहे होंगे। कमरे में आयी तो उनका पता न था। साइकिल रखी हुई थी, तुरन्त दरवाजे से झाँका। सड़क पर भी पता न था। कहाँ चले गए? सड़क पर आकर एक ताँगा किया, और कोचवान से कहा चुगी कचहरी चलो। रास्ते में दोनो तरफ बड़े ध्यान से देखती जाती थी। क्या इतनी जल्द इतनी दूर निकल आये? शायद देर हो जाने के कारण वह भी आज ताँगे ही पर गए हैं। .... कोचवान से बार बार घोड़ा तेज करने को कहती।"[3] इत्यादि

तीसरी विशेषता यह है कि इन चित्रो में रग भरने के लिए प्रेमचद अक्सर सहज अलकारो का प्रयोग करते है। उदाहरण स्वरूप—

(१) "रतन के बगले पर आज बड़ी बहार थी। वहाँ नित्य ही कोई न कोई उत्सव, दावत, पार्टी होती रहती थी। रतन का एकान्त नीरस जीवन इन विषयों की ओर उसी भाँति लपकता था जैसे प्यासा पानी की ओर लपकता है।"[4]

(२) रमा के मनोल्लास की इस समय सीमा न थी, किन्तु यह विशुद्ध

---

१. गबन पृ० २३४। २. वही पृ० १००। ३. वही पृ० १४२। ४. वही पृ० १३३।

होती थी कि जो एक बार यहॉ चाय पी लेता वह फिर दूसरी दूकान पर नहीं जाता। रमा ने मनोरजन की भी कुछ सामग्री जमा कर दी। कुछ रुपये जमा हो गये, तो उसने सुन्दर मेज ली। चिराग जलने के बाद साग भॉजी की बिक्री ज्यादा न होती थी। वह उन टोकरो को उठाकर अन्दर रख देता और बरामदे मे वह मेज लगा देता। उस पर ताश के सेट रख देता। दो दैनिक पत्र भी मॅगाने लगा। दूकान चल निकली।"[1]

(२) भाव-व्यंजना

भाव-व्यंजना के भी तीन रूप मिलते है:—

अ—आह्लाद से प्रभावित भाव-व्यजना—

"जालपा के लिए इन चीजो मे लेशमात्र भी आकर्षण न था। हॉ, वह वर को एक ऑख देखना चाहती थी। वह भी सबसे छिपाकर, पर उस भीड़ भाड़ मे ऐसा अवसर कहॉ। द्वार-चार के समय उसकी सखियॉ उसे छत पर खींच ले गयी और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता मानो छूमन्तर हो गयी थी। मुॅह पर हर्ष की लालिमा छा गयी। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।"[2]

ब—दुःख से प्रभावित भाव-व्यजना—

"कमरे के सारे मुसाफिर आपस मे कानाफूसी करने लगे। तीसरा दरजा था। अधिकाश मजूर बैठे हुए थे। जो मजूरी की टोह मे पूरब जा रहे थे। वे एक बाबू जाति के प्राणी को इस भॉति अपमानित होते देखकर आनन्द पा रहे थे। शायद टिकट बाबू ने रमा को धक्के देकर उतार दिया होता तो और भी खुश होते। रमा को जीवन मे कभी इतनी झेप नही हुई थी। चुपचाप सिर झुकाए खडा था। अभी तो जीवन की इस नयी यात्रा का आरम्भ हुआ है। न जाने आगे क्या क्या विपत्तियॉ झेलनी पड़ेगी। किस किस के हाथो धोखा खाना पड़ेगा। उसके जी मे आया—गाडी से कूद पडे, इस छीछालेदर से तो मर जाना ही अच्छा। उसकी ऑखे भर आयी, उसने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया और रोने लगा।"[3]

---

१. गबन पृ० २१२। २. वही पृ० १०। ३. वही पृ० १३७।

स—दुःख और सुख दोनों से मिश्रित परिस्थितियों से प्रभावित भाव-व्यंजना—

(१) "जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले से लगा लिया और इस तरह से भेंच-भेंचकर उससे आलिंगन करने लगा, मानो यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है यही उसका अंतिम आलिंगन हो। उसके करपाश मानो रेशम के सहस्रों तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गए थे। मानो कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुंजी मुट्ठी में बन्द किए हो, और प्रतिक्षण मुट्ठी कठोर पड़ती जाती हो। क्या-मुट्ठी को बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण न निकल जाएँगे।"[१]

(२) "जालपा भी जाँत पर जा बैठी और दोनों जाँत का यह गीत गाने लगीं:—

"मोहि जोगन बना के कहाँ गए, रे जोगिया।"

दोनों के स्वर मधुर थे। जाँत की घुमर घुमर उनके स्वर के साथ साज का काम कर रही थी। जब दोनों एक कड़ी गाकर चुप हो जाती तो जाँत का स्वर मानो कंठ-ध्वनि से रंजित होकर और भी मनोहर हो जाता था। दोनों के हृदय इस समय जीवन के स्वाभाविक आनंद से पूर्ण थे—न शोक का भार था न वियोग का दुःख। जैसे दो चिड़ियाँ प्रभात की अपूर्व शोभा से मग्न होकर चहक रही हों।[२]"

यहाँ प्रेमचंद ने यद्यपि स्वाभाविक आनंद का उल्लेख किया है और मिश्रण का निषेध किया है फिर भी "मोहि जोगन बना के कहाँ गए रे जोगिया" वाली पंक्ति से एक ऐसी कसक उत्पन्न होती है कि इसे मिश्रण ही मानना होगा। इसी प्रकार दो विरोधी स्थितियों के टक्कर का वर्णन भी प्रेमचंद ने कुशलतापूर्वक किया है। जिस समय कचहरी में जालपा के सीख के विरुद्ध बयान देने के बाद रमानाथ उसे आभूषण देने एक देशद्रोही बनकर आता है उस समय देश-भक्त जालपा के स्वागत का वर्णन बड़ा ही कौशलपूर्ण है।[3]

---

१. 'गबन' पृ० १३३। २. वही पृ० २१२। ३. देखिए डा० रामविलास शर्मा का 'प्रेमचंद और उनका युग'।

(३) मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

अंतर्द्वन्द्व-अंकन के लिए मनोविज्ञान की अपेक्षा होती है। 'गवन' इस दृष्टि से भी हीन नहीं है। प्रेमचद की कृति का आधार ही यही था कि मनुष्य अपनी समस्त मानसिक और सामाजिक स्वाभाविकता के साथ साहित्य में जन्म ले, बढ़े और अस्त हो। 'गवन' मे मनोविश्लेषणात्मक वर्णनो का प्रचुर आग्रह है। यह अवश्य है कि साप्रतिक उपन्यासों की तरह इसमें केवल मनोविश्लेषण पर ही बल न देकर उपन्यास के सभी तत्वो पर तुल्य बल दिया गया है। लेकिन फिर भी गवन चित्रित परिस्थितियो मे अपेक्षित अतर्द्वन्द्व के अकन से हमे निराश नहीं करता। यद्यपि रमा को अपने दोषो के कारण ही विपत्ति मोल लेनी पडी फिर भी जालपा रमा के चले जाने के पश्चात् सारी गलती अपनी ही स्वीकार करती है। उसका मंथन देखिए "आज उसके मन ने पहली बार स्वीकार किया कि यह सब उसी की करनी का फल है। यह सच है कि उसने आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया, लेकिन उसने स्पष्ट रूप से कभी मना भी नहीं किया। अगर गहने चोरी हो जाने के बाद वह इतनी अधीर न हो गयी होती तो आज यह दिन क्यों आता। मन की इस दुर्बल अवस्था मे जालपा अपने भार से अधिक भाग अपने ऊपर लेने लगी......"[१] इसीप्रकार वह दूर तक सोचती चली जाती है।

कभी-कभी उपन्यासकार मनोगत भावो को मुद्रागत अनुभावो (चेष्टाओ) से अभिव्यक्त करता है।

"रतन ने दवा निकाली और उन्हे उठाकर पिलायी। इस समय वह न जाने कुछ भयभीत-सी हो रही थी। एक अव्यक्त अस्पष्ट शका उसके हृदय को दबाए हुए थी।

"एकाएक उसने कहा—उन लोगों मे से किसी को तार दूँ।

"वकील साहब ने **प्रश्न की आँखों से देखा**। फिर आप ही आप उसका आशय समझकर बोले—नहीं नहीं, किसी को बुलाने की जरूरत नहीं। मै अच्छा हो रहा हूँ।

"फिर एक क्षण बाद सावधान होने की चेष्टा करके बोले—मै चाहता हूँ कि अपनी वसीयत लिखवा दूँ।

---

१. गवन पृ० १३६।

"जैसे एक शीतल तीव्र बाण रतन के पैर से घुसकर सिर से निकल गया, मानो उसकी देह के सारे बधन खुल गए, सारे अवयव बिखर गए। उसके मस्तिष्क के सारे परिमाणु हवा में उड़ गए, मानो नीचे से धरती निकल गयी ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निस्पंद, निर्जीव खड़ी है। अवरुद्ध, अश्रुकंपित कंठ से बोली घर से किसी को बुलाऊँ? यहाँ किससे सलाह की जाय? कोई भी तो अपना नहीं है।"

यह पक्तियाँ प्रेमचद के उस मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रतिनिधि है जिनका विकास आधुनिकतम मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारो जैनेन्द्र आदि मे हुआ है। यदि खोजा जाय तो नवीन कला की बारीकियो को भी प्रेमचद के उपन्यासो मे पर्याप्त मात्रा मे पाया जा सकता है।

(४) प्रकृति-चित्रण

'गबन' मे प्रकृति-चित्रण के प्रसग गिने चुने मिलते है। वस्तुतः प्रकृति चित्रण आज शुद्ध काव्य का विषय बनता जा रहा है। उपन्यास और कहानियो मे प्रकृति को उतना ही आने दिया जाता है जितने से पृष्ठ-भूमि तैयार हो सके या किसी वर्णन को प्रभावशाली बनाने मे मदद मिल सके। इससे अधिक प्रकृति वर्णन व्यर्थ समझा जाता है। 'गबन' के यह कतिपय प्रकृति-चित्रण तीन शीर्षको मे विभाजित किए जा सकते है। :—

अ—शुद्ध प्रकृति-चित्रण—

(१) "चैत्र की शीतल सुहावनी, स्फूर्तिमयी सध्या, गगा का तट, टेसुओ से लहलहाता ढाक का मैदान, बरगद का छतनार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गायें-भैसे, कद्दू और लौकी से लहराती झोपड़ियाँ, न कही गर्द न गुबार, न शोर न गुल, सुख और शाति के लिए क्या कोई इससे भी अच्छी जगह हो सकती है। नीचे स्वर्णमयी गगा, लाल, काले, नीले आवरण मे चमकती हुई, मन्द स्वरो मे गाती, कही लपकती, कही झिझकती, कही चपल, कही गंभीर अनन्त अधकार की ओर चली जा रही है, जैसे बहुरजित बालस्मृति, क्रीडा और विनोद की गोद

मे खेलती हुई, चितामय, संघर्षमय, अन्धकारमय भविष्य की ओर चली जा रही हो।"[1]

(२) "भादो का महीना था। पृथ्वी और जल मे रण छिड़ा हुआ था। जल की सेनाएँ वायुयान पर चढकर आकाश से जल शरो की वर्षा कर रही थीं। उसकी थल सेनाओ ने पृथ्वी पर उत्पात मचा रखा था। गंगा गॉवो और कस्बो को निगल रही थी। गॉव के गॉव बहते चले जाते थे। लहरे उन्मत्त होकर गरजती मुँह से फेन निकालती, कभी एक कदम आगे आती फिर पीछे लौट पडती, चक्कर खा फिर आगे लपकती। कही कोई झोपडा डगमगाता तेजी से बहा जा रहा था, मानो कोई शराबी दौडा जाता है। कही कोई वृक्ष डाल-पत्तो समेत डूबता उतराता, किसी पाषाण-युग के जतु की भॉति तैरता चला जाता था। गाये और भैसें, तख्ते मानो तिलस्मी चित्रो की भॉति ऑखो के सामने से निकल जाते थे।"[2]

इन प्रकृति-चित्रो का उपयोग पृष्ठभूमि के लिए ही किया गया है। इन चित्रो की विशेषता है इनकी सश्लिष्टता, इनकी सूक्ष्मता और इनकी कवित्वमयता।

ब—पात्रों की मानसिक स्थिति के प्रतिबिब के रूप में प्रकृति—

"क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जल-शून्य टुकड़े कभी कभी आकाश मे दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघ खडो की किलोले देख रही थी। चिन्ता व्यथित प्राणियो के लिए इससे अधिक मनोरजन की वस्तु ही कौन है? बादल के टुकडे भॉति-भॉति के रग बदलते, भॉति-भॉति के रूप भरते। कभी आपस मे प्रेम से मिल जाते कभी रूठ कर अलग अलग हो जाते, कभी दौडने लगते, कभी ठिठक जाते। जालपा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे यही मेघ-क्रीडा देखते होगे। इस कल्पना मे उसे विचित्र आनद मिलता। किसी माली को अपने लगाये पौधो से, किसी बालक को अपने बनाए हुए घरौंदो से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाश-गामी जीवो से होता था। विपत्ति मे हमारा मन अतर्मुखी हो जाता है।"[3]

---

१. गबन पृ० ३२६-३२७। २. वही पृ० ३३०। ३. वही पृ० १५४।

इस प्रसंग को पढ़ते हुए हमे कालिदास के 'मेघदूत' का स्मरण आ जाता है।

स—सहानुभूतिशील प्रकृति—

प्रकृति-चित्रण की इस शैली का प्रयोग अंग्रेजी के रोमाटिक कवियो तथा छायावाद-युग के हिंदी कवियो ने खूब किया था। प्रेमचद ने भी ऐसे प्रकृति-चित्र दिए हैं:—

"सामने उद्यान मे चॉदनी कुहरे की चादर ओढ़े, जमीन पर पडी सिसक रही थी। फूल और पौधे मलिन-मुख सिर झुकाए आशा और भय से विकल होकर मानो उसके वक्ष पर हाथ रखते थे, उसकी शीतल देह को स्पर्श करते थे और आँसू की दो बूँदे गिरा कर फिर उसी भॉति देखने लगते थे।"[1]

(५) दार्शनिक वर्णन :—

(१) "मानव जीवन की सबसे महान घटना कितनी शाति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान अंग, वह महत्वाकाक्षाओ का प्रचण्ड सागर, वह उद्योग का अनन्त भडार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुख का लीला क्षेत्र, वह बुद्धि और बल की रगभूमि न जाने कब और कहॉ लीन हो जाती है? किसी को खबर नही होती। एक हिचकी भी नही, एक उछ्वास भी नही, एक आह भी नही निकलती। सागर की हिलोरो का कहॉ अत होता है? कौन बता सकता है? ध्वनि कहॉ वायुमय हो जाती है, कौन जानता है? मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा और क्या है? उसका अवसान भी उतना ही शात, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य है? भूतो के भक्त पूछते है क्या वस्तु निकल गयी? कोई विज्ञान का उपासक कहता है एक क्षीण ज्योति निकल जाती है। कपोल-विज्ञान के पुजारी कहते है, ऑखो से प्राण निकले, मुँह से निकले, ब्रह्माण्ड से निकले। कोई उनसे पूछे हिलोर उठते समय क्या चमक उठती है? ध्वनि लीन होते समय क्या मूर्तिमान हो जाती है। यह उस अनत यात्रा का एक विश्राम मात्र है जहॉ यात्रा का अन्त नही, नया उत्थान होता है।

कितना महान परिवर्तन है। वह जो मच्छर के डक को सहन न कर सकता

---

१. गबन पृ० १६२।

था अब उसे चाहे मिट्टी मे दबा दो, चाहे अग्नि चिता पर रख दो, उसके माथे पर बल तक न पडेगा।"[१]

(२) "दुनिया कैसी अपने रागरग मे मस्त है। जिसे उसके लिए मरना हो मरे वह अपनी टेक न छोड़ेगी। हर एक अपना छोटा-सा मिट्टी का घरौंदा बनाए बैठा है। देश बह जाय परवाह नही, उसका घरौंदा बचा रहे। उसके स्वार्थ मे बाधा न पड़े। इस जन-सागर मे छोटी छोटी कंकड़ियो के गिरने से एक हिल्कोरा भी नहीं उठता, आवाज तक नहीं आती।"[२]

इन वर्णनो मे प्रेमचद वस्तुतः एक दार्शनिक बनकर आते हैं—यही इन वर्णनो की सफलता है।

अंत मे फिर कह देना अनुचित न होगा कि प्रेमचद हिंदी की वर्णन-कला के श्रेष्ठ शिल्पी है।

———

१. गबन पृ० २०० । २. वही पृ० २९८।

उद्देश्य

गबन की रचना मूलतः आभूषण-प्रेम तथा तज्जनित दुष्परिणामो को लेकर आरम्भ हुई परन्तु उपन्यास की कथावस्तु आगे चलकर अन्य समस्याओ तथा उद्देश्यो को भी जन्म देने मे समर्थ हुई। अधिकतर उद्देश्य-प्रधान उपन्यासो मे यह बात आ जाती है। जिसप्रकार आनुषंगिक कथाएँ मूल कथा-वस्तु के साथ चलती रहती है उसी प्रकार आनुषगिक समस्याएँ और उनमे सन्निविष्ट उद्देश्य भी मूल समस्या के साथ चलते रहते हैं। उपन्यास की इस गति से उपन्यास की कोई हानि नही होती वरन् लाभ ही होता है। यदि वह बहुत सी समस्याओ और उसके पीछे रहने वाले उद्देश्यो की पूर्ति का निर्वाह कर सका तो उपन्यास-रचना अधिक गभीर और स्थायी महत्व की मानी जाती है।

'गबन' की मूल समस्या आभूषण-प्रेम है। यह आभूषण-प्रेम भारत के नारी समाज मे, क्या उच्चवर्ग, क्या मध्यवर्ग, क्या निम्नवर्ग, सब मे गहराई तक व्याप्त है। इस समस्या के कारण देश को बडी आर्थिक हानि होती है। इसके अतिरिक्त दरिद्र देश के दरिद्र जनवर्ग के लिए—जिसके लिए दोनो समय का भोजन जुटाना भी कठिन होता है—इतने मूल्य के गहनो का पहनना-खरीदना एक प्रकार से अपनी बरबादी को बुलाना है। प्रेमचद ने गबन मे रमेश बाबू के मुख से अपने इस सम्बन्ध के विचार प्रगट किए है। "......भविष्य के भरोसे पर चाहे जो काम करो लेकिन कर्ज कभी मत लो। गहनो का मरज न जाने इस दरिद्र देश मे कैसे फैल गया।......उन्नत देशो मे धन व्यापार मे लगता है जिससे लोगों की परवरिश होती है और धन बढ़ता है।

यहाँ धन शृंगार में खर्च होता है, उससे उन्नति और उपकार की जो महान शक्तियाँ हैं, उन दोनों का ही अंत हो जाता है। बस यही समझ लो कि जिस देश में लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहाँ जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा।"[१] स्पष्ट है कि आभूषणों से एक ओर कर्ज की समस्या सामने आती है दूसरी ओर धन के निष्क्रिय संचय (Hoarded money) की। कर्ज की समस्या यहाँ तक अपने पैर फैलाती है कि कर्ज लेने वाले को आत्महत्या और गबन तक करने पड़ते और इन अपराधों का प्रायश्चित किस रूप में करना पड़ता है यह हम जानते ही हैं। 'गबन' में उच्चवर्ग की रतन, मध्यवर्ग की जालपा, मानकी और रामेश्वरी, निम्नवर्ग की जग्गो सभी आभूषणों के प्रेमी हैं। सबके पति, एक दयानाथ को छोड़कर आभूषण का प्रबन्ध, कर्ज, चोरी, कमाई जैसे भी हो सकता है करते हैं। परिणाम यह होता है कि उच्चवर्ग या उच्च-मध्यमवर्ग की रतन के अतिरिक्त शेष वर्ग के लोगों यथा रमानाथ और देवीदीन को जेल काटना पड़ता है। दोनों गबन करते हैं। प्रेमचंद का यह निश्चित मत ध्वनित होता है कि इस आभूषण के खरीदने से (१) दरिद्र लोगों को बहुत से दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं तथा (२) धन निष्क्रिय रूप से संचित (Hoard) होकर अनुत्पादन-शील (unproductive) हो जाता है, और परिवार की तो आर्थिक हानि होती ही है, राष्ट्रीय धन (National wealth) में भी कमी आ जाती है। इसलिए दरिद्र जनवर्ग ही नहीं उच्चजनवर्ग भी आभूषण-प्रेम को प्रश्रय न दे। प्रेमचंद ने तो स्पष्टतः आभूषण प्रेमियों को मूर्ख कहा है।

प्रेमचंद का दूसरा उद्देश्य था साम्राज्यशाही के संचालक पुलिस अधिकारियों के दुष्कर्मों का पर्दाफाश और इस प्रकार भारतवर्ष में ब्रिटिश तानाशाही की जड़ें कमजोर करना। प्रेमचंद इस समस्या को उसकी संपूर्णता में चित्रित कर सके हैं इसमें संदेह नहीं।[२]

गबन-लेखन का तीसरा उद्देश्य है प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कुपरिणामों को दिखाकर इस प्रवृत्ति को रोकना। रमानाथ के विवाह में वह और उसके सम्ब-

---

१. गबन पृ० ५३। २. वही पृ० १७४।

धियो ने जी खोलकर खर्च किया जिसका परिणाम यह हुआ कि पति को प्रिया के गहने चुराने पडे। प्रदर्शन की ही प्रवृत्ति का परिणाम था कि पति पत्नी से अपनी स्थितियो को छिपाते छिपाते अपने विनाश को बुलाता है। प्रेमचंद ने यह ध्वनित किया है कि इस अनिष्टकर प्रवृत्ति को उच्छिन्न करना ही चाहिए।

चौथा उद्देश्य है वृद्ध-विवाह की प्रथा का उच्छेद तथा विधवा स्त्री के संपत्ति संबन्धी अधिकारो का पोषण। रतन की परिस्थितियाँ इन दो दृष्टियो से उत्सृष्ट हुई हैं।

प्रेमचद का पॉचवा उद्देश्य था धूर्त नेताओ से स्वतत्रता के पवित्र सिपाहियों का साथ छुड़ाना। इसका पूर्ण सकेत देवीदीन के स्वतत्रता-सग्राम सबंधी ससमरणों के व्याख्यान मे मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रेमचद राजनीति मे रोने और झूठी धमकियो को भी व्यर्थ समझते थे। वे स्पष्ट कहते है "जिस धमकी मे कुछ दम नहीं है उस धमकी की परवाह कौन करता है।"[१] वे अन्यत्र कहते है "जो अपने हित के लिए दूसरो का गला काटे उसको जहर देने मे भी पाप नही है।" इस प्रकार प्रेमचद एक सक्रिय और जोरदार क्राति की माग करते हैं जो औपचारिकता से हटकर अग्रेजी शासन जैसी निरकुश सत्ताओ को हिला सके।

छठे उद्देश्य के रूप मे हम जोहरा की परिणतियो के निष्कर्ष को ले सकते हैं। जोहरा की परिणतियो के पीछे प्रेमचद का उद्देश्य सभवतः यह दिखाना था कि एक मर्यादा-भ्रष्ट नारी भी पुरुष का निश्छल प्यार पाने और अच्छी बनने की लालसा रखती है। यदि उसे रमा जैसा कोई प्रेमी मिल जाय और जालपा जैसी निर्देशिका मिल जाय तो वह रतन जैसी पीडिता बहन की पूर्ण सेवा कर सकती है।

गबन की अतिम परिणति अर्थात सभी पात्रो को लेकर एक श्रममूलक गृहस्थी की स्थापना—सातवे उद्देश्य के रूप मे ली जा सकती है। यह 'श्रममूलक ग्रामोद्योग' तथा 'गॉव की ओर लौटो' का सदेश प्रेमचंद ने सभवतः युगीन समस्याओ का खासा हल समझा है। यह सदेश गाधी और इग्लैंड के रस्किनवादी विचारकों

---

२. देखिए इसी पुस्तक मे 'देश-काल-चित्रण' शीर्षक अध्याय पृ० १२५-२६।

का था। इस उद्देश्य मे कितनी स्वाभाविकता और समस्या के हल करने की कितनी व्यावहारिक क्षमता है यह हम आगे लिखेंगे।[1]

उपरोक्त सभी उद्देश्य 'गबन' के अत्यत व्यक्त उद्देश्य है। पर इन सभी व्यक्त उद्देश्यों को स्पष्ट करने वाले घटना-प्रवाह मे से जो दम्पतियो के जीवन निकलते हैं उनसे भी एक निश्चित आग्रह स्पष्ट होता है। एक जगह प्रेमचद ने लिखा है "अनुराग यौवन या रुपये या घर से उत्पन्न नहीं होता अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है।" इससे स्पष्ट है कि प्रेम उत्तर मे प्रेम का अभिलाषी है और किसी इतर वस्तु का नही। स्त्री-पुरुष के सबध की यह बड़ी ही दृढ़ भित्ति प्रेमचद ने स्थापित की है। पति वृद्ध ही क्यों न हो यदि वह एक तरुणी को प्रेम कर सकता है तो तरुणी भी उस पुरुष से प्रेम कर सकती है। इसके अतिरिक्त जालपा और रमा तथा जग्गो और देवीदीन के रूप मे प्रेमचंद ने जो प्रेम के सक्रिय रूप का आदर्श रखा है वह भी उनकी देन है। असल मे प्रेमचंद को भारतीय संस्कृति से बड़ा मोह था। भारतीय दाम्पत्य का आदर्श उनके इन्हीं प्रिय आदर्शों मे से एक था। उच्छृंखलता के वे विरोधी थे। 'गोदान' में भी प्रेमचद ने इस आदर्श को प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठित किया है। गबन मे प्रेमचंद ने यह भी दिखाया है कि पति यदि दाम्पत्य धर्म के आदर्शों को भंग करके पत्नी से कोई बात छिपाता है तो उसे उसका पूरा परिणाम भोगना पड़ता है।

---

१. देखिए इसी पुस्तक मे 'प्रेमचंद की कला' शीर्षक अध्याय पृ० १५३-५४।

प्रेमचंद की कला

हिंदी-साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल से लेकर भारतेंदु-युग तक के बीच का काल सामंती विलासिता की साहित्यिक अभिव्यक्ति का काल है। भारतेंदु-युग में भी यह सस्कार मिटे नही। इतना अवश्य हुआ कि साहित्य ने जनता के दुख दर्द को भी अपनी वाणी का एक विषय चुना पर पुराने साहित्यिक सस्कार मिट गए हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इन अमिट सस्कारो की चरम अभिव्यक्ति परवर्ती काल मे देवकीनदन खत्री के तिलस्माती उपन्यासो तथा किशोरीलाल गोस्वामी के रोमानी उपन्यासो मे हुई। इस कोटि के साहित्य-निर्माण मे अद्‌भुत-रस-प्रेम की तृति ही मुख्य थी, इनसे जीवन बिलकुल असपर्कित था। इस प्रकार के साहित्य मे कथा और जीवन दोनो प्रायः दो विरोधी तत्व थे। कवियो पर भी व्यक्तिवाद का रग चढ़ा हुआ था। काव्य का विषय एक हलकी श्रेणी के स्त्री-पुरुष का प्रेम ही था। हिंदी और उर्दू दोनो भाषाओ के साहित्य मे साधारण जीवन का सामना करने, उससे प्रभावित होने या उसे प्रभावित करने की शक्ति नही थी। इन विगत शताब्दियो के साहित्यकारो मे एक प्रकार के मानसिक और बौद्धिक ह्रास (Decadence) के लक्षण आ गये थे।

प्रेमचंद ने तुलसीदास के पश्चात् पहली बार जीवन से असंपर्कित इस प्रकार की साहित्यिक परपरा को जन-जीवन से संपर्कित किया। जनता तथा समाज की सच्चाइयो से साहित्य को जोडा और साहित्य-देवता के हाथ मे सचमुच समाज और सभ्यता के सूत्र-सचालन की डोर थमाई। प्रेमचंद ने घोषणा की कि 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृति न मिले, हममे शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौदर्यप्रेम न जाग्रत हो—जो हममे सच्चा

सकल्प और कठिनाइयो पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमे उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयो का प्रकाश हो—जो हममे गति, सघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही क्योकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1] साहित्य की इतनी ऊँची परिभाषा इससे पहले कोई शास्त्रकार न दे सका था। इस प्रकार प्रेमचद ने ठीक अर्थों मे साहित्य की 'स्पिरिट' को समझा।

प्रेमचद कला को उपयोगितावाद की तुला पर तोलते थे उनका कथन था "मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। निःसदेह कला का उद्देश्य सौंदर्यवृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक आनद की कुंजी है पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनंद नहीं जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो। कलाकार अपनी कला से सौंदर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के उपयोगी बनाता है।"[2] इस सौंदर्य को भी प्रेमचद स्थिति-सापेक्ष मानते थे। वे कहते थे अमीरो का विलासिता से भरा सौंदर्य हमे अनपेक्षित है तथा अमीरों का पल्ला पकड़ कर झूलने वाले इस प्रकार के साहित्यकार भी हमे नहीं चाहिए। उन्होने जोर दिया हमे सौदर्य का मान बदलना होगा। हमे सुन्दर स्त्री मे ही सौंदर्य नहीं देखना होगा गरीबी की मारों से पीडित, दलित नारी मे भी सौंदर्य का साक्षात्कार करना होगा।[3] इस प्रकार, निश्चित रूप से, प्रेमचद ने हमारे सौंदर्य के मानदंड को बदल कर हमारे सौंदर्य-बोध (Aesthetic Sense) को परिष्कार की नई दिशा दी।

अपने समस्त साहित्य मे प्रेमचद ने अपनी कला-प्रवृत्ति के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य रखा। उनकी हर कलाकृति एक उद्देश्य से संचालित है। हमें पृथक पृथक कृतियों के उद्देश्य की छान-बीन नही करना है। पर प्रेमचंद का हर उद्देश्य आर्त

---

१. प्रगतिशील-लेखक-सघ के लखनऊ-अधिवेशन के सभापति-पद से दिया हुआ प्रेमचंद का भाषण।

२. 'कुछ विचार', पृ० १४। ३. वही, पृ० १५।

मानवता की उद्धार-कामना से अनुप्राणित है। अपने उच्च और स्वस्थ चिंतन के द्वारा प्रेमचद ने एक स्थल पर लिखा है—"जिस आदर्श को हमने सभ्यता के आरंभ से पाला है, जिसके लिए मनुष्य ने ईश्वर जाने कितनी कुरबानियाँ की है, जिसकी परिणति के लिए धर्मों का आविर्भाव हुआ है और मानव जाति का इतिहास जिस आदर्श की प्राप्ति का इतिहास है, उसे सर्वमान्य समझकर, अमिट समझ कर हमें उन्नति के मैदान में कदम रखना है। हमे एक ऐसे नए सगठन को सर्वांग-पूर्ण बनाना है, जहाँ समानता केवल नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर ले। हमारे साहित्य को उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।"[१]

प्रेमचद समाज के नैतिक बधनो के महत्व को भली भाँति समझ चुके थे। वे जानते थे कि नीतिशास्त्रियो की दुहाई समाज के बिगड़ते सतुलन को ठीक नही कर सकती क्योंकि उसे संगठन की शक्ति नही प्राप्त है। इसके अतिरिक्त वे उन कोडियो सामाजिक विधि-निषेधो से भी परिचित थे जो हमारे समाज के एक बड़े अग को उत्पीड़ित कर रहा है, जो न जाने कितने जघन्य अत्याचारो के मूल मे हैं। 'ठोस नए संगठन' की प्राप्ति की ओर प्रेमचद ने शुरू से ही कदम रखा। 'सेवा-सदन' का सेवा-सदन, 'प्रेमाश्रम' का प्रेमाश्रम, 'रंगभूमि' का दार्शनिक आशावाद, 'गबन' का श्रममूलक ग्राम्य संस्कृति की ओर प्रत्यावर्तन, 'कर्मभूमि' की राजनीतिक क्रांतियाँ सभी प्रेमचद की उस प्रतिभा की ओर इशारा करते हैं जो समाज के ठोस सामूहिक हल मे विश्वास करती थी।

अपने लक्ष्य को और स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद ने एक स्थान पर लिखा है "तब कुरुचि हमारे लिए सह्य न होगी तब हम उसकी जड़ खोदने के लिए कमर कसकर तैयार हो जायेंगे, हम जब ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेंगे कि हजारों आदमी कुछ अत्याचारियों की गुलामी करे, तभी हम केवल कागज के पृष्ठों पर सृष्टि करके ही सन्तुष्ट न हो जायेंगे, किन्तु उस विधान की सृष्टि करेंगे, जो सौंदर्य, सुरुचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो।"[२] इस प्रकार

---

१. कुछ विचार पृ० १५। २. वही पृ० १७।

प्रेमचंद उन अत्याचारियों के सबसे बड़े दुश्मन थे जो हजारों आदमियों को गुलाम बनाकर छोड़ते है चाहे वे साम्राज्यवादी हो या पूँजीपति।

प्रेमचंद पर अक्सर आक्षेप किया जाता है कि प्रेमचद मतवादो के चक्कर मे फँसे थे। पर सच यह है कि प्रेमचंद जीवन की सचाइयो और झुठाइयो के पारखी थे, समाज के ठोस सत्य को आगे बढ़ाने वाले थे। यदि इस कार्य मे वे किसी मतवाद की सीमा मे आ जाते थे या किसी मतवाद को अपनी सीमा मे पाकर उसे अपने अनुकूल पाते थे तो इसमे उनका कोई दोप नही है। पर यह समझना सबसे बड़ी भूल होगी कि वे किसी मतवाद से नियंत्रित होकर रचना करते थे या राजनीतिक आन्दोलनो की उद्धरणी भर करते थे। वे एक स्थान पर अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे लिखते है—"साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है।"[१]

यों प्रेमचंद उस साहित्य को क्षुद्र नहीं मानते जो किसी विचार-प्रचार के लिए लिखा जाता है। वे लिखते है "...... यह क्योंकर मान लिया जाय कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिए लिखा जाता है उसका महत्व क्षणिक होता है ? विक्टर ह्यूगो का 'ला मिजरेबुल', टाल्सटाय के अनेक ग्रन्थ, डिकेन्स की कितनी ही रचनाएँ विचार-प्रधान होते हुए भी उच्चकोटि की साहित्यिक है और अब तक उनका आकर्षण कम नही हुआ है। आज भी शा, वेल्स, आदि बडे-बडे लेखको के ग्रन्थ प्रचार ही के उद्देश्य से लिखे जाते हैं। हमारा ख्याल है कि क्यो न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करे जिसमे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का सघर्ष निभता रहे ? 'कला के लिए कला' का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते है कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनो मे जकडे हुए है, जिधर निगाह उठती है दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुणक्रन्दन सुनाई पड़ता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे ? हाँ, उपन्यासकार को इसका

---

१. कुछ विचार पृ० १७।

प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हो। उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पडने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायेगा।"[1] यद्यपि प्रेमचद यहाँ 'कला कला के लिए' वाले साहित्यिक व्यक्तिवादी मतवाद को ठीक से नही समझ सके है फिर भी उनका अभिप्रेत—कलात्मक ढग से समाज-निर्माण में उपन्यासकार का योग—स्पष्ट है।

प्रेमचद ने अपने 'उपन्यास' नामक निबध में अपनी कला को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' कहा है। प्रेमचद के समाने एक ओर यथार्थवाद का वह विकृत रूप (जिसे हम प्रकृतिवाद भी कहते हैं) था जिससे समाज का हित की अपेक्षा अहित अधिक होता था, दूसरी ओर आदर्शवाद की वह कला थी जिसमे पात्र सिद्धान्तो की मूर्ति बन जाते थे जिनमे जीवन का अभाव होता था। प्रेमचद को यथार्थ और आदर्श दोनो के ये अतिवादी पहलू अनुचित लगे। उन्होने उस यथार्थवाद को लिया जो हमारी कुप्रथाओ का पर्दाफाश करता है, हमारे वस्तु-जीवन के यथातथ्य चित्र अकित करता है और जो हममे कालुष्य के प्रति घृणा उत्पन्न करता है। उन्होने उस आदर्शवाद को भी लिया जो मनुष्य को उसके विजय की सास्कृतिक यात्रा मे बढ़ावा देता है। यथार्थ और आदर्श के इन दोनो सत्पक्षो को प्रेमचद ने मिश्रित करके आदर्श की ओर उन्मुख होने वाले 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की सृष्टि की।

पर क्रिया (Application) मे यह 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' प्रेमचंद की कृतियो की कला-ज्योति को मद ही कर सका है। उनके उपन्यासो की अतिम परिणतियाँ कला की दृष्टि से अक्सर हीन हो गयी है। 'सेवासदन' मे प्रेमचद अपनी मान्यता से विवश होकर 'सेवासदन' जैसा सुधारवादी सगठन करते है। 'प्रेमाश्रम' मे कुछ विरोधी पात्रो को बलात समाप्त करके 'प्रेमाश्रम' की स्थापना करते है। 'गबन' मे भी एक विचित्र परिणति आती है। कलकत्ते मे जमा हुआ देवीदीन, प्रयाग मे बसे हुए दयानाथ, रतन, कलकत्ते की जोहरा सभी एक नई देहाती गृहस्थी मे दिखलाई पडते हैं। यह एकीकरण लेखक की थोडी

---

१. प्रेमचद का 'उपन्यास' शीर्षक निबध द्रष्टव्य।

जबर्दस्ती सी लगती है। इस गृहस्थी का मूल उद्देश्य श्रमपरक ग्रामोद्योग है। इस परिणति का दूसरा संदेश लगता है गॉव की ओर लौटो (Return to Village)। यह परिवर्तन अपने मे कितना सुचिंतित और व्यावहारिक है—यह हमे सोचना चाहिए। वस्तुतः भारतीय गॉवो की साप्रतिक दुर्दशा मे, नगरो मे बसे हुए लोगो का गॉवों की ओर लौटना सभव नहीं है। फिर नागरिक जीवन और उद्योगों को क्यो छोडा जाय। मेरी समझ से 'गबन' की यह परिणति बहुत अस्वाभाविक है ऐसा हमारे वास्तविक जीवन मे नही होता। निश्चित ही ऐसा कुनबा कम जुड़ता है अगर इसके पीछे ऊपर वाली दार्शनिक भित्ति भी हो तो वह आज तक की ऐतिहासिक प्रगति और सामाजिक राजनीतिक स्थिति को देखते हुए ठीक नहीं।

अब प्रश्न है, श्रममूलक जीवन तथा ग्रामोद्योग हमारी समस्याओ को कहॉ तक सुलझाता है। निसदेह ग्रामोद्योग शताब्दियो से हमारे आर्थिक जीवन की भित्ति रही है और हमारे ग्रामीणो का आदर्श रहा है श्रममूलक जीवन। श्रममूलक जीवन की अपनी विशेषताएँ है। श्रममूलक जीवन—यदि इस श्रम का पूरा लाभ मिलता हो—सर्वोत्तम जीवन है। इस जीवन मे व्यर्थ की बातो मे मन कम उलझता है तथा श्रमकर्ताओ मे पारस्परिक सहानुभूति बनी रहती है। पर आभूषणप्रेम, या इस ढग की और समस्याओ का यह हल नही हो सकता है या हो भी सकता है तो थोड़ी दूर तक। इस लिए श्रममूलक जीवन मे उपन्यास के अत का उद्देश्य हम यही मान सकते है कि प्रेमचंद का लक्ष्य उपन्यास मे बिखरे हुए संघर्षशील पात्रो को एक आदर्श जीवन बिताने के लिए एकत्र कर देना ही था। इस विषय मे एक बात और। आज के वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगीकरण के युग मे ग्रामोद्योग को एकात प्रोत्साहन तथा नागरिक उद्योगो से एकदम परागमुखता का महत्व भी सदिग्ध ही है। हो सकता है कि प्रेमचद का यह अभिमत न हो पर उपन्यास मे आई परिणतियों का स्वाभाविक निष्कर्ष यही है जो कि प्रत्येक दृष्टि से अस्वाभाविक है।

प्रेमचद की कला की चरचा करते हुए हम 'गबन' के उद्देश्य की तफसील मे दूर तक चले गए। प्रकृत विषय यह है कि यह 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' हमारी उपन्यास-कला की कितनी संगति मे है। हिंदी के मान्य आलोचक आचार्य

पं० नददुलारे वाजपेयी का मत है कि किसी उपन्यास मे या तो यथार्थ वाद ही रह सकता है या आदर्शवाद ही ।[1] वाजपेयी जी की उक्ति से मै सहमत हूँ। प्रेमचद ने अपने उपन्यासो की जो अंतिम परिणतियॉ दिखलाई हैं वे "मानव जीवन के चित्र मात्र" से कुछ दूर पडती है ।

वस्तुतः यह सारी गडबडी इसलिए हुई थी कि तब तक सामाजिक यथार्थ का प्रकृत रूप सामने नही आया था । यथार्थवाद और प्रकृतिवाद (Naturlism) दोनो घुले मिले दिखलाई पडते थे । प्रेमचद जब यथार्थवाद के नग्न रूप से घृणा करते थे तो उनका मतलब इसी प्रकृतिवाद से था । जहॉ तक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का प्रश्न है हम यही कहेगे कि इस वाद का साहित्य मे आविर्भाव केवल प्रेमचद के साथ हुआ और वह भी उनकी एक असगति के रूप मे ही । वास्तविक यथार्थवाद अर्थात् देश-विशेष की पिछडी हुई आचार-परपरा और आगे बढ़ते हुए जीवन-मूल्यों के बीच उपस्थित व्यवधान को पाटते रहने का प्रयत्न, अपने आप मे प्रेमचद की 'आदर्शोन्मुखता' का पूर्ण सकेत करता है । उसके 'है' मे 'होने चाहिए' का सदेश ध्वनित होता रहता है। प्रेमचद के कई उपन्यासो की जो अंतिम परिणतियॉ अस्वाभाविक और चिपकाई हुई सी लगती है वह इसी आदर्श और यथार्थ के विचित्र मेल के कारण ।

उपरोक्त मान्यता को स्वीकार कर लेने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि प्रेमचद यथार्थवादी थे या आदर्शवादी ? हिंदी मे इस विषय पर खूब बहस रही है । एक दल उन्हे आदर्शवादी के रूप मे स्वीकार करता आया है दूसरा उन्हे सोलह आने यथार्थवादी के रूप मे । पर तथ्य यह है कि प्रेमचद का आदर्शवाद की ओर से यथार्थवाद की ओर क्रमिक विकास हुआ है । इस विकास-क्रम को न समझने वाले ही उपरोक्त भूल करते है । यथार्थवाद उपन्यास-कला का प्राण है—इसे हर समझदार आलोचक स्वीकार करता है । उपन्यासकार प्रेमचद भी 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते इस मर्म को समझकर अपनी रचना मे उतार चुके थे । शुरू की रचनाओ मे उनका आदर्शवादी मस्तिष्क यथार्थवाद पर शासन करता रहा और उनके उपन्यासो की प्रभावान्विति को अक्सर बिगाड़ देता रहा ।

---

१. 'आधुनिक साहित्य', सं० २००७, प्रथम सस्करण, पृ० १४५ ।

जैसा कि इस लेख के आरंभ मे स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रेमचंद हिंदी मे सामाजिक और आर्थिक क्राति के अग्रदूत होकर आए। यह अवश्य था कि आरभ मे उनके ऊपर बहुत से प्रभाव काम कर रहे थे, जिन्हे हम एक शब्द मे आदर्शवादी और सुधारवादी कह सकते हैं, पर ज्यो-ज्यो उनकी अनुभूतियाँ विशद होती गयी, विचार युग-सत्यो के मेल मे आते गए, त्यो-त्यो वे सामाजिक और आर्थिक क्राति की आत्मा के निकट पहुँचते गए। उनकी आदर्शात्मक प्रेरणाएँ, उपदेशात्मक प्रवृत्तियॉ पीछे छूटती गयीं और समाज का वास्तविक रूप तथा व्यावहारिक और उपयुक्त चितन सामने आता गया। अपने अंतिम दिनों मे प्रेमचद विचारो मे एक हद तक साम्यवादी और कला के क्षेत्र मे सामाजिक यथार्थवाद के पोषक हो चुके थे—यह एक स्वीकृत तथ्य है। 'गोदान' की सृष्टि वस्तुतः इन्हीं प्रेरणाओ से हुई थी। 'गोदान' मे यो तो भारतीय किसान की ही टूटती-पिसती जिंदगी खुलकर सामने आ सकी थी तो भी उसमे वर्ग-सघर्ष की एक झलक भी गोवर के जीवन और मिल मालिक खन्ना के मिल के भस्म होने के रूप मे सामने आयी थी। विश्वास है कि अंतिम रचना 'मंगल-सूत्र' मे वर्ग-सघर्ष का भारतीय संस्करण और शोषित की विकासोन्मुख शक्तियो की दिशाएँ स्पष्ट होती पर परिस्थितिवश वह उपन्यास बिलकुल ही अधूरा रहा।

कुल मिलाकर इतना निःसकोच होकर कहा जा सकता है कि लोक-जीवन से जितना सपृक्त होकर प्रेमचद ने कला-साधना की वह हिंदी मे अभूतपूर्व है। प्रेमचद, लगभग साढ़ेतीन दशकों के अपने रचना-काल मे चाहे जिन प्रेरणाओं से प्रभावित होते रहे हों पर वे सर्वत्र अन्यायो के शत्रु और उत्पीड़ित की पीड़ा को नष्ट करने वाले साहित्यकार होकर आए। सभव है प्रेमचद के द्वारा चित्रित परिस्थितियॉ कल परिवर्तित हो जॉय पर उनके द्वारा अकित जीवन-मूल्य (Values) बराबर लोकगति को प्रभावित करते रहेंगे। इतना ही नहीं, आगामी भविष्य के निर्माण मे भी प्रेमचद का आधारभूत महत्व बराबर सुरक्षित रहेगा। प्रेमचद की जो विरासत हमें प्राप्त हुई है उसको हमे अभी समझना है और समझकर उनके कलासूत्रो को आगे बढ़ाना है।

———

परिशिष्ट

उपन्यास-कला : एक विश्लेषण

जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में ही कहा जा चुका है—उपन्यास नवयुग की देन है। 'नवयुग' का अर्थ है वह युग जिसमे सामतवाद का अंत हुआ और पुनर्जागरण तथा वैज्ञानिक खोजो से नए पूँजीवादी वर्ग का उदय हुआ। इस पूँजीवादी वर्ग ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक समस्त क्षेत्रों में एक व्यापक क्राति किया। समाज का ढाँचा पूर्वापेक्षा अधिक चक्करदार हो गया। नए मध्यमवर्ग का उदय हुआ जो बुद्धिवादी और व्यक्तिवादी था। आर्थिक-व्यवस्था बिलकुल परिणत हो गयी। सामतयुगीन गृह उद्योगो की कला तथा उससे उद्योग-कर्ता को मिलने वाली सतुष्टि समाप्त हो गयी, छोटे उद्योगो के स्वामी मजदूर बनकर मिलो में काम करने के लिए बाध्य हुए, उनका भयकर शोषण शुरू हुआ, बाजारो की खोज मे विश्व के पिछड़े देशो पर राजनीतिक आधिपत्य जमाया गया। राजनीति मे प्रजातत्र का आगमन हुआ जिसके कर्ता-धर्ता तो थे मध्यवर्गीय लोग पर इनपर अप्रत्यक्ष अनुशासन था पूँजीपति वर्ग का। साहित्य मे भी क्राति हुई। बल्कि यदि इस प्रकार कहा जाय कि इन बाहरी परिवर्तनो का जोरदार भीतरी प्रभाव साहित्य पर पडा तो अनुचित न होगा। उस प्रभाव ने साहित्य मे गद्य को जन्म दिया—जो उलझती हुई समाज-व्यवस्था की अभिव्यक्ति का सार्थवाह बना। सामत-युग की अभिव्यक्ति का साधन था पद्य और उसका श्रेष्ठ कला प्रकार था महाकाव्य। पूँजीवादी युग का श्रेष्ठ कलाप्रकार उपन्यास बना।

इस उपन्यास-रचना को हम दो शीर्षको मे समझने की कोशिश करेगे। पहला शीर्षक होगा उपन्यासकार दूसरा उपन्यास। 'उपन्यासकार' के अतर्गत हम उपन्यास-रचयिता की सामान्य आवश्यकताओ पर विचार करेगे और 'उपन्यास' के अतर्गत उपन्यास के रचना-तत्वो का विश्लेषण करेगे।

उपन्यासकार

उपन्यासकार में कल्पना-शक्ति

प्रत्येक उपन्यासकार मे न्यूनाधिक कवित्व शक्ति (कल्पना शक्ति) का होना अनिवार्य है चाहे उसने कभी भी कविता की एक पंक्ति न लिखी हो हम इस शर्त को पूरा होते हुए प्रत्येक सफल उपन्यासकार मे देख सकते है। जीवन के मार्मिक प्रसंगों तथा प्रकृति के स्पर्शी स्थलो पर निश्चित रूप से कथाकार विशेषतः उपन्यासकार एक सवेदन शील कवि होता है, वर्णित प्रसंग एक काव्य-व्यक्तित्व रखता है, तथा उपन्यास कला अपनी ऊँचाई से ग्राहक को आकर्षित करती है। हिंदी के मूलत. वस्तुनिष्ठ उपन्यासकार प्रेमचद भी जीवन और प्रकृति के मार्मिक स्थलो पर पहुँचकर कवि हो जाते है पर क्या प्रेमचद ने कभी एक छद लिखा? जैनेन्द्र के विषय में भी यह बात सत्य है, जैनेन्द्र अपने उपन्यासो मे अक्सर एक प्रयोगशील प्रातिभ कवि के रूप मे दृष्टिगत होते है। 'अज्ञेय' के उपन्यासो मे भी जो कलात्मक पूर्णता प्राप्त होती है उसे हम चाहे कोई संज्ञा दे पर वह है उनके कवि का ही कौशल।

उपन्यासकार और नाटककार

उपन्यास कार के सम्मुख, नाटककार की तरह कोई भौतिक उपादान—मच के उपकरण—नही होते। उसे अपनी समग्र सृष्टि की प्राण-प्रतिष्ठा केवल विचार और कल्पना की शक्तियो से करनी होती है। उपन्यास जब कि कथन-प्रधान होता है तो नाटक अभिनय-प्रधान। एक मे वाणी ही एकमात्र साधन होती है जब कि दूसरे मे अनेक प्रकार के सहायक साधन प्राप्त होते हैं। इसीलिए उपन्यास-रचना मे वर्णन को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। कथोपकथन (Dialogue) यद्यपि दोनों मे समान तत्व है। फिर भी जिसप्रकार नाटक का कथोपकथन अभिनय के द्वारा पूर्णता प्राप्त करता है उसी प्रकार उपन्यास का कथोपकथन वर्णनो से अनुप्राणित होता है। नवीनतर औपन्यासिक प्रगति मे यद्यपि वर्णन का महत्त्व घटता जा रहा है और उसके स्थान पर कार्य (action) और कथोपकथन आदि का महत्त्व बढ़ता जा रहा है फिर भी यह मानना होगा कि सफल उपन्यास मे 'वर्णन' एक महत्वपूर्ण तत्त्व होता है।

उपन्यासकार और उपन्यास

उपन्यासकार का उपन्यास से सीधा सबध स्रष्टा और सृष्टि का है। इसीलिए वह अपने कृति का परमशक्तिशाली पर परोक्ष ईश्वर कहा जाता है। गस्टेव फ्लावर्ट (Gustave Flaubert) ने लिखा है—'The artist should be in his work like God in creation, invisible and all-powerful. He should be felt everywhere and seen nowhere.' निश्चित ही सफल औपन्यासिक कृति मे उपन्यासकार सर्वत्र महसूस होता है परतु वह प्रत्यक्ष नही होता।

इस सबध मे दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उपन्यासकार मे तटस्थता (Detachment) का गुण आवश्यक है? उत्तर है सपूर्णतया तो नही पर एक हद तक अवश्य। उपन्यासकार न तो फोटोग्राफर है न वह इतिहासकार, जो देखी हुई घटनाओ का ज्यो का त्यो शाब्दिक अनुवाद कर दे। उसे तो निश्चित रूप से घटनाओ की आत्मा को अपनी संवेदना के रगो से तथा कला की तूलिका से उभारना होगा। घटनाएँ जहाँ घटनाओ को बढ़ाने लगती है वहाँ फिर 'पिकारेस्क' उपन्यास (घटना बहुल उपन्यास) आ जाते है। परतु जहाँ एक घटना का अतः सवेदना दूसरी घटना को जन्म देती है वहाँ उपन्यास अपने ऊँचे धरातल की ओर चढ़ता है। लेकिन इसका यह भी अर्थ न निकालना चाहिए कि उपन्यासकार घटना और चरित्रों के व्यक्तित्व को अपनी अतिरिक्त कल्पना से रग कर उनके प्रकृत विकास और स्वाभाविक सौंदर्य को नष्ट कर दे। नही, उसे निश्चय ही इस अर्थ मे पूर्ण तटस्थ होना चाहिए। जहाँ उपन्यासकार, चरित्र—जो वस्तु जगत मे चुने हुए होते है—को रगने लगता है वहाँ उपन्यास की रीढ़ टूट जाती है। इस कथन के सुन्दर उदाहरण श्रीजैनेन्द्र कुमार के 'सुखदा' और 'विवर्त' नामक उपन्यास के पात्र है।[1]

उपन्यासकारः एक पर्यवेक्षक और प्रयोक्ता

पर्यवेक्षक के पद से उपन्यासकार उपन्यास की पृष्ठभूमि का निर्माण अपनी

---

१. 'आज' साप्ताहिक विशेषाक (२ जनवरी १६५५ ई०) मे 'उपन्यासकार जैनेन्द्र' शीर्षक प्रस्तुत लेखक का लेख द्रष्टव्य।

समस्त अनुभूतियो के आधार पर करता है और पात्रो की विशिष्टता को उभारता है। परतु वह इससे भी आगे बढ़ता है और आगे बढ़कर चरित्रो के द्वारा अपने उद्दिष्ट जीवन-प्रयोग और अभिप्रेत जीवन-दृष्टि को सामने रखता है। यह अवश्य है कि पर्यवेक्षक और प्रयोक्ता से पूर्व उपन्यासकार को एक कलाकार होना चाहिए नहीं तो उसके पर्यवेक्षण और प्रयोग दोनो साहित्येतर महत्व के ही होंगे। जोला ने कहा है कि प्रत्येक उपन्यासकार एक 'सत्य' का खोजी होता है और इसीलिए वह प्रयोक्ता होता है।

उपन्यासकार की दृष्टि और उसकी कल्पना

उपन्यासकार अपने निर्माण मे निर्माता के अधिकार से कोई भी जीवन-दृष्टि अपना सकता है। वह स्वेच्छया स्वच्छंदवादी या यथार्थवादी, प्रकृतिवादी या आदर्शवादी कुछ भी हो सकता है। परतु इन सभी विचारो को उसे पूर्वग्रह (Pregudice) के रूप मे नहीं रखना चाहिए। उसे भूलना न चाहिए कि कला-रचना एक अत्यत समझदारी और नैपुण्य पूर्ण प्रक्रिया है। ज्ञातव्य है कि रचना विशेष का भी एक जीवन-व्यक्तित्व होता है जो लेखक के व्यक्तित्व से प्रायः भिन्न होता है। इसलिए किसी साहित्यकार को, विशेषतः उपन्यासकार को सबसे पहले ससार को स्वस्थ मन से लेना चाहिए। ससार को स्वस्थ मन से लेने वाला कलाकार धरती को एकदम से बुरा कभी नहीं मान सकता, न इस कारण वह निराशावादी ही हो सकता है। वह निश्चित रूप से ससार को मूलतः निर्माणो की जननी तथा मनुष्यता के उत्कर्ष का क्षेत्र मानेगा और इस वस्तु-जगत मे होने वाली गलत वस्तुओं के नाश और पुनर्निर्माण के लिए प्रस्तुत होगा।

मनुष्य का एक स्वयं का जीवन होता है जो वाद विशेष से सर्वथा भिन्न होता है। यह राशि-राशि रहस्यो से परिपूर्ण मनुष्य किसी चौखटे मे फिट कर देने से मर जाएगा। इसलिए निश्चित रूप से हमे इस नकली कला को छोड़कर ससार को अपने पूर्वग्रह-शून्य मस्तिष्क से ग्रहण करना चाहिए, संसार को ससार की ओर से पढ़ने की कोशिश करना चाहिए। इस वस्तु-जगत मे जीवन्त शक्तियों, उज्वल सभावनाओं की खोज करना चाहिए, बिखराव मे एकता का सकेत पकड़ना चाहिए। जहाँ अभिन्नत्व हो उसको विश्लिष्ट करके उसके रहस्य

का साक्षात करना चाहिए। प्रेमचंद ने लिखा है, "यही चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व, दिखाना उपन्यास का एक मुख्य कर्तव्य है।"[1]

कल्पनाशीलता की व्याप्ति

कल्पनाशीलता की व्याप्ति के ऊपर लिखते हुए एक स्थान पर आर्नल्ड बेनट ने कहा था कि उपन्यासकार में सर्वव्यापी करुणा (All-embracing Compassion) होनी चाहिए। निश्चित ही उपन्यासकार अपनी सर्वव्यापी संवेदनशीलता के द्वारा ही उच्चतर, शताब्दियों को प्रभावित करने वाली कला का निर्माण कर सकता है। टैगोर, शरत, प्रेमचंद—यदि भारत के अमर उपन्यासकार रहेंगे तो इसी तथ्य के कारण।

अनिवार्य अन्तश्चेतना

जहाँ तक रचनात्मक साहित्य (Creative Literature) के सृजन का प्रश्न है अन्तश्चेतना (Intution) कलाकार की सर्वाधिक सहायक वस्तु होती है। जिसकी अन्तश्चेतना जितनी ही प्रखर और प्रदीप्त होगी वह उतनी ही ऊँची उद्भावना कर सकेगा। जिन जीवन-सत्यों का उद्घाटन हमसे पूर्व के कलाकार कर चुके हैं यदि हम भी उन्हीं जीवनादर्शों को प्रत्यक्ष करें तो हम किसी भी दशा में प्रथम श्रेणी के कलाकार नहीं हो सकते हैं। मार्शल प्राउस्ट (Marcel Proust) ने एक स्थल पर लिखा है 'अपने भीतर के अंधकार से निकाले हुए केवल वे जीवन-सत्य जो अन्य सभी से अपरिचित हैं हमारी सृष्टि को अनुप्राणित कर सकते हैं।' हम इसको उपन्यासकार के लिए भी एक अनुल्लंघनीय शर्त मानते हैं।

एक रचनात्मक मनःस्थिति की आवश्यकता

रचना की एक दुनिया होती है जिसमें कलाकार अपने रचनात्मक क्षणों में संपूर्ण मन से निवास करता है, उसी में सोचता है और उसी से प्रेरणा पाकर आगे बढ़ता है। निश्चित ही उच्चतर कलासृष्टि हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। परिपूर्ण से हमारा मतलब उस क्षण से है जिसमें हमारा मन मंथन की

---

१. कुछ विचार का 'उपन्यास' शीर्षक निबंध द्रष्टव्य।

उस सीमा पर आ जाय कि हम लेखनी पकड़ लें। इन प्रदीप्त क्षणों में ही रचनात्मक मनःस्थिति प्राप्त होती है।

उपन्यासकार और विशेषज्ञ

स्पष्ट ही उपन्यासकार विशेषज्ञ नहीं है। उसके लिए आवश्यक नहीं कि वह किसी साहित्येतर या लिखित साहित्य की विशेषज्ञता को, अपनी जानकारी के प्रदर्शन के आवेग में, उपन्यास में भी दिखाने लगे। यह स्थिति भयावह है। उपन्यासकार का ग्राह्य केवल उसका लिया हुआ वस्तु-क्षेत्र है। उसी वस्तु-क्षेत्र की स्वाभाविकताओं की आत्मा का उद्घाटन, विश्लेषण तथा अंकन उसका कर्तव्य है। यहाँ तक कि यदि वह किसी कृति विशेष में अधिक शिल्पगत चातुर्य भरने की कोशिश करता है तो रचना अतिरिक्त आयासों (mannerism) से भर उठती है।

× × × ×

उपन्यास

उपन्यास में जैसा कि हम देख आए हैं हमारे जीवन के उलझनों की व्यापक अभिव्यक्ति होती है। इसलिए स्वभावतः उसके कथा-विकास में जीवन का नानात्व, देशकाल का बहुमुखी अंकन, विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के चरित्रों का उतार-चढ़ाव और जीवन का धारावाहिक प्रवाह मिलता है। उपन्यास कहानी से इस बात में भिन्न है कि कहानी जब जीवन के एक खंड को एक केंद्रीय विचार से अनुरंजित करके कथा के माध्यम से व्यक्त करती है तब उपन्यास जीवन के वैविध्य को उसकी समूची पृष्ठभूमि और जीवन-दर्शन के बहुविध संकेतों के साथ उपस्थित करता है। जहाँ कहानी में गीति-रचना की गहराई और एकनिष्ठता होती है वहाँ उपन्यास में महाकाव्य की विराटता और नानात्व। जैसा कि कहा जा चुका है उपन्यास नाटक से इस बात में भिन्न है कि उसमें नाटक की कार्य प्रधानता (Action) और कथोपकथन की एकातता नहीं होती बल्कि विश्लेषण, वर्णन और प्रवाह की विविधता होती है। विविधता के इसी गुण को लेकर उपन्यास को समाज का विवरण तथा 'एक कला-प्रकार मात्र से अधिक' कहा जाता है। जीवन-दर्शन की व्याप्ति के कारण इसे जीवन की

आलोचना भी कहते है। सब मिलाकर उपन्यास एक स्वतंत्र, लोचदार, और आकर्षक कला-रूप है। इसके इन्ही गुणों के कारण ग्रेवो ने इसे 'जनवादी रचना-विधान' वाला कलाप्रकार कहा था। अब हम उपन्यास की रचना के तत्वो पर विचार करेंगे।

उपन्यास-रचना के तत्व

कथा

उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व कथा है। उपन्यास को आरंभ करने के पूर्व उपन्यासकार के पास एक कथा (Story) कहने के लिए **होनी ही** चाहिए। यदि वह यह सोचकर बैठता है कि उसे एक कथा कहनी है तो वह सफल उपन्यास नही लिख सकता। उसे तो वस्तुतः विवश होना चाहिए। उसके पास इस वस्तु-जगत और मानव-जगत से अनुभूतियों की इतनी पूँजी हो जानी चाहिए, किसी खास घटना या चरित्र से उसे इतना सवेदनशील हो जाना चाहिए कि वह लेखनी पकड़ ले। ऐसी स्थिति मे कथा का स्वतः विकास होता है। कथा के स्वतः विकास का अर्थ होता है घटनाओ का काल-क्रम के अनुसार विकास। उपन्यास मे भी सोमवार के पश्चात मगल का आना अनिवार्य होगा, दिन के पश्चात रात छोड़ी नही जा सकती। इस कथा-विकास मे **'तब?'** का बडा महत्व होता है। आज से नही शताब्दियो से जब हम आदिम युगो को पार कर रहे थे तभी से हमने अपने भीतर की कुतूहल-वृत्ति की सतुष्टि के लिए कहानियॉ सुननी और गढ़नी शुरू की। नानी की कहानी आज भी बालक अपनी निद्रा छोड़कर उकसा-उकसा कर सुनता है। क्यो? इसलिए कि यह कुतूहल की वृत्ति क्या आदिम मानव, क्या आधुनिक सभ्य मनुष्य, क्या बालक, क्या वृद्ध, सबमें अत्यत शक्तिशाली रूप से अवस्थित है। हम जब उपन्यास पढ़ना आरभ करते है तो हमारा मतव्य यह नही होता कि हम दर्शन पढ़ रहे है। बिलकुल नहीं, हम तो एक कहानी पढ़ने बैठते है और जहॉ कहानी का सूत्र टूटता दिखलाई पडा कि पुस्तक को पटक देने को जी होता है। कुल का मतलब यह कि पाठक को कथा अत्यत प्रिय होती है, और, इसप्रकार उपन्यास मूलतः एक कथा ही है।

कथावस्तु

सबसे पहले यह बता देना आवश्यक है कि ऊपर की 'कथा' (Story) और इस कथावस्तु (Plot) में क्या अंतर है। अंतर विशिष्ट है। कथा जब कि काल-क्रम से होने वाली घटनाओं को महत्व देती है तब कथावस्तु घटनाओं के अंतर निबंधन को। अंतर निबधन से हमारा तात्पर्य क्या है? असल में प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई कारण होता है और वह घटना विशेष उस कारण का परिणाम होती है। फिर इस घटना के गर्भ में भी आगे की घटनाओं के बीज छिपे होते हैं इसप्रकार घटना-शृंखला कारण-कार्य संबंध से पुष्ट होकर बढ़ती रहती है। किसी उपन्यास में बहुत सी घटनाएँ होती हैं पर हमें कुलमिलाकर वह उपन्यास अपने आप में एक पूर्ण अविच्छिन्न जीवन-प्रवाह दीख पडता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि उपन्यासकार अपने कथानक की ओर जाने के लिए विवश होता है। अपने दैनंदिन जीवन मे उसे अनेक प्रकार के अनुभव होते रहते हैं पर कोई एक बात ऐसी होती है जो कथानक का रूप ग्रहण कर लेती है। इस कथावस्तु की विशिष्टता इस बात मे होती है कि इसके समस्त क्रिया-व्यापार में एक मर्म रहता है, कालक्रम से आगे बढ़कर मूल्यगत जीवन (Life of Values) को अंकित करने की आकांक्षा रहती है।

कथा-वस्तु को एक लेखिका ने 'क्रिया की भाषा' कहा है। निश्चित रूप से कथा-वस्तु में क्रिया-प्रसार मुख्य होता है। इस क्रियाशीलता को उपन्यास के विकास के साथ-साथ उतरोत्तर जटिल (Complicated) होते जाना चाहिए। उपन्यास के आरंभ के विषय मे लेखकों ने कहा है कि 'एक समय…' से कहानी को आरभ करने का तरीका सब से अच्छा तरीका है। उनके इस कथन का वास्तविक अर्थ यह है कि आरंभ में कहानी को अत्यत स्पष्ट, कौतूहलोत्पादक और विकास के अतर्निहित सूत्रों से पूर्ण होना चाहिए। हिंदी में प्रेमचंद इस कला के निपुण कलाकार हैं। मध्य मे चातुरी के साथ अनेक रहस्यों और उलझनों की सृष्टि हो सकती है। इसके पश्चात् कथा-वस्तु को अपने लक्ष्य की ओर गतिशील होना चाहिए। वह लक्ष्य क्या होगा। किसी काव्यात्मक सत्य (Poetic Truth) का अकाव्यात्मक ढंग से निरूपण। काव्यात्मक सत्य

वह सत्य होता है जो कभी चुकता नही। कथानक की प्रगति निश्चित रूप से बुद्धि द्वारा अनुशासित होनी चाहिए। लेखकों ने कहा है कि कथा-वस्तु में, अवांतर कथाएँ कम से कम रहे; बल्कि न रहे। उपन्यास का प्रत्येक अग, प्रत्येक, वाक्य, प्रत्येक शब्द का लक्ष्य कथा-वस्तु को उत्तरोत्तर अग्रसर करने वाला होना चाहिए। अनावश्यक भरती के बिना जितना भी प्रकृत कथा-प्रसार हो सके उतना ही अच्छा है। पर यह भी कि प्रसार के साथ गहराई भी बनी रहे।

आवश्यक है कि कथा का क्रमशः विकास हो। पाठक के प्रश्न 'क्यो?' का उत्तर धीरे-धीरे कलात्मक ढंग से मिलता चले। गति का सम होना भला है। ऊपर उपन्यास मे धारावाहिकता का संकेत हुआ है। गति की समता का अर्थ है धारावाहिकता। धारावाहिकता का अर्थ है हलके उतार-चढ़ावो के साथ (Fluctuation) विकास। नाटकों मे उत्कर्ष के स्थल अत्यत रंजित होते है पर उपन्यासो मे ऐसा नही होता।

ऊपर हमने विस्तार और गहराई की बात की है। इन दोनो तत्वो के आधार पर उपन्यासो के दो प्रकार हो जाते है। (१) विस्तार प्रधान (Extensive) उपन्यास। (२) गाभीर्य प्रधान (Intensive) उपन्यास। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि विस्तार प्रधान उपन्यास (१) सबद्ध घटनात्मक होते है तथा गाभीर्य प्रधान उपन्यास (२) असंबद्ध घटनात्मक। हिंदी मे प्रथम प्रकारकेउपन्यासों के प्रतिनिधि लेखक हैं प्रेमचंद। द्वितीय प्रकार के उपन्यासो के महत्वपूर्ण लेखक है 'शेखरः एक जीवनी' के लेखक 'अज्ञेय'। उपन्यासोकी साप्रतिक प्रगति गाभीर्य प्रधानता की ही ओर है।

पात्र

यदि कवि भाव-जगत का सबसे अधिक सवेदनशील प्राणी होता है तो उपन्यासकार व्यवहार-जगत का। अपने 'दैनदिन' व्यवहार मे उसका समाज के हर प्रकार के व्यक्तियों से साबिका पडा करता है। वह उन व्यक्तियो को एक विशेष ढंग से पढने का आदी होता है। जिस समय वह उपन्यास रचना आरभ करता है उस समय उसके भूत के वस्तु-जीवन मे संगृहीत पात्र अपने आप आवश्यकतानुसार नए नाम-रूप मे उपस्थित हो जाते है। इसी लिए पात्रो का ग्रहण होता है निर्माण नही। कहना व्यर्थ है कि इन गृहीत पात्रो का अपना

जीवन, अपनी गति, और अपना विकास होता है। उपन्यासकार इनके साथ जबर्दस्ती नही कर सकता। वह पात्रो का जनक नही। बल्कि एक प्रकार से एक विशिष्ट प्रयोजन मे लगा देने वाला व्यक्ति होता है।

पात्रो के विकास के लिए उपन्यासकार को बराबर अपनी अनुभूतियो की मदद लेनी चाहिए। पात्रो के विकास मे पात्रों के अंतर्द्वन्द्व-चित्रण को संप्रति बडा महत्व दिया जा रहा है। पात्र की प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक होनी चाहिए। इतनी स्वाभाविक कि हम उसे स्वीकार कर ले, अग्रसूचनाएँ कुछ खास महत्वपूर्ण नही होती।

एक बात यह ध्यान मे रखना चाहिए कि पहले से क्रिया निश्चित रहती है, पात्र उसको बढाने का काम करते है। क्रिया पहले आती है पात्र बाद मे। परंतु आजकल के उपन्यासो में पात्र भी पहले चमकउ ठते हैं और आस-पास ही क्रिया भी सूझ जाती है।

पात्र दो प्रकार के होते है। (१)समतल (Flat) और(२)वक्र(Round)[१]। समतल चरित्र वाले पात्रो मे किसी विशेष बात गुण या दोष का प्रतिनिधित्व होता है। वक्र पात्रो मे व्यक्ति अपनी समस्त गुत्थियो के साथ उपस्थित होता है। वक्र पात्रो का आगमन उपन्यास मे मनोविज्ञान के विशेष आग्रहवश हुआ है। मनोविज्ञान मे भी फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिको के अतश्चेतनावाद का विशेष प्रभाव पडा है। उपन्यासकारों को व्यक्ति के अवचेतन मन का एक स्वतंत्र लोक ही मिल गया हैं। हिंदी मे प्रेमचद के पात्र बहुत कुछ एक विशेष जाति के होते हैं। और कही कही वक्रता की ओर उन्मुख। समतल चरित्र वाले पात्रो के क्रिया-कलाप को हम बहुत कुछ पहले से जानते रहते है। हम जानते रहते है कि रमानाथ की फजूल खर्ची, दिखावट और छिपाव एक न एक दिन उसे विपत्ति के गर्त मे डालेगी। पर वक्र चरित्र वाले पात्रो मे ऐसा नहीं होता। वे व्यक्ति की समस्त रहस्यात्मकता के साथ उपस्थित होते है। उनके विषय मे हमारा सबसे बडा आकर्षण उनके अतर्द्वन्द्व अकन मे होता है। हम नही जानते कि 'शेखरः एक जीवनी' का शेखर जेल से छूटने के बाद क्या करेगा। हम नहीं, जानते कि 'सुनीता' का हरिप्रसन्न आगे चलकर क्या करेगा।

१. देखिए इसी पुस्तक मे पृष्ठ १२-१३।

जो भी हो, जैसे भी हो, पात्रो मे मूर्त्तिमत्ता और मासलता होनी ही चाहिए। उन्हें हम पहचान सके, उन्हे हम याद रख सके। लिखा गया है चरित्र के मूर्तिमान होने के पूर्व जितना लिखा है बेकार होता है। प्रेमचद इस दृष्टि से हिंदी के सबसे बड़े उपन्यासकार है।

उपन्यास मे कम से कम एक पात्र तो ऐसा होना ही चाहिए जो पाठक की आत्मीयता प्राप्त कर ले। प्रेमचंद के उपन्यासो मे यह गुण अद्भुत ढग से मिलता है। एक पात्र तो क्या उनका प्रत्येक पात्र हमारे मन मे टिका रहता है। उनके कुछ पात्र तो हमे कभी भूलते ही नहीं।

कुल मिलाकर हमे स्मरण रखना चाहिए कि पात्र को वस्तु-जगत से गृहीत होकर, कथा-वस्तु के लक्ष्य की ओर, अपने सपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करते हुए बढना चाहिए।

कथा-वस्तु और पात्र

दोनो के संबध के विषय मे इतना कहना अलम है कि घटना विशेष के प्रति पात्र मे वैयक्तिक प्रतिक्रिया होनी चाहिए और इस प्रतिक्रिया' से फिर घटना निकलनी चाहिए। पात्र और वस्तु का यह गुण—अन्योन्याश्रयत्व—एक मुख्य विशेषता है जिसके न रहने पर उपन्यास असफल हो सकता है।

पृष्ठभूमि (देश काल)

हमने कथा-वस्तु और चरित्र पर विचार कर लिया। कथा-वस्तु के अंतर्गत पात्रो के योग से जो घटनाएँ घटित होती है वे निश्चित रूप से किसी स्थान पर और किसी विशिष्ट समय के भीतर होती है। इस पृष्ठभूमि का इतना महत्व होता है कि कभी-कभी यह घटनाओ और चरित्रो को भी प्रभावित कर देती है।

चरित्र के विषय मे विचार करते हुए कहा गया है कि चरित्र उपन्यासकार अपने जाने पहचाने जगत से चुनता है ठीक उसी प्रकार स्थान और समय को भी वह अपनी स्मृति मे सुरक्षित स्थानो में से चुनता है। ऐसा भी होता है कि अत्यधिक परिचित स्थान उतने उपयोगी नही होते जितने अल्प परिचित या एक बार के देखे हुए स्थान। पुरानी स्मृतियाँ जिनमे कल्पना द्वारा विकार आ गया है पृष्ठभूमि के लिए अत्यत उपयोगी होती है। इस प्रसग मे यह भी कह देना आवश्यक है कि बिलकुल गढ़े गए दृश्य सर्वथा अनुपयुक्त, अप्रभावशाली

और रसहीन होते हैं। अधिक से अधिक वे एक हल्के किस्म का कौतूहल भर उत्पन्न कर सकते हैं।

दृश्यो का वर्णन वहाँ अधिक सफल होता है जहाँ वह घटना या परिस्थिति या चरित्र के महत्व को वढाने मे सहायक होता है। इसी को दृश्य का 'नाटकीय उपयोग' कहते है। प्रत्येक प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार मे यह बात पाई जाती है। बंगला के शरतचंद्र, हिंदी के प्रेमचंद, जैनेन्द्र और अज्ञेय आदि मे प्रकृति का या दृश्य जगत का बडा ही उचित, उपयोगी और सांकेतिक (Suggestive) प्रयोग हुआ है। यह अंकन जब लेखक की असावधानी के कारण जरूरत से अधिक लम्बे हो जाते है तब उपन्यास की प्रगति को मन्द कर देते है। घटनाएँ और चरित्र इस फालतू बोझ से दब जाते है। अक्सर कमजोर लेखक इस फालतू भरती से अपनी कमी पूरी करना चाहता है।

यह दृश्य मूर्तिमान और संगत होने चाहिए। उपन्यासकार के मन मे इन दृश्यो की रूपरेखा एक साथ आनी चाहिए बल्कि उन्हे लेखक के मन मे एक ही साथ चमक (Flash) उठना चाहिए। पर पाठक के आगे इनका क्रमशः विकास होता है।

कथोपकथन

जैसा कि आरंभ में ही कहा गया है कथोपकथन के द्वारा दो कार्य संपन्न होते है (१) कथा-वस्तु का विकास (२) चरित्रांकन।

उपन्यास मे कथोपकथन किसी भी स्थिति मे विचारो का वाहक नहीं होना चाहिए। विचारों की अभिव्यक्ति तभी तक आवश्यक है जहाँ तक वे चरित्र की अभिव्यक्ति करे। यदि दुराग्रहवश उपन्यासकार इससे आगे बढ़ता है तो उसे पाठक पसंद नहीं करेगा क्यों कि उसे तो अपनी कहानी चाहिए। उसने तो कहानी पढने के लिए ही उपन्यास उठाया था किसी समस्या या दर्शन पर विचार करने के लिए नहीं।

कथोपकथन की भाषा पात्रो की स्थिति और उनके स्तर के सर्वथा अनुकूल होनी चाहिए। पर इसका अर्थ यह कभी नहीं निकालना चाहिए कि जिस प्रकार की भाषा हम दैनदिन जीवन मे बोलते है ठीक वैसी ही उपन्यासों मे भी आनी चाहिए। असल मे उपन्यास के कथोपकथनों की भाषा मे व्यावहारिक कथोपकथन

की भाषा के कुछ गुण तो होने चाहिए पर सभी नही। हम घर मे या मित्रो के साथ जो बातचीत करते हैं उसमे हमारी भाषा बड़ी ही अशुद्ध, फालतू बातो से पूर्ण और कभी-कभी अशिष्ट होती है। बिलकुल ठीक इसी की नकल उपन्यास मे नही होगी। नकल इतनी ही होगी जिससे भाषा मे व्यावहारिकता की सचाई आ जाय। कथोपकथन मे प्रासंगिकता, शिष्टता बातचीत की लय मे यथाशक्य शुद्ध शब्दो का उपयोग, सक्षिप्तता तथा चुस्ती आवश्यक होती है।

कथोपकथन मे स्वाभाविकता, कुछ हद तक अस्पष्टता भी होनी चाहिए। स्वाभाविकता का अर्थ है बिना बनावट के निकले हुए शब्द। अस्पष्टता का अर्थ है पात्र की पूरी बात कहने मे अनिश्चितता। पर अस्पष्टता यहाँ तक न होनी चाहिए कि वक्तव्य अबूझ हो जाय। तीसरी बात यह कि एक ही साथ पूरी बात भी न कही जाय। कुछ कहने को बाकी है, कुछ अभी कहना है ऐसी स्थिति बनी रहे। सबसे जरूरी बात यह है कि भाषा मे ध्वन्यात्मकता हो। यह सब गुण उसी व्यावहारिक सचाई को लाने के उपादान है। इनके विपरीत मोटे तौर पर कथोपकथन, स्पष्ट, साभिप्राय और संयत हो यह अनिवार्य है।

कथोपकथन के द्वारा पात्रो का पारस्परिक संबंध भी व्यक्त होता है। अलग से यदि पात्रों का सबंध व्यक्त करना पडा तो उपन्यासकार की असफलता है। प्रेमचंद ने 'गबन' मे इस प्रकार की कला मे पूर्ण कौशल दिखाया है।

कथोपकथन के द्वारा पात्रों की प्रवृत्तियाँ मूर्तिमान होती है। सच पूछिए तो हम जो सोचते हैं वही कहते हैं। इसीलिए हमारी बातें हमारे चरित्र को अभिव्यक्त करती है। सम्वाद की सहजता और स्वाभाविकता को सुरक्षित रखते हुए वर्ग, युग, जीवन-दर्शन, सेक्स, आदि के संबध की बाते भी कथोपकथन को पूर्ण और कलात्मक बनाने मे सफल होगी।

कथोपकथन-जैसा कि आरभ मे ही कहा गया है—वस्तु की गतिशीलता मे गत्यवरोध न उत्पन्न करे, बल्कि बातचीत के समय भी ऐसा लगे कि कुछ हो रहा है। मनोरंजन मात्र के लिए कथोपकथन का प्रयोग अनुचित है। इसीप्रकार मुहावरो आदि का विशेष मोह भी अच्छा नही होता। पात्रो को अधिक भी न बोलना चाहिए। उपन्यासो मे गप्पे नही लड सकती, मतलब भर बातचीत ही उपयुक्त होती है।

अंत मे कथोपकथन के अनिवार्य महत्व को स्वीकार करते हुए, कहीं भी, एक शब्द मे भी, असफलता को न आने देना चाहिए।

उद्देश्य—जीवन की व्याख्या

उपन्यास मे एक सृष्टि होती है, जिसमे भिन्न-भिन्न पात्र अपने बहुविध स्वभाव के साथ घटनाओ के बीच बढ़ते हैं। पर इस अंकन के विशाल अवकाश मे पात्रो या पाठक के जीवन और जगत सबधी चिंतन से निकली हुई अगणित मणियाँ होती है। प्रेमचद के अधिकाश उपन्यासो का उद्देश्य तो अत्यत स्पष्ट रहता है। वल्कि समाधानो और उद्देश्यो के नाम पर उन्होने 'सेवासदन' 'प्रेमाश्रम' नाम भी रखा है। मेरी समझ से उपन्यासों मे यत्र-तत्र तथा अतिम रूप से भी स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए। यह अवश्य एक कलात्मक सफलता होगी कि अंतिम उद्देश्य इसप्रकार अकित हो कि वह ध्वनित हो।

शैली

शैली उपन्यास के रचना-विधान का महत्वपूर्ण अंग है। इसके अतर्गत वह भाषा आती है जिसका प्रयोग उपन्यासकार करता है, दूसरे वह रग आता है जो भाषा को रजित करके विशिष्ट बनाता है। स्वभावतः इसका विशेष विचार अपेक्षित है। उसके पास कल्पना हो, निरीक्षण हो, इतिहास हो, ज्ञान हो पर यदि **प्रसन्न भाषा** नही है तो सब व्यर्थ। यदि वह अस्पष्ट है, कड़ी भाषा लिखता है, भाषा मे खुरदुरापन और ऊबड-खाबड़पन है तो पाठक उसकी रचना को नहीं पढ़ेंगे। प्रसन्न भाषा लिखने के लिए प्रथम आवश्यकता है शुद्ध लिखने को, द्वितीय सुबोध लिखने की और तृतीय सजीव शब्दो की। प्रसन्न भाषा का चौथा गुण है स्वतः प्रवाह (Spontaneity)। प्रेमचंद इस प्रकार की भाषा लिखने मे अभ्यस्त थे।

भाषा के क्षेत्र मे अभिव्यक्ति की शक्ति बढाने का कार्य यही साहित्यकार करते है। भावो की प्रकृति के भिन्न-भिन्न, वारीक से वारीक रग और रेखाएँ होती हैं इनको पकडना कुशल शिल्पकार का कार्य है। इस दिशा मे हिंदी मे जीवित शैलीकारों मे जैनेन्द्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय आदि का विशेष महत्व है।

× × × ×

उपन्यास के प्रकार

[१] घटना-प्रधान उपन्यास

घटना-प्रधान उपन्यासो मे लेखक का ध्यान घटनाओ के वैचित्र्य-विधान की ओर रहता है न कि चरित्र के या घटना-चरित्र के सतुलित विन्यास की ओर। घटनाओ मे कोई तारतमिकता नही होती और प्रत्येक घटना पाठक की कौतूहल वृत्ति को उभाडती है। लेखक की दृष्टि पाठक की कौतूहल वृत्ति पर रहती है और पाठक की दृष्टि अगली घटना पर। घटनाओं के इस घटाटोप के भीतर पाठक का चित्त भ्रमित रहता है। उसका मन फिर क्या हुआ, अब क्या होगा, अब तो नायक मर गया, क्या फिर जीवित होगा या मर जाएगा, बेचारी नायिका को खलो ने पकडकर कोठरी मे डाल दिया अब क्या होगा ? आदि प्रश्नो से भरा रहता है। हिंदी मे इन उपन्यासो का उदाहरण हमे देवकीनदन खत्री के मानसिक टकसाल से निकले हुए चद्रकाता आदि मे मिलता है। एक घटना के अप्रत्याशित ढग से फैलते हुए परिणाम उसमे दर्शनीय है। ऐसे उपन्यासो मे एक बात पर अवश्य ध्यान रखा जाता है वह यह कि नायक मृत न हो, मृत होकर भी न हो, यो उसकी विजय के लिए दो चार सज्जन भी मर जॉय तो कोई खास बात नही, खलो का अत आवश्यक रूप से घटित होना ही चाहिए।

घटना-प्रधान उपन्यासो की ही कोटि मे के रोमानी उपन्यास आते है। इनमे इतिहास के आवरण मे प्रेम के सघर्ष का अकन होता है। इसमे घटना प्रधान उपन्यासो के विपरीत घटनाओ मे क्रम होता है और थोडा चरित्र विकास भी होता है। यद्यपि यहॉ भी उपन्यासकार का मस्तिष्क पाठक की कौतूहल-वृत्ति उभाडने की ओर ही लगी रहती है। इस विषय मे 'हिंदी-उपन्यासः एक सर्वेक्षण' द्रष्टव्य।

[२] चरित्र-प्रधान उपन्यास

चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे पात्रो का चरित्र-विकास ही मुख्य होता है घटनाएँ गौण होती है। घटना-प्रधान उपन्यासो मे गति की जो त्वरा हमे प्राप्त होती है वह चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे नही। शुद्ध चरित्र-प्रधान उपन्यासों मे अक्सर एक प्रकार की गतिहीनता दृष्टिगत होती है। इसप्रकार के उपन्यासो का एक उदाहरण जैनेन्द्र की 'सुनीता' है। जैनेन्द्र की 'सुनीता' मे कुल मिलाकर

घटनाएँ थोडी-सी है और वे भी पात्रो के अधीन है। घटनाएँ कोई भी मोड़ ले सकती है, जिसका कोई आभास पाठक को नहीं है। 'सुनीता' के हरि प्रसन्न, सुनीता और श्रीकांत के जो गुण हमे शुरू मे मालूम होते है थोड़े से विकास या परिवर्तन के साथ वे ही अंत तक चलते रहते हैं। इस प्रकार की गतिहीनता जैनेन्द्र के अन्य उपन्यास कल्याणी, त्यागपत्र, व्यतीत, विवर्त आदि मे भी है।

पर इस गतिहीनता के पीछे तर्क क्या है? असल मे इस गतिहीनता मे पात्रो के वैयक्तिक चरित्र की बारीकियो तथा पात्रो के पारस्परिक संबधो का परिज्ञान होता है। 'सुनीता' मे हमे हरिप्रसन्न सुनीता आदि के चरित्र के विभिन्न कोणो (Shades) का दर्शन होता जाता है यो चरित्र बहुत कुछ अपरिवर्तनशील ही बने रह जाते है। इनका पारस्परिक संबंध ही नई परिस्थितियो का जनक होता है और वह पात्रगत सबध ही हमारे आकर्षण का विषय हो जाता है। इस प्रकार के उपन्यासो मे पात्र तो आरभ से ही अपने गुण-दोष लिए दीख पड़ते है पर वस्तुतः उनके आपसी सबंधो और चरित्रो की भिन्नता का प्रदर्शन ही हमे विशेष आकर्षित करता है।

कुल मिलाकर ऐसे उपन्यासों मे चरित्र कथा-वस्तु के मुख्य अग होते है। कथा-वस्तु का काम केवल पात्रो की, आरंभ से ही उपस्थित भिन्न-भिन्न विशेषताओ को सामने लाकर रख देना तथा उन्हें नई-नई परिस्थितियों में रखकर और उनके पारस्परिक संबंधो म परिवर्तन करके उनका व्यवहार दिखलाना होता है। इस प्रकार के हिंदी उपन्यास लेखको मे जैनेन्द्र कुमार, उग्र, ऋषभचरणजैन, चतुरसेन शास्त्री, अज्ञेय आदि है।

[३] घटना-चरित्र प्रधान या नाटकीय उपन्यास

इसमे कथा-वस्तु और चरित्र का अभेद हो जाता है। दोनों अन्योन्याश्रित होकर घुल मिल जाते हैं। पात्रो की मनोवृत्ति और कार्यशीलता ही, भविष्य के कार्यकलाप को निश्चित करती है तथा यह कार्यकलाप उत्तरोत्तर अधिकाधिक पात्रो को जन्म देता है। इस प्रकार सब कुछ एक निश्चित ध्येय की ओर चला चलता है।

ये उपन्यास चरित्र-प्रधान उपन्यासों से भिन्न होते है। चरित्र-प्रधान उपन्यासों की तरह इसमे भी पात्रो मे कुछ गुण-दोष तो आरंभ से ही होते है पर

ये परिवर्तनशील और विकासशील होते है। इसके अतिरिक्त इसमे घटनाओं का भी महत्व होता है। घटनाएँ कभी-कभी चरित्र को मोड देती हैं तो कभी चरित्र घटनाओं को मोड देते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते है, कि घटना और चरित्र दोनो मे कार्य-कारण सबध मिलता है।

घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यासो की कथा वस्तु को उपयुक्त और सत्य होना चाहिए। उसमे दो प्रकार की सत्यता होती है—(१) आतरिक और (२) बाह्य। आंतरिक सत्यता के द्वारा चरित्रो का विकास, अनुसधान, स्पष्टीकरण किया जाता है और बाह्य सत्यता के द्वारा घटना-क्रम का स्वाभाविक एव उचित विकास। इन दोनो सत्यो की यहाँ अभेद्य अन्विति हो जाती है। इस प्रकार, ऐसे उपन्यासो की कथा-वस्तु तर्कसगत तो होती ही है स्वाभाविक ढग से स्वतः प्रवर्तित भी। पात्रो मे कुछ गुण या दोष पहले से रहते है जो घटनाओ के प्रति उनकी प्रतिक्रिया निश्चित करते है। यह हुई तर्क सगति। इसके विपरित चरित्रो का विकास होता रहता है। इस विकास से नई सभावनाएँ तथा नए परिणाम निकलते है। यह उनकी स्वच्छदता है। इस प्रकार तर्क सगति और स्वच्छदता का समन्वय नाटकीय उपन्यासो का मूलतत्व है।

नाटकीय उपन्यास समय-सापेक्ष होते है और चरित्र-प्रधान उपन्यास स्थान सापेक्ष। नाटकीय उपन्यासो मे पात्रो के चरित्रोद्घाटन के लिए समय की आवश्यकता होती है। चरित्र का पूर्ण विकास उसमे घटनाओ के सहयोग से करना पडता है। इसलिए स्वभावतः उसमे स्थान की ढूँढ़-खोज कम, समय की लम्बाई अधिक रहती है। इसके विपरीत, चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे पात्रो के अपरिवर्तनशील घटनाओ के गौण और थोडी होने के कारण स्थान, समाज आदि के परिवर्तन का अधिक अवकाश होता है। यदि हम नाटकीय उपन्यासो मे से बीच का भाग छोड़ दे तो हमे अत का भाग अत्यत अपूर्ण दिखलाई पडेगा; यद्यपि ठीक ऐसा ही चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे नही होता। नाटकीय उपन्यासो का सर्वोत्तम उदाहरण 'गबन' है। रमानाथ मे आदि से ही कुछ गुण उपस्थित है, उन गुणो से परिस्थितियाँ जन्म लेती है, परिस्थितियाँ उसे फिर अपने जाल मे फसाती हैं, वह फँसाता चला जाता है, चला जाता है, और जालपा के प्रयत्न से अपने चरित्र का विकास करके अपने पाश को तोड़ता है और उन्मुक्त

होकर वह रूप पाता है जो उपन्यास के आरभ से सर्वथा भिन्न है। उपन्यास के आरंभ के रमानाथ और अंत के रमानाथ मे जमीन आसमान का अतर है। पर क्या 'सुनीता' मे भी ऐसा है? नही, वहॉ हरिप्रसन्न और सुनीता थोडे से परिवर्तन के साथ ज्यो के त्यों रहते है विकास तो होता ही नही है। गुण वही रहते हैं पर पारस्परिक संबंधो के परिवर्तन और विकास के द्वारा बदल जाता है हमारा तद्विपयक ज्ञान ।

नाटकीय उपन्यासो का अत आकस्मिक कम होता है। अत तक पहुॅचते-पहुॅचते हमे लगता है अब चरित्र और घटनाओ के विपय मे कुछ अधिक जानना शेप नहीं रहा । यो अत भव्य भी होता है। यथा गबन का जोहरा के बाढ़ मे बह जाने के रूप मे करुणोत्पादक अत ।

नाटकीय उपन्यासो को हिंदी मे लिखना आरभ करके पूर्णता तक पहुॅचने का श्रेय प्रेमचद जी को ही है। इस श्रेष्ठ प्रणाली के श्रेष्ठ आचार्य वे ही ठहरते है।

ऐतिहासिक उपन्यास

यह उपन्यास अपनी देशकाल प्रधानता के कारण अलग श्रेणी मे रखे जाते है। इसके दो भेद होते है :—

१. **शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास**—इसके पात्र तथा देशकाल दोनो ऐतिहासिक होते है। उदाहरण के लिए 'गढकुडार'।

२. **ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास**—इसमे पृष्ठभूमि ऐतिहासिक होती है, पर पात्र और घटनाएॅ काल्पनिक। उदाहरणार्थ विराटा की पद्मिनी।

ऐतिहासिक उपन्यास मे देशकाल या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का जीता जागता चित्रण अनिवार्य है। पुरातत्वविद् को कुदाल से निकाले हुए तथ्यो को उपन्यासकार अपनी कल्पना की तूलिका से सॅवार-सुधार कर और रगो से भरभर कर पाठक के सामने उपस्थित करता है। बिना कल्पना के योग के ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास से विशिष्ट कुछ भी नहीं रह जाएगा। यह दूसरी बात है कि राखाल बाबू के 'करुणा' और 'शशाक' उपन्यासो की उनके अतीतकालीन ऐतिहासिक खोजो के कारण प्रतिष्ठा हो। इन उपन्यासो की प्रतिष्ठा भी अतीतकालीन ज्ञान के कारण ही होती है, कुछ औपन्यासिक प्रतिभा के बल पर नहीं। पर कल्पना की भी सीमा है। कल्पना ऐसी न हो कि इतिहास-परपरा मे सिद्ध दुष्ट को हम

एक दम सज्जन का रूप दे दे। एक बात और, कल्पना का ऐसा उपयोग भी न हो कि देशकाल की स्थिति के विपरीत हम मुगलकाल मे मिलो को हड़ताल करा दे।

हिंदी मे ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों मे गिने चुने नाम हैं। जिनका संकेत हम पीछे कर चुके हैं।[1]

आदर्श और यथार्थ

वस्तुतः यह विभाजन का कोई आधार नहीं है लेकिन फिर भी इन शब्द के अंतर्गत आने वाली विचारधारा उपन्यासो की कायापलट कर देती है,इसलिए इनका व्यापक महत्व है।

हिंदी साहित्य मे शुद्ध आदर्शवादी उपन्यास आजतक नहीं दिखलाई पड़े और शायद उपन्यास का कलारूप शुद्ध आदर्शवादी हो भी नही सकता। आदर्शवाद का विशेष आग्रह उन उपन्यासो मे अवश्य देखा जाता है जिनके पात्र 'टाइप' होते है। इसके विपरीत यथार्थवाद आता है। यथार्थवाद को परिभाषा आलोचको ने भिन्न भिन्न ढंग से की है फ्रांसीसी उपन्यासकार जोला ने लिखा है कि 'कल्पना का निषेध और आदर्श का बहिष्कार' ही यथार्थवाद का मूल है। इस मत पर अरसे तक विवाद होता रहा। हिंदो के प्रमुख कवि औ उपन्यासकार प्रसाद जी की स्थापना है कि 'लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात'[2] ही यथार्थवाद है। यथार्थवाद निश्चित रूप से समाज के साधारण से साधारण वस्तुओं एवं मनुष्यों को, जो युगो तक साहित्य से बहिष्कृत रहे, प्रश्रय देता है। पर इस प्रश्रय का अर्थ यह नही है कि उपन्यासकार पात्रो के चरित्र का विश्लेषण करने की अपेक्षा, नारी की महिमा को अंकित करने की अपेक्षा, इतने घिनौने तफसील मे जाय कि पाठक पर अनुचित प्रभाव पड़े और उसका मन ऊब जाय। तफसील और वस्तुगत अनुभूतियो की सच्चाई अत्यधिक आवश्यक है पर उतनी ही जिससे उठाई हुई समस्या के अनौचित्य की पूरी विवृति हो जाय। 'साहित्यिक दृष्टिपात' का अर्थ अतिरंजित वर्णन नहीं बल्कि साधारण को इस ढग से रखना कि वह असाधारण ढग से हमे प्रभावित कर सके। यथार्थ को कभी

१. देखिए पृष्ठ १४-१५। २. काव्य और कला तथा अन्य निबंध (सं० २००५) पृ० १२०।

फ्रायड से जोड़कर कभी प्राणिशास्त्र से जोड़कर कभी अन्य किसी ऐसे ही शास्त्र या दार्शनिक से जोड़कर हमारी पशु प्रवृत्तियों को उभारना 'साहित्यिक दृष्टिपात' नहीं हो सकता। 'साहित्यिक दृष्टिपात' साहित्य के संपूर्ण सत्पक्षों को अपने भीतर समाविष्ट रखता है। उपन्यास क्रांतिकारी विचारधाराओं के द्वारा समाजोत्कर्ष करने का साधन है। यह समाजोत्कर्ष बड़ी चीज है जो घिनौने वर्णनों से संपन्न नहीं हो सकता। प्रेमचंद का साहित्य इस दृष्टि से हमारे सम्मुख उदाहरण पेश करता है। 'गोदान' का होरी भारत के सामाजिक यथार्थ का वह जीता जागता चित्र है जो भारतीय किसान के प्रति उठी हुई हमारी संवेदना को कभी मरने नहीं देगा। इस संवेदना को उभाड़ना ही यथार्थवादी का काम है पशु प्रवृत्तियों को झनझनाना नहीं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का आतंक'[१] में यथार्थवाद की वैज्ञानिक परिभाषा देते हुए लिखा है कि यथार्थवाद आगे बढ़े हुए ज्ञान और पीछे के आदर्शों से चिपटी हुई आचार परंपरा—इन दोनों के व्यवधान को पाटने का निरंतर प्रयत्न है। वर्तमान को भविष्य से जोड़ना, इसप्रकार यथार्थवादी का कर्तव्य निश्चित होता है। द्विवेदी जी के विचार से इस दृष्टि से हम प्रेमचंद से आगे आज तक नहीं बढ़ पाये हैं।

संशोधन-पत्र

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
दर्शको	दशको	४	२०
वैशिष्ठय	वैशिष्ट्य	१२	२५
Stimulas	Stimulus	१२	२८
हो न सका	न हो सका	१४	२२
सोद्देश	सोद्देश्य	१५	१३
Colours	Colour	१५	१६
Convas	Canvas	१६	३
इसके	जिसके	१६	११
समय के चलन	समय की चलन	१६	२०
ऊठे	उठे	२१	६
देते	देने	२४	६
इनके	इनकी	३१	६
के	की	३३	५
सूर के मृत्यु	सूर की मृत्यु	३८	२६
जाह्नवी	जाह्ववी	३६	१५
गॉवें को	गॉव की	४४	४
है	है	५२	१२
पेशॅपर	पेशेवर	६५	२०
होती।	होता है।	६८	२
आभूषण-प्रम	आभूषण-प्रेम	७४	४
हा	ही	७४	१२
पाश्चाताप	पश्चाताप	७६	१२
रहती	कहती	७६	१३
कमी	कनी	७७	१६
उसके	उसकी	७८	२४

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
महेमान	मेहमान	७६	११
Climex	Climax	७६	४
रमा	जालपा	८०	२४
गबन की पृष्ठ	गबन का पृष्ठ	८२	२७
करत	करता	८५	२३
व्याहारिकता	व्यवहारिकता	६६	१
खलते	खलती	६६	२७
रमेश	रमा	१०८	१२
ने सकेत	ने स्पष्ट सकेत	१२२	३
होना का रुक	होना रुक	१२४	१७
प्रदर्शन इतना	प्रदर्शन का इतना	१२४	१६
है	है	१२८	१६
हित कर	हितकर	१२८	२३
Spontanious	Spontaneous	१२६	८
Naturlism	Naturalism	[illegible]४५	६
Pregudice	Prejudice	१६[illegible]	१२
का	की	१६[illegible]	२०
अलम	अलम्	१६६	११
मी	भी	१७०	१६
पर	मर	१७३	६
मे के	मे	१७३	१७
विपरित	विपरीत	१७५	१३